UNIVERSAL
LIBRARY

OU_176306
UNIVERSAL
LIBRARY



भारतीय ग्रन्थमाला—संख्या ३२

देशी राज्यों की जन-जागृति

रियासती जनता लम्बी गहरी नींद से जाग रही है। वह अपने पैरों पर खड़ी हो रही है। कोई अब उसे रोक नहीं सकता।

भगवानदास केला



OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H323.2/K29D Accession No. G.H. 400

Author केला, भगवान दास ।

Title देशी राज्यों की जन-जागृति 1949

This book should be returned on or before the date last marked below.

भारतीय ग्रन्थमाला—संख्या ३२

देशी राज्यों की जन-जागृति

लेखक

देशी राज्य शासन, भारतीय शासन
कौटिल्य की शासनपद्धति,
आदि पुस्तकों के
रचयिता

भगवानदास केला



भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज, इलाहाबाद

पहला संस्करण
१००० प्रतियाँ

सन् १९४८

मूल्य*
पाँच रुपये

* 'देशी राज्य शासन' (जिसका मूल्य साढ़े तीन रुपये है) के साथ लेनेवालों से इस पुस्तक का मूल्य ४)

प्रकाशक :—

भगवानदास केला

व्यवस्थापक

भारतीय ग्रन्थमाला

दारागंज (इलाहाबाद)

मुद्रक:—

आर० एन० अवस्थी

कायस्थ पाठशाला प्रेस एण्ड प्रिंटिंग स्कूल,

इलाहाबाद

निवेदन

अंगरेजों के शासन-काल में भारतवर्ष के राजाओं ने अपने निरंकुश अधिकार, अपनी गद्दी और राज-चिह्न बनाए रखने के लिए क्या-कुछ नहीं किया ! सैकड़ों राज्यों में से, दो-एक अपवादों को छोड़ कर, कौनसा ऐसा भाग्यशाली है जहाँ के शासक ने बिना संघर्ष जन-जागृति हो जाने दी हो, जिसने सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के लिए समय-समय पर दमन, शोषण, लाठी-चार्ज, गोलीकांड, निर्वासन और जेल आदि का भरसक उपयोग न किया हो।

अब भारतवर्ष में अंगरेजी राज समाप्त हो गया है, पर उसका भूत बना हुआ है। थोड़े से ही राजाओं ने अपनी इच्छा से शासन सत्ता लोक-प्रतिनिधियों को सौंपने की दूरदर्शिता दिखाई है। अधिकांश ने तो बड़ी अनिच्छा और मजबूरी से ही कुछ शासन-सुधार किए हैं। लोकसेवकों के त्याग और तप तथा सर्वसाधारण के कष्ट-सहन से राजाओं को उत्तरदायी शासन स्थापित करने की प्रेरणा मिली और मिल रही है।

राजाओं के प्रायः स्वेच्छाचारी शासक से लेकर वैधानिक शासक के पद पर आने तक जन-जागृति की विविध अवस्थाएँ रही हैं। इसकी कथा बहुत लम्बी है। बड़े-बड़े राज्यों में से तो हरेक अपनी अलग-अलग पुस्तक चाहता ही है, कितने ही छोटे-छोटे राज्यों का जन-जागरण भी काफी रहस्यपूर्ण, मनोरंजक, शिक्षाप्रद और कई अंशों में रोमांचकारी है। यह तो निर्विवाद ही है कि सब देशी राज्यों की जन-जागृति के यथेष्ट वर्णन के लिए एक पुस्तक पर्याप्त नहीं होसकती; इसके वास्ते तो एक ग्रन्थमाला ही चाहिए। ऐसी ग्रन्थमाला के लिए

सामग्री जुटाना, उसका सम्पादन करना, और फिर उसे प्रकाशित करना बड़ी-बड़ी साधन-सम्पन्न त्यागशील और सेवाभावी संस्थाओं का काम है। हिन्दी साहित्य का भविष्य आशाजनक होने पर भी, कौन-जाने उपरोक्त संस्थाओं के संगठन में अभी कितना समय लगे! हमने अपने परिमित साधनों के अनुसार यह काम, जैसा बन आवे, कर डालने का निश्चय किया।

यह पुस्तक एक प्रकार से हमारी 'देशी राज्य शासन' की पूरक है। उसके पहले संस्करण में हमने जन-जागृति सम्बन्धी कुछ घटनाओं का भी उल्लेख किया था, पर दूसरे संस्करण में शासन सम्बन्धी विषय को ही रखने के विचार से जन जागरण की बातें उसमें से हटाली गईं। वे बातें इस पुस्तक में सिलसिलेवार और विस्तार से ले ली गई हैं। साथ ही इस पुस्तक में देशी राज्यों के शासन सम्बन्धी ऐसे परिवर्तनों का भी समावेश है, जो उस पुस्तक के छपने के बाद हुए हैं।

इस पुस्तक के पहले भाग में ऐसी बातों का वर्णन किया गया है, जो व्यापक हैं, जिनका सम्बन्ध सभी अथवा कई-कई राज्यों से है। दूसरे भाग में हमने नमूने के तौर पर कुछ खास-खास राज्यों या राज्य-समूहों की जन-जागृति का विचार किया है; हाँ, नमूने भारतवर्ष के उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम और मध्य—सभी भागों के लिये गए हैं। अधिक से अधिक राज्यों का विचार कर सकने के उद्देश्य से हमने यथा-सम्भव संक्षेप में लिखा है। इस प्रकार यह पुस्तक अपने विशाल विषय की झाँकी मात्र है। तथापि इससे पाठकों को यह मालूम हो जायगा कि जन-जागृति देश के किसी खास भाग की रियासतों में ही सीमित नहीं है, उसकी लहर सभी रियासतों में पहुँच गई है; भले ही उसका परिणाम या फल स्थूल रूप से दिखाई न दे। किन्तु कार्य-कर्ताओं के लिए अभी भी काम की कमी नहीं, यह पुस्तक में स्पष्ट बता दिया गया है।

हमने इस पुस्तक के लिए भरसक प्रयत्न किया है। मई-जून १९४७ में अस्वस्थ होते हुए भी हमने देहली, जयपुर, जोधपुर और अजमेर की यात्रा की। देहली में अ० भा० दे० रा० लोकपरिषद् के विविध कार्य-कर्ताओं से मिलकर कुछ बातें मालूम कीं। लोकसमाचार समिति के संचालक मित्रवर श्री० जगदीशप्रसाद जी चतुर्वेदी बी० ए०, एल-एल० बी० ने हमारी उस समय तक तैयार की हुई हस्तलिखित प्रति को देख कर आवश्यक सुझाव दिए। पीछे आपने इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखने की भी कृपा की। श्री शोभालाल जी गुप्त (स० सम्पादक, 'हिन्दुस्तान') ने हमें राजस्थान-सेवा-सङ्घ की दो पुरानी फाइलें दीं, उनसे हम इस पुस्तक के कई विषयों पर विशेष प्रकाश डाल सके हैं। जयपुर में दैनिक 'लोकवाणी' के स० सम्पादक श्री पूर्णचन्द जी जैन एम० ए० से तथा लादूराम जी जोशी से कई विषयों पर विचार-विनिमय हुआ। यहाँ ज्ञान-मन्दिर में संग्रह की हुई सामग्री के उपयोग करने की भी हमें सुविधा मिली। जोधपुर में सर्वश्री अचलेश्वरप्रसाद शर्मा (सम्पादक 'प्रजा सेवक'), रणछोड़दास जी गट्टाणी बी० ए०, एल-एल० बी० तथा भंवरलाल जी सर्राफ से खासकर जोधपुर राज्य सम्बन्धी सामग्री मिली। अजमेर में श्री रामनारायण जी चौधरी ने हमें अपने पिछले जेल-जीवन में लिखी 'राजस्थान का सार्वजनिक जीवन' पुस्तक की हस्तलिखित प्रति से लाभ उठाने का अवसर दिया। श्री० रघुवरदयाल जी के आदेश से श्री मूलचन्द जी पारीक ने बीकानेर के बारे में कुछ आवश्यक बातें हमारे पास लिख भेजने की कृपा की। इन सब सज्जनों के हम बहुत कृतज्ञ हैं।

अगस्त १९४७ से भारतवर्ष के इतिहास का नया अध्याय लिखा गया है। खासकर दिसम्बर १९४७ और जनवरी १९४८ देशी राज्यों के लिए कैसे परिवर्तन के रहे हैं, इसका अनुमान इसी बात से हो सकता है कि इस समय में भारतवर्ष के ५५० राज्यों में से ३८५

समाप्त हो गए या होने वाले हैं। इनमें काठियावाड़, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ और बुन्देलखंड और दक्षिण के राज्य हैं। टेहरी-गढ़वाल की घटनाएँ आकस्मिक या नाटकीय प्रतीत होती हैं। अस्तु, पुस्तक में नई से नई बातों का समावेश किया गया है।

इस पुस्तक को लिखते समय बारबार हमारे मन में उन त्यागशील महानुभावों का चित्र आया, जिन्होंने लोक-सेवा के लिए तरह-तरह के कष्ट उठाए और मानसिक यातनाएँ भोगीं; जो अपने माता-पिता, स्त्री, बच्चों और रिश्तेदारों से बिछुड़े रहे, जिन्होंने निन्दा-स्तुति तथा मानापमान की परवा न की, जो कितनी ही बार अपने घनिष्ठ मित्रों और साथियों की गलतफहमी और आक्षेपों के शिकार हुए, पर जो इन कठोर परीक्षाओं के समय भी अपने कर्तव्य-पथ से विचलित नहीं हुए। धन्य है ऐसे महानुभावों को! उन्होंने अपना जीवन सफल किया, और यदि शासन की निरंकुशता ने उन्हें बेमाई मौत मार डाला, तो वे मर कर अमर हो गए। हम अपने जीवन के पिछले पन्द्रह महीने अधिकतर इन लोकसेवकों की स्मृति में लगा सके, इसका हमें सन्तोष और आनन्द है। आशा है हमारी यह विनम्र रचना मानवता के उपासकों और खासकर रियासती जन-जागरण के प्रेमियों को रुचिकर होगी।

विनीत

भगवानदास केला

देशी राज्य शासन, का दूसरा संस्करण छप गया है। उसका परिचय इस पुस्तक के अन्त में दिया गया है।

प्रस्तावना

देशी राज्यों की समस्या आज भारत की प्रमुख राजनीतिक समस्या है। जब तक उनकी जनता भी प्रान्तों के निवासियों के समकक्ष न हो जाय, भारतवर्ष की सुरक्षा, शान्ति और उन्नति यथेष्ट रूप से नहीं हो सकती। रियासती जनता को दोहरी गुलामी से छुटकारा पाने का जो प्रयत्न करना पड़ा और कर रहा है उसका इतिहास बड़ा गौरवपूर्ण है, यद्यपि वह प्रकाशित नहीं हुआ है। उनके संग्राम में वह चमकदार रोशनी तो नहीं थी जो सारे संसार में चकाचौंध कर सके, पर उसमें वह आंतरिक शक्ति अवश्य थी जो अंधकार या प्रकाश में समान रूप से टिक सके। रियासती आन्दोलन-कर्ताओं को प्रतिष्ठा, पद अथवा मान-मर्यादा से दूर ही रहना पड़ा है। समाचार की दुनिया में वे एक कोने में पड़े रहे हैं। लेकिन उनके त्याग और पुरुषार्थ को देखा जाय तो हमें आश्चर्य होगा।

आज से चालीस पचास साल पहले रियासती भारत उसी दुनिया में था, जिसमें उनके दादे परदादे शताब्दियों से रहते आये थे। शिक्षा, उद्योग, ऐसी चीजों की वहाँ गुंजायश ही कहाँ थी! रियासतों में क्या होता था, मानवता किस प्रकार पददलित होती है, सामंती शासन मानव जीवन के साथ कैसी विभीषिका रचता है, इसका पता आज तक न लगता, यदि चन्द मुट्ठी भर नौजवानों ने अपने जीवन की आहुति देकर शासन से विद्रोह न किया होता। उनको इस बात की भी आकांक्षा नहीं थी कि कोई उनका नाम याद रखेगा। उनके जीवन में उनका नाम शायद ही छपा हो—बाद में

कौन किसे याद करता है। आज तक किसी ने उनका इतिहास लिखने का विचार नहीं किया था और जब विचार भी किया गया तो उनके बारे में सामग्री जुटाना कठिन रहा। आज यदि रियासतों में कहीं-कहीं नागरिक आजादी के दर्शन होते हैं, एकाध लोकप्रिय मन्त्री दिखाई देते हैं, या सभा-सम्मेलन हो जाते हैं तो उसके पीछे ये नींव के पत्थर हैं।

कौन जानता है कि भारतवर्ष में आज भी ऐसे कोने हैं जहाँ सदियों से कोई सार्वजनिक सभा नहीं हुई, और जहाँ सन् १९४७ की अगस्त के बाद सभा हुई तो १७ आदमी गोली के घाट उतार दिये गये और ५० घायल कर दिये गये। बुन्देलखण्ड के बावनी राज्य के हरचन्दपुर गाँव म २५ सितम्बर को नवाबी अत्याचार का जो दृश्य दिखाई दिया वह एक युग पहले सारे देश की रियासतों में दिखाई देता था।

देशी राज्यों में जो लोग काम करते थे उनको बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उनमें से अधिकांश गरीब आदर्शवादी युवक थे, जिनको राष्ट्रीय कार्य के साथ अपना जीवन-निर्वाह भी करना पड़ता था। राज्यों में रह कर कार्य करना प्रायः असम्भव था, फल-स्वरूप उनको प्रांतों में इधर उधर भटकना पड़ता था। कहीं-कहीं यह स्थिति अब भी है। कांग्रेस की नीति राजाओं के साथ झगड़ा करने की नहीं थी, इसलिए उनको अपना कार्य अपने ही बल पर चलाना पड़ा। यद्यपि आजकल समाचारपत्र रियासती जनता की आवाज़ प्रकट करने को उत्सुक रहते हैं, उस समय किसी राजा के विरुद्ध कुछ लिखना कानून के विरुद्ध ही नहीं, नीति के विरुद्ध भी समझा जाता था। बड़े-बड़े अखबार जो अंग्रेजों के विरुद्ध आग बरसाते थे, राजाओं के विरुद्ध एक शब्द लिखना देशद्रोह समझते थे। राज्यों से ऐसे पत्रों को इनकी सेवाओं का पुरस्कार भी मिलता था और अब भी मिलता

है। आज भी जो पत्र राजतन्त्र के विरुद्ध लम्बे-लम्बे अग्रलेख लिख सकते हैं, राजाओं की व्यक्तिगत सही शिकायतें छापना पसन्द नहीं करते। अंग्रेजी पत्र तो क्या तब और क्या अब अपवाद-स्वरूप ही राज्य-विरोधी समाचार छापते हैं। बड़े-बड़े पत्रों व समाचार-समितियों के सम्वाददाता राज्य के प्रकाशन अफसर या अन्य अधिकारी होते हैं और उनके द्वारा प्रजा-पक्ष के समर्थन होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

इस प्रकार रियासती आन्दोलन को न तो कुशल नेतृत्व ही सुलभ था, न प्रकाशन की सुविधा ही। आर्थिक सहायता तो और भी नगण्य थी। काठियावाड़ अथवा राजस्थान की चंद रियासतों को छोड़ सारे भारत के रियासती कार्यकर्ता आज तक भीषण अर्थाभाव से पीड़ित रहे हैं। रियासतों में शिक्षा तथा उद्योगों के अभाव ने उस संपन्न मध्यम वर्ग को उत्पन्न ही नहीं किया, जो भारतीय राष्ट्रवाद को तन मन धन से सहायता देता रहा। फल-स्वरूप रियासती आंदोलन एक सर्वहारा आन्दोलन रहा। पर इसकी जड़ें बहुत मजबूत रही हैं। इसके पीछे जिन हुतात्मओं ने काम किया, उनका बलिदान व्यर्थ नहीं गया और आज सौभाग्य से देश के बड़े-बड़े नेता रियासती समस्याओं में रुचि रखने लगे हैं। आज दिन भी हैदराबाद, जूनागढ़ राजस्थान उड़ीसा, बुंदेलखंड, हिमालय राज्य, पंजाब के रियासती जन-संगठन जीवनमरण संघर्ष में लगे हैं पर आज उनकी सुनने-देखनेवाले हैं।

श्री भगवानदास केला ने इस आन्दोलन के प्रथम इतिहास लेखक होने का जो संकल्प किया, उसके लिए रियासती जनता व हिन्दी संसार दोनों उनके कृतज्ञ रहेंगे। आज से ५ वर्ष पहले उनकी प्रेरणा से मैंने इस पुस्तक को लिखने का इरादा किया था। पर अपने प्रमाद तथा अस्त-व्यस्त परिस्थितियों के कारण यह सौभाग्य मुझे प्राप्त न हो सका। इसका फल अच्छा ही हुआ।

श्री केला जी जैसे विचार-शील लेखक के हाथ में पुस्तक एक ऐसी रचना बन गयी है जो जीवित रहेगी। उनकी शारीरिक दुर्बलता तथा यात्रा संबंधी कठिनाइयों के कारण यह संभव है कि जितनी सामग्री पुस्तक में आ सकती थी नहीं आ पायी हो, पर जिस परिश्रम के साथ उन्होंने सामग्री संग्रह करने का प्रयत्न किया और प्राप्त सामग्री का उपयोग किया, उससे पुस्तक अत्यन्त उपादेय बन गयी है। श्री केला जी इसी प्रकार रियासती जनता की सेवा तथा हिन्दी साहित्य के भंडार की वृद्धि कर हम नवयुवकों को आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते रहें, यह हमारी कामना है।

लोक समाचार समिति
२५ विंडसर प्लेस; नया दिल्ली } जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी

———

विषय-सूची

पहला भाग

अध्याय	विषय		पृष्ठ
१	विषय प्रवेश		१
२	अंगरेजी राज में राजाओं का स्वेच्छाचार	...	६
३	जनता का असन्तोष	...	१२
४	क्रान्तिकारी आन्दोलन	...	१६
५	जागृति का श्रीगणेश	...	३१
६	बिजौलिया का सत्याग्रह	...	३६
७	राजपूताना मध्यभारत सभा	...	४४
८	राजस्थान सेवा-संघ (१) [सङ्गठन और आदर्श]	..	५५
६	राजस्थान सेवा-सङ्घ (२) [१—बेगू का किसान आन्दोलन, २—मेवाड़ के जाटों का आन्दोलन, ३—सिरोही हत्याकांड, ४—बून्दी में स्त्रियों पर फौजी सिपाहियों का हमला, ५—बून्दी में गोलीकांड]	...	६५
१०	केन्द्रीय संस्था की स्थापना के प्रयत्न	...	८५
११	अ० भा० दे० रा० लोकपरिषद (पहला अधिवेशन)		६१
१२	सन् १६२७ से १६३६ तक	...	६६
१३	सन् १६३६ के बाद	...	१०७
१४	कांग्रेस और देशी राज्य	...	१२४
१५	विविध विचार-धाराएँ	...	१३५

दूसरा भाग

अध्याय	विषय		पृष्ठ
१६	प्रस्तावना	...	१४३
१७	कश्मीर	...	१४६
१८	पंजाब के राज्य [शिमला पहाड़ी राज्य ; दूसरे राज्य—पटियाला, नाभा, झींद]	...	१६१
१९	काठियावाड़ और गुजरात के राज्य [भावनगर, राजकोट, बड़ोदा]	...	१८४
२०	राजपूताने के राज्य [बीकानेर, अलवर, भरतपुर, जोधपुर, मेवाड़, जयपुर, जैसलमेर, कोटा, डूंगरपुर]		१९८
२१	मध्यभारत के राज्य [गवालियर, इन्दौर, भोपाल, रीवा, रतलाम, झाबुआ]	...	२७७
२२	संयुक्तप्रान्त के राज्य [टेहरी-गढ़वाल, रामपुर]	...	३२८
२३	हैदराबाद	... ...	३३७
२४	मैसूर	... ...	३४७
२५	त्रावणकोर	... ...	३५३
२६	छोटे-छोटे राज्य [उड़ीसा, छत्तीसगढ़, बुन्देलखंड, काठियावाड़-गुजरात, दक्षिण और आसाम के राज्य]		३५७
२७	जन जागृति और साहित्य	...	३६६
२८	उपसंहार	... ...	३८०
	परिशिष्ट—पंजाब के राज्य, पटियाला, झींद, काठियावाड़ और गुजरात के राज्य, बीकानेर, अलवर, भरतपुर, जोधपुर, मालवा, गवालियर, इन्दौर, टेहरी-गढ़वाल, हैदराबाद, बुन्देलखण्ड	...	३९१

देशी राज्यों की जन-जागृति

पहला भाग

पहला अध्याय

विषय प्रवेश

इस धरती पर जिसपर हम खड़े हैं, कई हुकूमतें आईं और गईं। जनता ही रही है। वह सदा से यहाँ है, और सदा रहेगी। वह शासन के अधिकारियों की तरह बदला नहीं है। हम इन कष्टों में जीते रहे हैं। इन कष्टों का अन्त कर देने का आज हमने संकल्प कर लिया है। हम इन्हें समाप्त भी कर देंगे। हममें से कोई भी अत्याचारियों का हथियार नहीं बनेगा।

—विजय गोविन्द द्विवेदी

प्राचीन काल में राजा और प्रजा का सम्बन्ध— भारतवर्ष में, पहले अधिकांश राजा अपने राजधर्म का अच्छी तरह पालन करते थे, वे प्रजा को अपनी संतान मानते हुए उसकी सुख-समृद्धि का प्रयत्न करते रहते थे। प्रजा भी राजा को ईश्वर-रूप मान कर उसके प्रति बहुत भक्ति-भाव रखती थी। इस प्रकार राजा प्रजा

दोनों के सहयोग और प्रेम-भाव से राज्य में सुख शान्ति बनी रहती थी। धीरे-धीरे राजाओं में विलासिता बढ़ गई, वे एक-दूसरे से ईर्षा करने लग गए, उनकी आपस की फूट साफ दिखाई देने लग गई। देश-काल के साथ उन्होंने प्रगति नहीं की। सैनिक संगठन और साधन वहीं पुराने ढर्रे के बने रहे। उनमें आवश्यक सुधार या परिवर्तन नहीं किया गया।

मुसलमान बादशाहों का शासन—ऐसी स्थिति में मुसलमानों का यहाँ आकर अपने आक्रमणों में सफल होना और धीरे-धीरे दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार पा जाना स्वाभाविक ही था। मुसलमानों ने यहाँ आने पर जो शासन-व्यवस्था प्रचलित देखी, कुछ-कुछ उसी को अपनाना ठीक समझा। आरम्भ में बहुत समय तक उनके शासन में दृढ़ता न रही; समय-समय पर अलग-अलग खानदानों के बादशाह गद्दी पर बैठते रहे। इनके आर्थिक साधन बहुत कम थे, और ये स्थानीय नेताओं का भी यथेष्ट सहयोग प्राप्त न कर सके। मुगलों के समय में, खासकर सम्राट् अकबर के शासन-काल में उसकी उदार नीति, व्यापक दृष्टिकोण और स्थानीय शासकों के सहयोग से यहाँ केन्द्रीय सत्ता अधिकाधिक दृढ़ होती गई, अधिकांश राजा दिल्लीश्वर के अधीन और सहायक हो गए। अकबर की नीति जहाँगीर और शाहजहाँ के समय में भी जारी रही। भारतीय राजसत्ता प्रबल होती गई और जनता की सुख समृद्धि बढ़ती रही। औरंगजेब के समय में देश खूब धन-धान्य पूर्ण था। पर उसकी साम्प्रदायिक और अविश्वास की नीति ने जगह-जगह संघर्ष और विद्रोह पैदा कर दिया। अशान्ति बढ़ती गई। उसके उत्तराधिकारियों की विलासिता और आरामतलबी ने केन्द्रीय सत्ता को बहुत ही कमजोर कर दिया। सिक्ख, जाट, राजपूत और मराठा आदि शक्तियों का उदय हुआ। इनमें मराठे विशेष प्रभावशाली रहे। सम्भव था कि धीरे-धीरे सारे भारतवर्ष में नहीं

तो इस देश के अधिकांश में भाग उनका प्रभुत्व स्थापित हो जाता।

अंगरेजी राज की स्थापना—पर इस बीच में यहाँ कई योरपीय जातियों की कम्पनियों ने अपना कारोबार फैला लिया, और यहाँ की फूट और अराष्ट्रीयता से लाभ उठाकर वे राजनीतिक सत्ता भी प्राप्त करने लगीं। इनमें से अन्त में अंगरेजों की ईष्ट इंडिया कम्पनी को सफलता मिली। इसने अपने व्यापार को बढ़ाने के साथ-साथ यहाँ अपने राज्य का भी विस्तार कर डाला।

इस विषय की व्योरेवार बातों में न जाकर हमें यहाँ यह कहना है कि जब अंगरेजों ने इस देश में अपने पैर जमाए, उस समय यहाँ कोई प्रबल केन्द्रीय सत्ता न थी। मुगल बादशाह नाममात्र को 'सम्राट्' था। राजपूत आपस में लड़ रहे थे, मराठों में भी आपसी वैमनस्य के कारण यथेष्ट सङ्गठन नहीं था, फिर अंगरेजों ने अपनी कूटनीति से इन्हें और सिक्खों को फूट डालकर कमजोर कर डाला और अन्त में अपने अधीन कर लिया।

राजा लोग मालिक से मातहत बने—भारतवर्ष में अंगरेजी राज्य की स्थापना का कार्य सन् १७५७ से आरम्भ हुआ, कहा जा सकता है। पहले तो राजा शासक के पद पर थे, और अंगरेज उनसे विविध सुविधाओं की याचना करनेवाले प्रजाजन थे। धीरे-धीरे अंगरेजों के पैर यहाँ जमने लगे। ईस्ट इंडिया कम्पनी की राजाओं से संधियाँ होने लगीं। ये संधियाँ शुरू में बराबरी या मित्रता के नाते हुई। इनकी संख्या सिर्फ १२ हैं। बाद में कम्पनी की स्थिति दृढ़ होती गई। सन् १८१८ से जो संधियाँ हुईं, वे राजाओं की अधीनता सूचक होने लगीं। कुल देशी राज्यों में से सिर्फ चालीस से ही संधियाँ हुईं। बाकी को तो सनदें या इकरारनामे ही दिए गए। और, किसी राज्य से संधि हुई हो या उसके वास्ते सनद या इकरारनामा लिखा गया हो और उनकी शब्दावली चाहे जो रही हो, धीरे-धीरे सर्वोच्च सत्ता (ब्रिटिश

सरकार) की शक्ति और अधिकार बढ़ता गया। रीति-रिवाज से उसका राजाओं के प्रति होनेवाला व्यवहार बदलता गया। संधियों के अधिकांश भाग बेकाम हो गए, ब्रिटिश सरकार उनसे बंधी रहने को बाध्य न रही। बड़े से बड़े राजा में भी, चाहे वह पत्रव्यवहार में अपने आपको 'सम्राट का दोस्त' लिखने का गर्व करता हो, ब्रिटिश सरकार के निर्णयों का कुछ क्रियात्मक विरोध करने की शक्ति न रही। संधियों की अपेक्षा ब्रिटिश सरकार के निर्णयों का बल कहीं अधिक हो गया। जो राजा लोग ईस्ट इंडिया कम्पनी के बड़े से बड़े से भारतीय अधिकारी से ऊँचे पद वाले थे, जो किसी समय सम्राट् (इंगलैंड-नरेश) के मित्र थे, वे अब सम्राट् द्वारा नियुक्त अधिकारियों के अधीन हो गए।

बड़ौदा राज्य में भिन्न-भिन्न ऊँचे ओहदों पर वर्षों काम करनेवाले श्री खासेराव जाधव ने अपनी पुस्तक 'वेक-अप प्रिंसेज' (नरेशों जागो !) में लिखा है—'ये नरेश पहले स्वाधीन थे, आपस में उनका नाता बराबरी का था, और ब्रिटिश व्यापारी कारखानों के गवर्नर उनकी अधीनता में थे। परन्तु वहाँ से धीरे-धीरे सुलहनामों, इकरारनामों और रूढ़ियों ने उनको इन व्यापारी गवर्नरों की बराबरी में लाकर खड़ा कर दिया। वे इनके मित्र हो गए। दो राष्ट्रों में जो समानता का सम्बन्ध होता है; वह इन दोनों पक्षों के बीच में हुआ; लेकिन वह भी कहाँ रहा ! धीरे-धीरे शक्ति का पलड़ा उधर बढ़ा और नरेश इन व्यापारी गवर्नरों के आश्रित हो गए। वह अन्तर्राष्ट्रीय बराबरी की बात हवा हो गई। राजनीतिक अन्तर्राष्ट्रीय समानता के पद से गिर कर वे पराधीन और परमुखापेक्षी हो गए। यह है, संक्षेप में इन नरेशों के इतिहास का सार।'

सन्धियों का पोलखाना—हमने ऊपर कहा है कि बारह राजाओं से मित्रता या बराबरी की सन्धि हुई थी। पर इस मित्रता या बराबरी का मूल्य आँकने के लिए हमें उस समय के अधिकारियों के भाव

ध्यान में रखने चाहिएँ। गवर्नरजनरल की कौंसिल के बड़े मेम्बर (और पीछे गवर्नरजनरल) रहनेवाले सर जार्ज बार्लो ने सन् १८०३ में लिखा था कि ऐसी कोई रियासत न रहने देनी चाहिए, जिस पर ब्रिटिश प्रभुत्व न हो, अथवा जिस पर पूरा ब्रिटिश नियंत्रण न हो। वार्न हेस्टिंग्स ने सन् १८१४ में लिखा—'अपनी सन्धियों में हम उन्हें (देशी राजाओं को) स्वतन्त्र स्वीकार करते हैं। फिर हम एक रेजीडेन्ट मुकर्रर करते हैं। वह राजदूत की तरह न रहकर तानाशाह की तरह रहता है। वह उनके सभी निजी मामलों में भी दखल देने लगता है—और रेजीडेन्ट जो कुछ भी करता है, सरकार सभी में उसके साथ है।' यही नहीं, वार्न हेस्टिंग्स ने फरवरी १८१६ के एक लेख में साफ कह दिया कि 'असल में हमें राजाओं पर ब्रिटिश सरकार का ही सर्व प्रधान प्रभुत्व स्थापित करना है; भले ही हम इसकी घोषणा न करें। नाम में नहीं, लेकिन काम में हमें देशी राज्यों को अपना पिछलग्गू बना देना है।' क्या इस पर भी सन्धियों में सूचित मित्रता या बराबरी की बात में कुछ दम रहता है!

फिर, मित्रता की सन्धि लगभग छः सौ राज्यों में से सिर्फ बारह ही राज्यों से हुई थी, इसके बाद जो २८ सन्धियाँ हुईं, वे तो साफ तौर से अधीनता सूचक थी, और शेष राज्यों से तो कोई सन्धि हुई ही नहीं। सन्धियाँ कई प्रकार की हुई हैं, पर वे चाहे किसी भी प्रकार की हुई हों, और चाहे बहुत से राज्यों से न भी हुई हों, अंगरेजों की नीति यह रही कि जिस राज्य ने उनकी बाहरी मामलों में ही नहीं, भीतरी मामलों में भी पूरी अधीनता स्वीकार कर ली, उसे तो उन्होंने बना रहने दिया, और जिसने जरा स्वाभिमान या साहस का परिचय दिया, उसे बिलकुल मिटा दिया। अपने स्वार्थ की दृष्टि से अंगरेजों ने जहाँ उचित समझा, एक-एक राज्य को कई-कई हिस्सों में बाँट दिया, अथवा कितनी ही नई रियासतें कायम कर दीं।

विशेष वक्तव्य—अंगरेज साम्राज्यवादी थे, उनके सामने अपने साम्राज्य का हित मुख्य था, रियासतों की जनता के हित की आड़ में उनका स्वार्थ सिद्ध हो सकता तो उसकी आड़ लेने में उन्हें संकोच न था। अपने साम्राज्य को हानि न पहुँचाते हुए कभी-कभी उन्होंने रियासती जनता के हित की भी बात की, तथापि यह स्पष्ट है कि रियासती जनता की चिन्ता उनका मुख्य लक्ष्य नहीं रहा। जनता में अपने हित की भावना क्यों और किस प्रकार जागृत हुई, और उसने इस विषय में क्या-क्या कदम उठाया, यह अगले पृष्ठों में बताया जायगा।



दूसरा अध्याय

अङ्गरेजी राज में राजाओं का स्वेच्छाचार

अंगरेजों की सार्वभौम सत्ता स्थापित होने पर लोगों के हाथ से विद्रोह का सामर्थ्य छिन गया और ज्यों-ज्यों राजा अंगरेजों से दबते गए त्यों त्यों वे प्रजा की उपेक्षा करने लगे।

—रामनारायण चौधरी

पहले राजाओं को जनता की इच्छाओं का लिहाज करना पड़ता था—जब तक भारतवर्ष में अंगरेजी राज्य की जड़ नहीं जमी थी, यहाँ राजाओं को जनता की इच्छाओं और आवश्यकताओं का बहुत लिहाज करना पड़ता था। बात यह थी कि राजाओं की समय-समय पर आपस में लड़ाई होती रहती थी और कभी उन्हें बाहरी शत्रुओं का भी मुकाबला करना पड़ता था। इस काम के लिए उन्हें

धन जन की ज़रूरत होती रहती थी, और अपनी प्रजा से यह सहायता प्राप्त करने के लिए राजाओं के लिए आवश्यक था कि वे जनता के अभाव अभियोगों की तरफ काफी ध्यान दें, और अपने शासन-प्रबन्ध से उसे संतुष्ट रखें। किसी राजा का व्यवहार ठीक न होने की दशा में उस राजा को यह आशंका रहती थी कि प्रजा किसी दूसरे राजा या बाहरी शत्रु से न मिल जाय। उस समय प्रजा हथियारबन्द थी। उसके हाथ में यह ताकत थी कि वह दुर्व्यवहार या कुशासन करने-वाले राजा के विरुद्ध सफलतापूर्वक बगावत करे और उसे गद्दी से उतार कर उसकी जगह दूसरे व्यक्ति को राजा बनादे।

अंगरेजी राज में राजाओं द्वारा जनता की उपेक्षा—जब अंगरेजों की प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सारे भारत पर हुकूमत जम गई, और सभी राजा उनके अधीन हो गए, तो इससे यह लाभ तो हुआ कि अब राजाओं की एक दूसरे से लड़ाई होनी बन्द हो गई, और उन्हें बाहरी शत्रुओं का भी भय न रहा। अब वे बेफिक्री का जीवन बिताने लगे। पर इसका परिणाम रियासती जनता के लिए बड़ा अनिष्टकारी हुआ। राजाओं को अब न तो जनता का कुछ भय ही रहा, और न उन्हें उसकी सहानुभूति और सहयोग की आवश्यकता ही रही। वे उसकी उपेक्षा करने लगे। यदि उन्हें किसी बात की चिन्ता रही तो सिर्फ अपने अंगरेज प्रभुओं के कृपा-पात्र बने रहने की। राजाओं ने समझ लिया कि जब तक अंगरेज अधिकारी हमसे प्रसन्न रहेंगे, हम सुख की नींद सो सकते हैं। प्रजा हमारा बाल बाँका नहीं कर सकती।

रियासती अत्याचार—यद्यपि ब्रिटिश भारत में भी नौकरशाही ने समय-समय पर ऐसे अत्याचार किये हैं, जो सभ्य शासन के लिए कलंक है, तथापि देशी राज्यों में होनेवाले अत्याचार उनसे बढ़-चढ़

कर रहे हैं। इनका अनुमान बाहरवालों को आसानी से नहीं होता, भुक्त-भोगी ही इन्हें जानते हैं। यहाँ तक कि 'रियासती अत्याचार' एक विशेष अर्थ सूचक शब्द हो गया है। अधिकांश रियासतों का देश के दूसरे भागों से बहुत कम सम्पर्क रहा है, रेल तार डाक आदि की यथेष्ट व्यवस्था न होने से आमदरफ़्त और यातायात की सुविधा नहीं है। इसलिए रियासतों में होनेवाले अत्याचारों का बाहरी दुनिया को पता नहीं लगता। अनेक आदमी कई-कई वर्ष घोर कष्टों का जीवन बिताते और अन्त में मर जाते हैं तो भी थोड़ी दूर रहनेवालों को उनका हाल मालूम नहीं होने पाता। रियासतों में लिखने-बोलने की आजादी बहुत कम रही है, फिर समाचारपत्र निकालने की बात ही क्या! इस समय विविध-कारणों से देश में इतनी जागृति हो जाने पर भी अधिकांश रियासतों में घोर अन्धकार है, और वहाँ के अंधकार की बात दूसरों की जानकारी में बहुत कम आपाती है। इससे सहज ही अनुमान हो सकता है कि पहले कैसी स्थिति रही होगी। आदमी भीतर ही भीतर कष्ट पा रहे थे; घुट-घुट कर मर रहे थे, और मरने से भी बुरी हालत में जिन्दगी के दिन काट रहे थे, पर उनकी पुकार उनके दूसरे भाई नहीं सुन पाते थे। कुछ साहसी कार्यकर्ता बहुत संकट झेल, कर, अपनी जान जोखम में डालकर इस बात का प्रयत्न करते थे कि रियासती जनता पर होने वाले अत्याचारों पर प्रकाश डालें। पर उनका यथेष्ट सङ्गठन न होने से उन्हें विशेष सफलता न मिलती।

ब्रिटिश सरकार की नीति—सन् १८५७ के भारतीय स्वतंत्रता युद्ध में अंगरेजी राज के लिए भारी सङ्कट उपस्थित हो गया था। अंगरेजों का राज समाप्त हो जाने का प्रसङ्ग आया था। पर देशी राजाओं में से अधिकांश ने अंगरेज शासकों के प्रति वफादारी दिखाई, और भारतवर्ष को स्वाधीन होने का अवसर न दिया। राजाओं के इस व्यवहार ने भारतवर्ष का भावी इतिहास बहुत समय के लिए अंधकार-

मय बना दिया। अस्तु, जब कि अंगरेज पहले देशी राज्यों को समाप्त करने और राजाओं को पदच्युत करने में लगे हुए थे, सन् १८५७ से उन्होंने समझ लिया कि देशी रियासतों को अंगरेजी राज्य में मिलाना इतना लाभदायक नहीं है, जितना उन्हें बनाये रखना। राजा महा-राजाओं द्वारा रियासती जनता के जन-धन का खूब शोषण किया जा सकता है, और इस कार्य की जिम्मेवारी से भी बचा रहा जा सकता है। कारण, रियासती जनता के सामने उस पर सख्ती या अत्याचार करनेवाले के रूप में राजा और उसके कर्मचारी ही आते हैं, जब कि वास्तव में सब काम अंगरेज प्रभुओं के इशारे पर या सहमति से होता है। ब्रिटिश सरकार ने देशी राज्यों में अहस्तक्षेप की नीति बर्ती, इसका अर्थ यही था कि राजाओं को प्रजा से मनमानी करने की बहुत-कुछ छूट दे दी। जब तक कोई राजा सरकार को खुश रख सके, वह अपने राजछत्र और ऐश्वर्य के साधनों को सुरक्षित समझ सकता था। अगर उसके दुर्व्यवहार से पीड़ित होकर जनता उसके विरुद्ध सिर उठाने का साहस करे तो ब्रिटिश सरकार की फौजें और संगीनें राजा की मदद के लिए मौजूद थीं।

कभी-कभी कुछ आदमी जो बहुत अधिक सताये जाते, या जो उनके रिश्तेदार आदि होते, किसी तरह अपनी फरियाद अंगरेज अधिकारियों के पास इस आशा से पहुँचाते कि ऐसा करने से कुछ सुधार होगा। कुछ दशाओं में साहसी लोकसेवी कार्यकर्त्ता बहुत उद्योग करके राजनीतिक विभाग के अफसरों के सामने राजाओं के दुष्कृत्यों का भंडाफोड़ करते, पर इसका भी कुछ अच्छा नतीजा निकलना निश्चित न था। बात यह थी कि जहाँ तक जनता का सम्बन्ध था, प्रायः राजा और अंगरेज अधिकारियों में 'मिली भगत' थी; 'चोर-चोर मौसेरे भाई' की कहावत चरितार्थ होती थी। यह शंका रहती थी कि राजा के विरुद्ध शिकायत करनेवाले कार्यकर्ता के खिलाफ

ही कोई कड़ी कार्रवाई न हो जाय, अथवा उसका नाम राजा को मालूम हो जाने पर वह उसका रियासत में रहना ही दूभर न कर दे।

राजाओं का स्वार्थसाधन; कर्मचारियों का शोचनीय सहयोग—अधिकांश राजाओं ने यह नीति इख्त्यार की कि जनता से अधिक-से-अधिक द्रव्य प्राप्त करना, उससे स्वयं भी मौज उड़ाना, और साथ ही अपने अंगरेज प्रभुओं को भी संतुष्ट करना। राजाओं को अपने इस स्वार्थ-साधन के लिए कुछ खुशामदी, जी-हजूर, नीति-हीन और कठोर कर्मचारियों के सहयोग की आवश्यकता थी; दुर्भाग्य से इनकी कमी न रही। कितने ही आदमी अपनी सेवाएँ अर्पण करने-वाले मिलते रहे। अगर एक पदाधिकारी ऐसे कार्य को अपनी आत्मा के विरुद्ध मान कर छोड़ता तो उसकी जगह भरने के लिए कई-कई आदमी उम्मेदवार होते; और अगर संयोग से कोई स्थानीय आदमी अपने भाइयों पर काफी जोर जुल्म न कर सकता तो राजा के लिए बाहरी आदमी बुलाने का रास्ता खुला हुआ था; फिर इस काम में अर्थात् 'योग्य' व्यक्ति के चुनाव में मदद देने के लिए राजनीतिक विभाग हरदम तैयार था।

जनता के अभावों और कष्टों की वृद्धि—रेजीडेंटों और पोलिटिकल अफसरों की अधीनता और नियंत्रण में रहते हुए राजा लोग जनता को अपने निजी भोगविलास और अपने अंगरेज प्रभुओं के स्वार्थ-सिद्धि का साधन मात्र समझने लग गये। वे राजधर्म को भूल गये और प्रजा के प्रति वात्सल्य और प्रेम-भाव जाता रहा। अब राजा ने प्रजा को पुत्रवत् न समझा, और उससे गैर आदमी का सा व्यवहार किया। राजा को इस बात की चिन्ता न रही कि मेरे राज में जनता की शिक्षा या स्वास्थ्य आदि की व्यवस्था कैसी है, तथा उसका निर्वाह भी ठीक तरह होता है या नहीं, फिर जनता की दूसरी आवश्यकताओं

को पूरा करने की तो बात ही क्या! ऐसी स्थिति में जनता के अभावों और कष्टों का बढ़ना स्वाभाविक ही था। इस विषय की खुलासा चर्चा अगले अध्याय में की जायगी। यहाँ पाठकों का ध्यान इस बात की ओर दिलाना है कि भारतवर्ष में अंगरेजी राज की जड़ मज़बूत होने में राजाओं का बड़ा भाग रहा है, और अंगरेजी राज में राजाओं का पद चाहे जैसा नगण्य होता गया, उन्हें अपनी प्रजा के साथ स्वेच्छाचार करने की बहुत सुविधा और प्रोत्साहन मिला।

'लन्दन टाइम्स' की साक्षी—इस विषय में स्वयं अंगरेजों के प्रसिद्ध पत्र 'लन्दन टाइम्स' के सन् १८५३ में लिखे हुए लेख का नीचे दिया हुआ अंश बहुत विचारणीय है। उसने लिखा था 'पूर्व के इन निस्तेज और निकम्मे राजा नामधारियों को जिन्दा रखकर हमने उनके स्वाभाविक अन्त से उनको बचा लिया है। प्रजाजन बगावत के द्वारा अपने लिए एक शक्तिशाली और योग्य नरेश ढूंढ़ लिया करते हैं। पर जहाँ अब भी देशी राजा है, हमने वहाँ के प्रजाजनों से यह सुविधा और अधिकार छीन लिया है। यह इल्जाम सही है कि हमने इन राजाओं को सत्ता तो दे दी, पर उसकी जिम्मेदारी से उन्हें बरी कर दिया। अपनी नपुंसकता, दुर्गुण और गुनाहों के बावजूद भी केवल हमारी तलवार के बल पर ही वे अपने सिंहासनों पर टिके हुए हैं। नतीजा यह है कि अधिकांश रियासतों में घोर अराजकता फैली हुई है। राज्य का कोष किराए के टट्टू जैसे सिपाहियों और नीच दरबारियों पर बरबाद हो रहा है, और गरीब रियाया से बेरहमी के साथ वसूल किए गए भारी करों के रुपयों से नीच-से-नीच मनुष्यों को पाला जा रहा है। असल में अब यह सिद्धान्त काम कर रहा है कि सरकार प्रजा के लिए नहीं, प्रजा ही राजा और उसके ऐशोआराम के लिए है, और यह कि जब तक हमें राजा की सत्ता और उसके सिंहासन की रक्षा करना अभीष्ट है,

तब तक हमें भी भारत की सर्वोच्च सत्ता के रूप में वे तमाम बातें करनी ही होंगी, जो ऐसे राजा अपनी प्रजा के प्रति करते हैं।"

ये पंक्तियाँ अब से लगभग सौ वर्ष पहले की हैं, जब कि यहाँ ईस्ट इंडिया कम्पनी का शासन था; परन्तु ये भारतवर्ष का शासन ब्रिटिश पार्लिमेंट के हाथ में जाने के बाद की स्थिति को भी सूचित करती हैं, यहाँ तक कि भारत में अंगरेजी राज समाप्त होने के समय तक भी इनमें बहुत कुछ सचाई रही है।



तीसरा अध्याय

जनता का असन्तोष

पृथक् राजकुमार-कालिजों में उनकी शिक्षा, योरोपियन शिक्षकों के नीचे उनका प्रारम्भिक पालन-पोषण, प्रवास-जीवन का प्रभाव तथा देश के जन-जीवन की विस्तीर्ण धाराओं एवं अपने राज्यों की जनता से उनकी विरक्ति—इन सब कारणों से राजाओं में और राष्ट्रीय भारत के नेताओं में एक चौड़ी खाई बन गई।

—बलवन्तराय मेहता

अंगरेजी राज में राजाओं की स्वेच्छाचारिता के साथ जनता का असन्तोष बढ़ानेवाले अभाव अभियोग बढ़ते गए। पहले उद्योग-धंधों का विचार करें।

उद्योग-धंधों का नाश—लोगों की आजीविका के मुख्य साधन ये होते हैं—कारीगरी, व्यापार और खेती। देशी राज्यों में इन सभी

साधनों पर भारी आघात पहुँचा। कुछ इने-गिने राज्यों को छोड़कर हरेक राज्य अपनी कितनी ही आवश्यकताओं के लिए परावलम्बी हो गया। दियासलाई, बर्तन, सूई आदि बहुत सी चीजें तो राज्य में बनती ही न थीं, और कपड़ा या शक्कर आदि जो चीजें बनती भी थीं वे इतने परिमाण में नहीं बनती थीं कि राज्य के सब लोगों की ज़रूरतें पूरी हो सकें। इसका कारण था। राज्य की ओर से इन चीजों को बनाने की कारीगरी और उद्योग-धंधों को कोई प्रोत्साहन न मिला; इसके विपरीत, अंगरेज अफसरों और सरकार को खुश करने के लिए राज्य में विदेशी माल की आयात बढ़ाने की विविध चेष्टाएँ की गईं।

कपड़े में परावलम्बन—कपड़े की बात लीजिए। जो भारतवर्ष दूसरे देशों की जनता के लिए कपड़ा देकर उनके शरीर ढकता था, अंगरेजों के शासनकाल में खुद अपनी ही ज़रूरत पूरी करने के लिए दूसरों का मुँह ताकने वाला हो गया। इस प्रकार इस देश के दूसरे हिस्सों की तरह रियासतों में भी कपड़े का कारोबार चौपट हो गया। गाँव-गाँव में विलायती कपड़ा पहुँचने लगा। साथ ही रेजीडेंटों आदि के प्रत्यक्ष नहीं तो परोक्ष दबाव के कारण राजाओं ने भी इसे प्रोत्साहन दिया। राजा लोग खुद विलायती कपड़े पहनें तो उनके 'स्वामिभक्त' राजकर्मचारी तथा खुशामदी रईस आदि उनका अनुकरण करने वाले ठहरे। साधारण जनता बहुत कुछ मजबूरी से विलायती कपड़े का इस्तेमाल करने लगी। यहाँ तक कि गाँव की स्त्रियाँ तक विदेशी कपड़ा पहनने की आदी हो गईं, आदमी तो साफे और धोती आदि विदेशी पहनने ही लगे।

नमक और चीनी आदि की बात—नमक की कहानी तो बहुत ही दर्दनाक है। भारतवर्ष की अनेक रियासतों में समुद्री तट या झील आदि होने से यहाँ नमक काफी परिमाण में होता था; आदमी अपनी

ज़रूरत के लिए इसे खुद ही बना सकते थे। इस प्रकार इस पदार्थ को दूर से लाने या मंगाने का सवाल ही नहीं उठता था। पर अंगरेज सरकार ने अपने स्वार्थ के लिए देशी राज्यों से ऐसी सन्धियाँ कर लीं कि वहाँ के आदमी नमक न बना सकें। देश भर के नमक के व्यापार का एकाधिकार भारत-सरकार को रह गया। वह बहुत सा नमक विदेशों से भी मंगाने लगी। और नमक के भंडार के पास रहने वाली रियासती जनता अपनी इस जरूरत को पूरा करने के लिए उसके आश्रित हो गई। नमक आदमी के भोजन का एक अत्यन्त आवश्यक पदार्थ होने से, गरीब से गरीब आदमी को भी इसकी जरूरत होती है। इस तरह परावलम्बन की बात रियासती जनता की नीचे से नीची सतह तक पहुँच गयी; उसकी दशा 'समुद्र में भी मीन प्यासी' की हो गई। नमक बनाने वाले असंख्य आदमियों का धन्धा मारा गया, और वे दूसरी मेहनत मजदूरी करने पर मजबूर हो गए।

इसी प्रकार, बहुत सी रियासतों में चीनी या शक्कर न सिर्फ उन रियासतों से बाहर की, बल्कि भारतवर्ष से भी बाहर की मगाई जाने लगी। ब्रिटिश सरकार ने विदेशी कल कारखाने वालों और जहाजी कम्पनियों को सुविधा देकर यहाँ विदेशी चीनी के आने और खपने का रास्ता साफ कर दिया।

जनता की भयंकर निर्धनता—इस प्रकार एक ओर तो उद्योग धन्धों के नष्ट होने से लोगों को आजीविका के साधनों की बहुत कमी हो गई। दूसरे, विलायती पदार्थों की खरीद बढ़ने से अधिकाधिक धन विदेशों को जाने लगा। इससे देश में निर्धनता उत्तरोत्तर बढ़ती गई। कुछ ऊँचे दर्जे के राजकर्मचारी, जमींदारों और सेठ साहूकारों को छोड़कर सर्वसाधारण की आर्थिक स्थिति बहुत शोचनीय हो गई। देशी राज्यों की निर्धन जनता की स्थिति या तो भुक्त-भोगी ही जानते

हैं, या वे लोग समझते हैं जो उनके निकट सम्पर्क में रहते हैं ! दूसरे आदमी उसका ठीक अनुमान नहीं कर पाते। देशी राज्यों में राजपूताने की, और उसमें भी खासकर भीलों की दशा उनके ही सजातीय भील अध्यापक श्री-प्रेमचन्द जी के शब्दों में सुनिए— "कपड़े के अभाव से बहुत सी जगह स्त्रियाँ आधी लज्जा भी नहीं ढक सकतीं और पुरुष एक लंगोटी और पछौड़े के सहारे दिन, और आग के सहारे रात काटने पर मजबूर होते हैं। ओढ़ने-बिछौने की कमी के कारण कई बच्चे एक ही फटी हुई तार-तार गुदड़ी में पड़े रहते हैं; नहीं-नहीं, कहीं-कहीं खाद की रोड़ियों में गढ़े खोदकर उनमें बच्चों को ठूंस कर ऊपर से ढक दिया जाता है। हम लोगों को जबरदस्ती गरीब और मूर्ख रख कर भी संतोष नहीं किया जाता, बल्कि गाँव में शराब के ठेके की दुकान खोलकर राज्य ने हमारे लिए दुराचार का खासा प्रलोभन कर रखा है। सफाई और अन्नवस्त्र काफी न मिलने के कारण अधिकांश भील दुर्बल और रोगी रहते हैं। प्लेग, इन्फ्लुएंजा और हैज़े के समय तो घर के घर खाली हो जाते हैं। राज्य की तरफ से उन्हें कोई मदद या औषधि नहीं मिलती।"* यह बात उदयपुर के भीलों के सम्बन्ध में कही गई है। याद रहे कि इन जंगली जातियों के सहारे ही उदयपुर राज्य की नींव रखी गई, और इन्होंने समय-समय पर इस राज्य की रक्षा की है। तिस पर भी इनकी यह दशा है ! फिर दूसरी जातियों के आदमी राज्य से क्या आशा करें ! और जो बात उदयपुर की है, वही थोड़े बहुत भेद से बहुत से दूसरे राज्यों की अधिकांश जनता की है।

असन्तोष के अन्य कारण; अशिक्षा—जनता के असन्तोष के अन्य कारणों में अशिक्षा मुख्य है। अधिकतर राजाओं ने जनता को

---

*'श्री. पथिक जी का बयान' से

शिक्षित करने की ओर घोर उदासीनता रखी। उनकी यह धारणा रही कि अशिक्षित जनता पर मनमानी हुकूमत हो सकती है; पढ़-लिख कर आदमी ज्ञानवान हो जायँगे तो वे अधिकारों को समझने लगेंगे, और उनको प्राप्त करने का आन्दोलन करेंगे। इस लिए सार्वजनिक शिक्षा का प्रचार न करना चाहिए। ऐसी विचार-धारा बहुत अनिष्टकारी होती है। अगर जनता शिक्षित होकर शासन-प्रबन्ध में अपने अधिकार चाहती है तो क्या बुरा है! राजाओं को चाहिए था कि वे जनता को संतुष्ट करके अपना बल बढ़ाते। शिक्षित जनता राज्य की रक्षा और उन्नति के लिए तरह-तरह का त्याग करने और कष्ट उठाने के लिए स्वयं तैयार रहती है, जब कि अशिक्षित आदमी अपने-अपने स्वार्थ साधन में लगे रहते हैं, और राज्य के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करते। उनमें दुर्व्यसन और पारस्परिक लड़ाई-झगड़े बहुत होते हैं, जिनके नियंत्रण में राज्य को बहुत शक्ति लगानी पड़ती है; पुलिस और अदालतों का खर्च बढ़ जाता है। इसके अलावा राज्य में शिक्षित व्यक्ति कम होने से शासन-प्रबन्ध के लिए योग्य आदमी कम मिलते हैं; जो मिलते हैं वे सेवा-भाव से काम करनेवाले नहीं होते, वरन् अपना स्वार्थ सिद्ध करने वाले, रिश्वत आदि लेकर जनता का भार बढ़ाने वाले होते हैं! ऐसे राज्यों को अकसर बाहरी आदमियों की ज़रूरत होती है, और बाहरी आदमियों की जनता से विशेष सहानुभूति नहीं होती, वे खुद भारी-भारी तनख्वाह लेते हैं, और जहाँ तक उनका वश चलता है, वे अपने मित्रों या रिश्तेदारों आदि को ही दूसरी नौकरियाँ देने का प्रयत्न करते है। इस प्रकार राज्य का खर्च बहुत बढ़ता है। इससे जनता को यथेष्ट लाभ नहीं होता और उसे भारी कर-भार सहना पड़ता है। इससे स्वभावतः असन्तोष की वृद्धि होती है।

वर्तमान शिक्षा-पद्धति—कुछ राजाओं ने, चाहे शुद्ध भाव से, या दिखावे के लिए, अपने राज्य में शिक्षा का कुछ प्रचार किया, पर

उन्होंने ऐसी ही शिक्षापद्धति अपनाई और उसे प्रोत्साहन दिया, जिसे पाकर आदमियों में सादगी और संयम की भावना न बढ़ी, उलटा उनमें फेशन शौकीनी और आडम्बर की वृद्धि हुई। उनकी ज़रूरतें बहुत बढ़ गईं। इन ज़रूरतों को पूरा करने के लिए वे दिन-रात अधिकाधिक धन-संग्रह करने की फिक्र में रहने लगे। इसके लिए उन्होंने बुरे-भले सभी उपायों से काम लिया; उनमें छल, कपट, धोखेबाजी और बेईमानी बढ़ी। महाजनों और साहूकारों का ऋण लेनेवालों से, जमींदारों का किसानों से, और अधिकारियों का प्रजा से ऐसा व्यवहार होने लगा, जिसमें सद्भावना की कमी और निजी स्वार्थसिद्धि की अधिकता हो गई। इस प्रकार सार्वजनिक जीवन दूषित हो गया। लोगों की निरंतर बढ़ती हुई ज़रूरतें पूरी न होने पर उनके मन में हरदम दुख रहने लगा, और वे जाहिरा तौर पर नहीं तो निजी बातचीत में राज्य की निन्दा करने लगे।

राजकुमारों की कुशिक्षा—रियासती जनता के कष्ट बढ़ाने में राजकुमारों की कुशिक्षा का खास भाग रहा है। सरकार के राजनीतिक विभाग ने उन्हें योरोपियन शिक्षकों की देखरेख में रखा और उनकी शिक्षा के लिए अलग राजकुमार-कालिज स्थापित किए, जिनमें राजनीति, राजा के कर्तव्य, और शासन-प्रबन्ध आदि की शिक्षा का स्थान तो गौण रहा, मुख्य बात राजकुमारों को फेशन और विलासिता का जीवन बितानेवाला बनाने की रही। राजकुमार अमीरी ढंग से रहने लगे और बात-बात में, खान-पान, वेश-भूषा, खेल और शिकार आदि में अंगरेजों की नकल करनेवाले होगए। जब इनका राजगद्दी पर बैठने का समय आया तो ये अपनी प्रजा के लिए गैर या पराये आदमी होगए। साधारण नागरिकों की तो बात ही क्या, अच्छे-अच्छे विद्वानों, राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं और लोकनेताओं को अपने यहाँ के राजा के दर्शन दुर्लभ हो गए। इस प्रकार राजा लोग अपनी जनता

के मनोभाव, आवश्यकताएँ, और विचारधारा जानने में असमर्थ रहने लगे। उन्हें इस विषय की चिन्ता भी न रही। उनका एकमात्र काम अंगरेज अफसरों को खुश करना रह गया, जिनकी छत्रछाया में वे अपने आपको हर तरह सुरक्षित समझते थे।

नागरिक अधिकारों का अभाव—स्वेच्छाचारी, ऐयाश और आरामतलब शासकों के लिए जनता का शोषण करना स्वाभाविक है। वे तरह-तरह के कर लगाते हैं, और उन करों को वसूल करने के लिए बड़ी सख्ती और जुल्म करते हैं। जो नागरिक उनके अत्याचारों का विरोध करते हैं और व्याख्यान देने, सभा करने, लेख लिखने और छपाने की आजादी चाहते हैं, पुस्तकों और समाचारपत्रों का प्रचार करते हैं, उन्हें निरंकुश राजा राजद्रोही समझते और तरह-तरह के कष्ट देते हैं। हमारे अधिकांश राजा यह भूल गए कि आखिर जनता के भी कुछ अधिकार होते हैं, और राजा का कर्तव्य है कि उन अधिकारों का आदर करे तथा जनता की उन्नति और विकास में सहायक हो। प्रायः राजाओं ने जनता के नागरिक अधिकारों की अवहेलना की, और उसे अपने सुख और विलासिता की ज़रूरतें पूरी करने का साधन समझा।

जागीरदारी—रियासती जनता के असन्तोष का एक प्रधान कारण जागीरदारी प्रथा भी थी। किसी-किसी रियासत का तो सत्तर और अस्सी फीसदी या इससे भी अधिक हिस्सा जागीरी है। जागीरदार किसानों से लगान के अलावा तरह-तरह की अनेक लाग-बाग वसूल करते हैं, और इसके लिए उन पर बड़े-बड़े जुल्म करते हैं। उन्हें मारते पीटते, धूप में खड़ा रखते और भूखा नंगा रखते हैं, उनका तरह-तरह अपमान करते हैं, यहाँ तक कि उनकी बहू-बेटियों की बेइज्जती करते हैं। जागीरदार अपने इलाके के नाई, धोबी, कुम्हार आदि से

मनमानी बेगार लेते हैं और जो कोई जरा भी इनका विरोध करता है, उसे बुरी तरह सताते हैं। प्रायः इनके अत्याचारों के विरुद्ध राजा-महाराजाओं के यहाँ कोई सुनाई नहीं होती। इससे रियासती जनता के कष्टों का अनुमान हो सकता है।

विशेष वक्तव्य—इस प्रकार अंगरेजों के शासन-काल में विविध कारणों से जनता का असंतोष बढ़ता ही गया। इसे कम करने का वास्तविक प्रयत्न बहुत कम किया गया। इसे दबा कर रखने की चेष्टा की गई। अधिकारियों ने दमन के उपायों का आसरा लेकर लोगों के मन पर ऐसा आतंक बैठाना चाहा कि वे अपने असंतोष को प्रकट न करें। जब लोगों को खुल्लमखुल्ला अपना विरोध जाहिर करने का मौका न मिला, तो उन्होंने गुप्त उपायों से काम लेने का निश्चय किया। इस प्रकार देशी राज्यों में क्रान्तिकारी आन्दोलन आरम्भ हुआ, जिसके बारे में खुलासा आगे लिखा जायगा। याद रहे कि यह आन्दोलन खासकर अंगरेजों के विरुद्ध था। इस प्रकार यह कार्य देश की आजादी के लिए तो था, पर खास देशी राज्यों के लिए नहीं था।



चौथा अध्याय

क्रान्तिकारी आन्दोलन

नेता और जनता—उन्नीसवीं सदी के अन्त तक रियासती जनता के दुख बहुत बढ़े हुए होने पर भी देशी राज्यों में संगठित या उग्र आन्दोलन होने का विशेष परिचय नहीं मिलता। बात यह है कि शासन-सत्ता का संगठित विरोध होने के लिए लोगों के कष्टों या संकटों का होना ही काफी नहीं है, साथ में उनको महसूस करनेवाली चेतन

शक्ति की भी जरूरत होती है, और यह चेतन शक्ति हर किसी में नहीं होती; खास-खास व्यक्तियों में ही होती है। साधारण आदमी कष्टों और संकटों की हालत में घबरा जाते हैं, उन्हें यह नहीं सूझता कि हमें अपने उद्धार के लिए क्या करना चाहिए। बहुत से आदमी तो यह समझने लगते हैं कि इन दुखों का कोई उपाय ही नहीं है। ये तो दैवी या ईश्वरदत्त हैं। हमारे भाग्य के फल है। इन्हें भोगना ही पड़ेगा। इन्हें मिटाने का प्रयत्न करना व्यर्थ हैं। इस प्रकार वे निराशा और भाग्यवाद के नशे में बेसुध या सोए हुए से रहते हैं। उनका दिमाग क्रियात्मक बातों में नहीं लगता।

ऐसी सोई हुई जनता को जगाने का प्रयत्न करना किसी विशेष प्रतिभाशाली और साहसी आदमी का ही काम है। वह जनता की बात कहता है, उसकी वाणी में जनता बोलती है, वह जनता के लिए सोचता-विचारता है, वह जनता के दिमाग का काम करता है। वह आगे बढ़ता है, दूसरे आदमियों का नेतृत्व करता है, और नेता कहलाता है। रास्ते की बाधाएँ सबसे पहले उसे ही सहनी होती हैं, पर उसके आगे-आगे चलने से रास्ते की तकलीफें कुछ-न-कुछ कम होती रहती हैं, दूसरे यात्रियों के लिए रास्ता कुछ सुगम हो जाता है। फिर उनमें भी पीछे-पीछे चलने की, अपने नेता का अनुकरण करने की भावना पैदा होती है। इसके अलावा नेता के साहस का जनता पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी बहुत पड़ता है। कितने ही कामों को हम पहले बहुत कठिन या दुस्साध्य समझते हैं। पर जब कोई आदमी हमारे सामने उसे कर दिखाता है तो हम सोचने लगते हैं कि यह कार्य असम्भव नहीं है। दूसरा आदमी इसे कर सकता है, तो प्रयत्न करने पर हम भी इसे किसी न किसी अंश में तो अवश्य ही कर सकेंगे। इस तरह की विचार-धारा पहले कुछ ही आदमियों में बनती है, पर जब वे कार्य में भाग लेने लगते हैं, तो उनकी देखादेखी दूसरे आदमियों में भी ऐसी

भावना पैदा होती है, वे भी कार्य करने लगते हैं। इस प्रकार कार्य-कर्ताओं की संख्या बढ़ती जाती है, और उनका संगठन अधिक व्यापक और दृढ़ होता जाता है।

जन-जागृति से पहले—रियासती जागृति का ठीक मुल्य आँकने के लिए यह ध्यान में रखना जरूरी है कि उससे पहले साधारणतया क्या स्थिति थी। भिन्न-भिन्न भागों में थोड़ा-बहुत अन्तर होते हुए भी स्थूल रूप से सभी जगह भय और आतंक का राज्य था, लोगों में अपने असतोष को प्रकट करने की कुछ मनोवृत्ति ही न थी, और अगर कोई प्रकट करना चाहता था तो यथेष्ठ साधन न थे। फिर, अगर कोई इस विषय में कुछ साहस भी तो उसे बुरी तरह दबाकर दूसरों को शिक्षा दे दी जाती थी। श्री विजयसिंहजी पथिक ने, जो जागृति के अग्रदूतों में से हैं, अब से बीस वर्ष पहले २६ जनवरी १९२८ के 'स्वदेश' में प्रकाशित अपने 'देशी राज्यों पर एक दृष्टि' लेख में कहा था—"राजपूताना और मालवा की जागृति का श्रीगणेश हुए आज प्रायः पन्द्रह वर्ष हो गए हैं, उस समय स्थिति अन्धकारमय थी। कोई समाचारपत्र यहाँ के शासन पर आलोचनात्मक लेख न छापता था। छापता तो भिन्न-भिन्न कूट उपायों से—कम्पाजिटर आदि रखकर सम्वाद-दाताओं का पता लगाकर—उसे पीस दिया जाता था। इन्दौर के विरुद्ध समाचारपत्र निकालनेवाला एक व्यक्ति तो अपने प्राणों ही से हाथ धो बैठा था। अजमेर से भी डा० लक्ष्मणराव को प्रेस-पत्र खोकर भागना पड़ा था। प्रजा में इतना भय था कि लोग आराम में भी शासन की आलोचना करते भय खाते थे और राष्ट्रीय सस्थाओं तथा व्यक्तियों को प्लेग के कीड़े समझते थे। धीरे-धीरे यह अवस्था इतनी असह्य हो चली कि कुछ युवक इसका अन्त करने को यहाँ बम-पार्टियाँ खड़ी करने का विचार करने लगे। किन्तु इसी समय कुछ लोगों ने

शान्तिमय प्रयोगों द्वारा कार्य आरम्भ कर दिया। इन प्रयोगों में सब से अधिक उल्लेखनीय है, बिजौलिया का आन्दोलन।"*

यहाँ कुछ बातें राजपूताना मालवा के बारे में कही गई हैं, कुछ वैसी ही स्थिति दूसरे देशी राज्यों में रही है।

क्रांतिकारी आन्दोलन की जानकारी—श्री पथिक जी ने युवकों के क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग लेने का जिक्र किया है। इस के सम्बन्ध में अभी तक बहुत कम प्रकाश पड़ा है। यह आन्दोलन कई रियासतों में हुआ। हम यहाँ खासकर राजपूताने की ही कुछ बातों का परिचय देते हैं। बात यह है कि हम उन्हीं कार्यकर्ताओं के सम्पर्क में आए हैं, जिनको इस प्रदेश के आन्दोलन की प्रत्यक्ष जानकारी थी, यथा श्री पथिक जी, लादूरामजी जोशी और रामनारायण जी चौधरी। श्री चौधरी जी ने तो अपने पिछले जेल-जीवन के समय 'राजस्थान का सार्वजनिक जीवन' नामक अपने संस्मरण भी लिखे हैं। आपकी हस्तलिखित प्रति से हमें इस अध्याय की सामग्री तैयार करने में बहुत सहायता मिली है।† श्री चौधरी जी इस विषय पर कुछ अधिकार पूर्वक कहनेवालों में हैं; कारण ये सन् १९१३ में अपने छोटे भाई युगलकिशोर को श्री अर्जुनलाल जी सेठी की पाठशाला में भर्ती कराने के बाद से श्री सेठी जी के सम्पर्क में आगए थे, और श्री सेठीजी राजपूताने के क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रमुख सूत्रधार थे। श्री चौधरी जी ने आपसे ही देश-सेवा की दीक्षा ली थी।

---

*बिजौलिया के आन्दोलन के बारे में आगे एक अलग अध्याय में लिखा जायगा।

† श्री चौधरी जी की पुस्तक अब उनके द्वारा सम्पादित 'नया राजस्थान' साप्ताहिक में क्रमशः छप रही है, और अलग भी छपनेवाली है।

राजपुताने के क्रांतिकारी नायक; श्री अर्जुनलाल जी सेठी—राजपूताने के क्रांतिकारी नेताओं में श्री सेठी जी का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। आप जयपुर कालिज के तेजस्वी ग्रेजुएट थे। अंगरेजी के अलावा हिन्दी, संस्कृत, उर्दू और फारसी के विद्वान थे। जैन धर्म के आचार्यों में आपका खास स्थान था। जैन समाज के उग्र सुधारक और नेता के रूप में भारतवर्ष भर में आपकी बड़ी धाक थी। आप बड़े प्रभावशाली वक्ता (व्याख्यान देनेवाले) थे और भारतमाता की सेवा का दृढ़ व्रत लिए हुए थे। आपके एक-एक शब्द से आजादी की भावना और अंगरेजी राज के प्रति घृणा टपकती थी। जनता आपका भाषण सुनकर जोश में उन्मत्त हो जाती थी।*

वंग-भंग के कुछ वर्ष बाद आप नवयुवकों में राष्ट्रीय भावना भरने लग गए। आपका मुख्य कार्यक्षेत्र जैन समाज था। उसके साधनों से आप राष्ट्रीयता की साधना करते थे। आपने महाराष्ट्र और कशमीर जैसे दूर-दूर के प्रदेशों से चुन-चुनकर नौजवानों का संगठन किया था। छोटे-छोटे बालकों में देशभक्ति की उमंगे भरने के लिए आपने 'जैन वर्द्धमान पाठशाला' स्थापित की। यह पाठशाला ही आपका दफ्तर थी। आपका रहनसहन बिल्कुल सादा था। विद्यार्थी देशभक्ति के रंग में रंगे जाते थे। वे जो प्रार्थना करते थे, वह स्वयं सेठीजी की बनाई हुई और देशभक्ति तथा आत्म-त्याग की भावनाओं से भरी हुई थी। पाठशाला में पढ़ाई की फीस तो थी ही नहीं, छात्रावास में रहनेवालों से भी कुछ खर्च नहीं लिया जाता था।

---

*अन्तिम समय में श्री सेठी जी के विचार और व्यवहार बहुत-से लोगों को नापसन्द रहे, पर इससे उनके पहले कार्य का महत्व नहीं भुलाया जा सकता।

इस पाठशाला और छात्रावास में श्री चौधरी जी का भाई जुलाई १९१३ में भर्ती हुआ था, इससे स्पष्ट है कि श्री० सेठी जी का यह कार्य इस समय से पहले आरम्भ हो गया था। श्री सेठीजी, इस कार्य का विस्तार हो जाने पर, श्री सेठ कल्याणमल जी की इच्छानुसार अपनी पाठशाला और छात्रालय को लेकर इन्दौर जा बसे। उनके बाहर रहने की हालत में जयपुर का क्रान्तिकारी नेतृत्व बाबू ब्रजमोहनलाल जी माथुर के हाथ में आ गया। ये दिल्ली के कायस्थ थे और जयपुर के स्कूल-आफ-आर्ट्स (कला विद्यालय) के वाइसप्रिंसीपल थे। ये हार्डिंग बम केस के मुखिया मास्टर अमीचन्द और लाला हरदयाल के मित्र थे और अच्छे प्रचारक थे।

क्रान्तिकारी संगठन के स्तम्भ—सन् १९१४ में योरोपीय महायुद्ध शुरू हुआ, उससे पहले क्रान्तिकारी दल की राजपूताना की शाखा संगठित हो चुकी थी। श्री सेठीजी उसके नायक थे। आपने अपने जिम्में खासकर युवकों को तैयार करने और शिक्षितों में प्रचार करने का काम ले रखा था। इस संगठन के स्तम्भ थे—कोटा के श्री केसरीसिंह जी बारहठ, खरवा (अजमेर) के राव गोपालसिंह जी, श्री पथिक जी, और ब्यावर के श्री सेठ दामोदरदासजी राठी।

श्री केसरीसिंहजी बारहठ—श्री बारहठ जी का कार्यक्षेत्र राजपूताने के रईसों और जागीरदारों में था। कोटा, उदयपुर, जोधपुर और बीकानेर में उनका काफी प्रभाव था। कई राजाओं की इनसे बहुत सहानुभूति थी। दो-एक राजाओं के दिमाग में तो राठौर साम्राज्य कायम करने की भी भावना पैदा हो गई थी। चारणों में इन्होंने कई क्रान्तिकारी तैयार कर दिए थे। इनकी कविता बहुत जोशीली होती थी। कविता के बल से इन्होंने उदयपुर के महाराणा फतेहसिंहजी को सन् १९०३ के दिल्ली दरबार में जाने से रोक दिया था। इन्होंने उस

अवसर पर महाराणा साहब को डिंगल के जो सोरठे लिख भेजे थे, वे राजस्थान में 'चेतावनी रा चूंगट्या' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

इस विषय की कुछ विशेष जानकारी लीजिए। लार्ड कर्जन की यह बड़ी ही इच्छा थी कि उसके दिल्ली दरबार की शान में कोई कमी न रहे, इसके लिए उसने जैसे-तैसे महाराणा को भी वहाँ हाजिर होने के लिए राज़ी कर लिया था। ज्यों ही बारहठजी को यह खबर मिली, उनके हृदय पर असह्य चोट पहुँची और उन्होंने उक्त सोरठे लिख कर उदयपुर भेजे, पर महाराणा को वे उस समय मिले, जब वे अपनी स्पेशल ट्रेन में चितौड़ से कुछ आगे आ चुके थे। सहसा उनके मुँह से निकल पड़ा कि भाई! ये सोरठे उदयपुर में मिल जाते तो हम वहाँ से रवाना ही न होते। अस्तु, महाराणा दिल्ली जाकर भी वापिस लौट आए; दरबार में शामिल न हुए। अभिमानी कर्जन अपना मनोरथ पूरा करने के कुचक्र में सफल न हो सका। सोरठों में से दो ये हैं—

"कठन जमानौ' कौल—बांधे नर हिम्मत बिना।
"(यो) बीरां हदौ बोल, पातल—सांगे। पेखियो ॥
"मान मोद सीसोद, राजनीति बल राखणौ।
"गवरमिंट री गोद, फल मीठा दीठा फता ॥"

(अर्थ) मनुष्य अपने में हिम्मत न होने पर ही यह सिद्धान्त बनाया करता है कि जमाना मुश्किल है—इस वीरवाणी के रहस्य को सांगा और प्रताप हृदयंगम किए हुए थे। अपनी प्रतिष्ठा और प्रसन्नता को राजनीति के बल से कायम रखना चाहिए। फतहसिंह! इस गवर्मेंट की शरण में जाने से क्या कभी मधुर फल पाओगे?*

श्री बारहठ जी का देश-प्रेम उत्कट था। वे अंगरेजी राज के घोर

---

*'चारण' (जोधपुर); रक्षाबंधन, विक्रम संवत् १९६७ के आधार पर।

विरोधी थे। उनका त्याग अनुपम था। उनका सारा परिवार स्वतंत्रता देवी के लिए बलिदान हो गया। उनके सुपुत्र श्री प्रतापसिंह के बारे में आगे लिखा जायगा।

राव गोपालसिंह जी और पथिक जी—क्रान्तिकारी आन्दोलन के दूसरे खास कार्यकर्ता खरवा (अजमेर) के राव गोपालसिंह जी थे। इनके मंत्री श्री विजयसिंह जी पथिक थे। उस समय इन्होंने अपना नाम भूपसिंह और जाति राठौर रख छोड़ी थी। इन लोगों का कार्य क्षेत्र छोटे जागीरदारों और भोमियों में था। अजमेर-मेरवाड़ा और मेवाड़ में इनकी प्रवृत्तियों का विशेष प्रभाव था। हथियार इकट्ठे करना इनका मुख्य काम था श्री। पथिक जी द्वारा तो पीछे जन-जागरण और लोकसेवा का भी बहुत महत्वपूर्ण कार्य हुआ, उसका वर्णन आगे किया जायगा।

खरवा स्टेशन ब्यावर के पास ही है। राव साहब खरवा और ब्यावर के श्री सेठ दामोदरदास जी राठी में अच्छी घनिष्ठता थी। इनका आपस में अक्सर मिलना जुलना होता था।

सेठ दामोदरदास जी राठी—श्री राठी जी धनवान थे; क्रान्तिकारी आन्दोलन में इनका खास काम रुपए पैसे से मदद करना था। इन्हें विशेष प्रेरणा सुप्रसिद्ध हिन्दी पत्रकार श्री अमृतलाल जी चक्रवर्ती आदि से मिली, जो कुछ समय इनकी कृष्णा मिल में भी काम करते रहे। श्री गिरिजाकुमार जी घोष भी कुछ समय इनके पास ब्यावर में रहे। श्री राठी जी अक्सर देशभक्त विद्वानों और क्रान्तिकारी विचार वालों को अपने यहाँ किसी काम पर रख लेते थे, और बहुधा राजनीतिक कैदियों के परिवारों तथा राष्ट्रीय पत्रकारों को गुप्त रूप से सहायता पहुँचाते रहते थे। ये कभी-कभी सरकारी कामों में भी कुछ रुपया

देदेते थे, तथापि सरकारी अधिकारियों की निगाह में ये खटकते रहते थे; एक दो बार इनकी तलाशी का भी प्रसंग आया।

इनकी कृष्णा मिल राजपूताने भर में कपड़े की पहली मिल थी। इसमें स्वदेशी आन्दोलन के समय खूब धोतियाँ बनीं; यद्यपि उनमें सूत बिलायती होता था, स्वदेशी की भावना के कारण उनकी खासकर बंगाल में खूब खपत हुई, और मिल को आमदनी भी अच्छी हुई। राठी जी रचनात्मक कामों की ओर काफी ध्यान देते थे। ये मारवाड़ी शिक्षा मंडल के मंत्री थे, जिसका उद्देश्य राजपूताने में शिक्षा प्रचार करना था। इस मंडल के लिए श्री राठी जी ने ग्यारह हजार रुपए दिए थे, और इसकी ओर से जोधपुर राज्य में कई स्कूल चलते थे। इन स्कूलों में मुख्य पोकरण का माहेश्वरी स्कूल था, वहाँ हमें सन् १६११-१२ में मुख्य अध्यापक के रूप में काम करने का अवसर मिला था।*

नेताओं की गिरफ़ारी—योरोपीय महायुद्ध (पहला) छिड़ने पर श्री अर्जुनलाल जी सेठी नज़रबन्द करके जयपुर जेल में रखे गए, पीछे वे मदरास प्रान्त के वेलोर जेल में भेज दिए गए। उनके कई नवयुवक अनुयायी गिरफ्तार हो गए और कुछ फरार हो गए। श्री बारहठ जी को आरा और जोधपुर के महन्तों की हत्या के अभियोग में लम्बी सजाएँ दी गईं। उनकी जागीर और घरबार शाहपुर नरेश ने जब्त कर लिया, उनके छोटे भाई जोरावरसिंह लापता हो गए। खरवा राव साहब और पथिक जी टाडगढ़ में नजरबन्द कर दिए गए। वहाँ से पथिक जी तो गुप्त रूप से मेवाड़ चले गए और रावसाहब अजमेर जेल में नजरबन्द कर दिए गए।

---

*सन् १६१४-१५ में हम ब्यावर के सनातन धर्म स्कूल में हेडमास्टर रहे। इस समय हम श्री राठी जी के निकट सम्पर्क में आए; उनका हम पर बड़ा स्नेह और विश्वास था।

अन्य कार्यकर्त्ता; कठोर साधना—अब बाहर रह गए श्री बारहठजी के बड़े लड़के प्रतापसिंह जी, छोटेलाल जैन और जयपुर की मण्डली। जयपुर में नेता छोटेलाल जी ही थे। ये बड़े सख्त थे, जाड़े के दिनों में सवेरे चार बजे अपनी मंडली के आदमियो को दो-तीन मील दौड़ाते, और घाटी चढ़कर गल्ता के कुण्ड में बहुत ही ठंडे पानी में तैराते थे। पर इससे लोगों का उत्साह बढ़ता और उनमें कुछ कर-गुजरने की चाह होती थी। श्री छोटेलाल जी की राय थी कि सेठी जी को जयपुर जेल से निकाल लेने की योजना बनाई जाय। पर मंडली में कोई इस तरह की जोड़-तोड़ करनेवाला साहसी आदमी न था। निदान, वह विचार स्थगित ही रहा।

बगावत और हत्या की योजना—सन् १९१५ के आरम्भ में भारतीय फौज में गदर की तैयारी की जा रही थी। इसके संयोजक थे श्री रासबिहारी बोस। उनका केन्द्र बनारस था। श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल एक खास काम के लिए देहली भेजे गए थे। इसी काम के लिए एक सन्देश-वाहक की आवश्यकता थी। श्री छोटेलाल जी के आदेशानुसार श्री प्रतापसिंह जी और चौधरी जी देहली गए और 'शचीन दादा' से मिले। योजना यह थी कि भारत सरकार के होम मेम्बर सर रेजीनाल्ड क्रेडाक को गोली का शिकार बनाया जाय। यह काम भी जयचन्द जी करें, और उन्हें लिवा लाने के लिए श्री चौधरी जी हरिद्वार जायँ। ज्यों ही श्री क्रेडाक की हत्या का समाचार प्रकाशित हो, मेरठ आदि की हिन्दुस्तानी फौज बगावत कर दे।

श्री चौधरीजी हरिद्वार गए। वहाँ कुम्भ का मेला था। पुलिस की कड़ी निगरानी थी, पर चौधरीजी के मारवाड़ी पहनावे और मारवाड़ी भाषा ने इनकी पूरी सहायता की। ये बाबा काली कमलीवाले के यहाँ जा पहुँचे, श्री जयचन्दजी उनके ही पास ठहरे हुए थे। उन्होंने दिल्ली

आना अस्वीकार किया। कहा कि 'मैंने यहाँ एक अच्छा दल तैयार कर लिया है। अभी एक सफल डाका डाला है। हाथ में लिया काम छोड़कर जाना ठीक नहीं। चाहो तो पच्चीस-पचास हजार रुपया ले जाओ।' श्री चौधरी जी को धन लाने का आदेश न था, ये खाली हाथ ही देहली लौट आए। श्री जयचन्द जी को सौंपा जानेवाला काम अब श्री प्रतापसिंह जी को सौंपा गया। परन्तु संयोग से श्री० क्रे डाक साहब निर्धारित तिथि को बीमार पड़ जाने के कारण अपने कार्यक्रम के लिए घर से बाहर नहीं निकले और बच गए। श्री चौधरी जी उसी रात जयपुर लौट आए।

श्री प्रतापसिंह जी की गिरफ्तारी और बलिदान— इन्हीं दिनों श्री प्रतापसिंह जी पर बनारस षडयंत्र के मामले में वारन्ट निकल गया था, और वे भाग कर हैदराबाद (सिंध) जा छिपे। मण्डली को उन्हें बचाने की फिक्र हुई और श्री चौधरी जी इस काम के लिए नियत किए गए। ये मारवाड़ी पोशाक में रवाना हुए, इन्होंने हैदराबाद पहुँच कर उनको तलाश कर लिया। वे एक निजी दवाखाने में कम्पो-डर का काम करते थे, और फुर्सत के समय वाचनालयों में जानेवाले युवकों में क्रान्तिकारी प्रचार करते थे। अगले दिन ये दोनों बीकानेर चल दिए। सोचा यह था कि श्री चौधरी जी तो राजधानी में कोई नौकरी करलें और प्रतापसिंह वहीं देहात में जा बसें और दोनों मिलकर वहाँ विप्लववादी दल खड़ा करें। श्री प्रतापसिंह जी बीच में आशानाडा स्टेशन पर दल के एक सदस्य से मिलने के लिए उतरे और वहीं गिरफ्तार हो गए। चौधरी जी बीकानेर गए, पर जल्दी ही इन्हें मालूम हो गया कि यहाँ का वातावरण जयपुर से भी गया-बीता है, और उसमें क्रान्ति के अंकुर जल्दी नहीं उग सकते। ये कुछ समय बाद जयपुर आ गए। सी० आई० डी० इन्स्पेक्टर मगनराज व्यास इनके पीछे लगे हुए थे, पर उन्हें चौधरी जी के विरुद्ध कोई सबूत न मिल

सका। इधर राजपूताने के दल को व्यासजी पर बड़ा रोष था। श्री प्रतापसिंह जी की गिरफ़्तारी और सजा का बदला लेने के विचार से श्री व्यास को गोली का शिकार बनाने की बात सोची गई, पर वह सफल नहीं हुई।

पीछे श्री प्रतापसिंह जो लार्ड हार्डिंग पर बम फेंकने के सन्देह में पकड़े गए और जेल में ही मातभूमि की बलिवेदी पर चढ़ गए।

श्री चौधरीजी रामगढ़ में—श्री चौधरीजी के मन में कुछ काम करने की धुन थी, पर उसके लिए कुछ निमित्त की आवश्यकता थी। आखिर, सन् १६१६ के आरम्भ में एक प्राइवेट अंगरेजी मिडिल स्कूल के शिक्षक होकर ये रामगढ़ (शेखावाटी) पहुँचे। इन्होंने पढ़ाने के लिए ऊँची कक्षाएँ लीं, और ये बड़ी उम्र के लड़कों में क्रान्तिकारी विचार फैलाने लगे। वहाँ के कुछ सेठों के लड़कों से इनका विशेष परिचय हो गया। एक पुस्तकालय, वाचनालय और वादविवाद समिति स्थापित की गई। एक रात्रिपाठशाला भी खोली गई।

सन् १६१७ में श्री चौधरी जी को एक धनी युवक का व्यवहार अपमानजनक मालूम हुआ, और इन्होंने वहाँ के स्कूल से त्यागपत्र दे दिया। इस बीच में इनका श्री सेठ जमुनालालजी से परिचय हो गया था; रामगढ़ छोड़ने पर ये उनके पास वर्धा आ गए। यहाँ राष्ट्रीय विचार फैलाने का अवसर अधिक मिला, पर क्रान्तिकारी आन्दोलन से इनका सम्बन्ध न रहा।

विशेष वक्तव्य—योरपीय महायुद्ध के बाद श्री अर्जुनलाल जी सेठी नजरबन्दी से और श्री केसरीसिंहजी बारहठ कैद से छूट कर आए। श्री विजयसिंह जी पथिक भी कार्यक्षेत्र में आ गए। पर सन् १६१६ में वातावरण काफी बदल गया था। धीरे-धीरे क्रान्तिकारी आन्दोलन दब गया या दबा दिया गया। इस तरह की फुटकर घटनाएँ ही जहाँ-

तहाँ होती रही। ये बातें जैसी राजपूताने के राज्यों में हुईं, ऐसी ही कुछ दूसरे राज्यों में। खासकर म० गांधी के भारतीय राजनीति में प्रवेश करने (सन् १६१६) के बाद तो जन-आन्दोलन अहिन्सात्मक होने की ही प्रवृत्ति बढ़ती गई।



पाँचवाँ अध्याय

जन-जागृति का श्रीगणेश

जन का जागरण बहुत ही आश्चर्यजनक घटना होती है। सोता हुआ जन जिस समय जागता है उसका प्राण-व्यापार, मन का व्यापार, बुद्धि का व्यापार इन सब में एक अपूर्व क्रिया-शीलता, चेतना और अनुभव की लहर व्याप जाती है। सदियों से सोए हुए संस्कार जाग उठते हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की जाँच-पड़ताल होने लगती है। जहाँ-जहाँ अँधेरा है वहाँ-वहाँ नया प्रकाश फैलने लगता है। मन में नए संकल्पों के अंकुर फूटते हैं और कर्म में नयी शक्ति प्रकट होती है।

—वासुदेवशरण अग्रवाल

क्रान्तिकारी आन्दोलन और जन-जागृति—पिछले अध्याय में खासकर राजपूताने के क्रान्तिकारी आन्दोलन के बारे में लिखा गया है, इस प्रकार का आन्दोलन कुछ और रियासतों में भी हुआ। हमें जान लेना चाहिए कि ऐसे आन्दोलन का जन-जागृति में क्या स्थान है। यह तो स्पष्ट ही है कि क्रान्तिकारी कार्यकर्ता में

उत्कट देशभक्ति की भावना होती है, वह अपनी जान हथेली पर लिए फिरता है और बड़े-बड़े साहस के काम कर डालता है। उसके उदाहरण को देख सुनकर दूसरे आदमियों में भी कुछ कर-गुज़रने की भावना पैदा होती है, खासकर जिनमें जवानी का जोश होता है और जो आगे-पीछे का विचार कम करते हैं। इस प्रकार देश-प्रेमी और साहसी लोगों की संख्या बढ़ती है। कुछ आदमी धन से भी सहायता करते हैं। लोगों में त्याग और बलिदान की भावना बढ़ती है।

परन्तु इसकी सीमा बहुत परिमित ही रहती है। क्रान्तिकारियों के काम गुपचुप होते हैं। वे अपनी योजनाएँ सर्वसाधारण में प्रकट नहीं करते—प्रकट करने में यह भय रहता है कि कहीं भेद न खुल जाय। इस प्रकार उनसे सम्पर्क में आनेवाले, उनसे प्रत्यक्ष सहानुभूति रखने-वाले कम ही रहते है। फिर, क्योंकि उनके काम अधिकतर किसी अधिकारी की हत्या करने या कहीं डाका डालने आदि के होते है, उन्हें जनता का नैतिक समर्थन नहीं मिलता। उनका संगठन यथेष्ट व्यापक नहीं होता। बड़े देश में यह बात उनकी सफलता में बाधक होती है। प्रायः एक प्रान्त के क्रान्तिकारियों को दूसरे प्रान्तवालों से मिलने जुलने और विचार विनिमय करने का प्रसंग नहीं आता; इससे कोई व्यापक योजना एक साथ सब जगह अमल में नहीं आती। अगर एक जगह दो चार अधिकारियों को मार भी डाला गया तो इससे शासन यंत्र बदला जाना आवश्यक नहीं है, सम्भव है अधिकारियों की ओर से और भी अधिक कड़ाई बर्ती जाने लगे, पुलिस और फौज तथा खुफिया पुलिस आदि की शक्ति बढ़ा दी जाय और सर्वसाधारण जनता की कठिनाइयाँ पहले से भी अधिक हो जायँ। हाँ, ऐसा होने पर जनता को शासकों के अत्याचारों का और अधिक परिचय मिल सकता है।

निदान, क्रान्तिकारी आन्दोलन से जन-जागृति को गौण रूप से

कुछ प्रोत्साहन भले ही मिले, उससे प्रत्यक्ष रूप में या वास्तविक जन-जागृति नहीं होती।

देशी राज्यों में जन-जागृति की कमी—देशी राज्यों की स्थिति का विचार करने से यह बात सहज ही स्पष्ट हो जाती है कि इनमें जन-जागृति की बहुत कमी रही है। पहले बताया जा चुका है कि इनमें शोषण और अत्याचार खूब रहा है, यदि इनसे ही जन-जागृति हो जाया करती तो देशी राज्यों में ब्रिटिश भारत से बहुत पहले राजनीतिक आन्दोलन आरम्भ हो जाना चाहिए था। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। ब्रिटिश भारत में तो उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में ही राष्ट्रीय आन्दोलन विविध रूपों में प्रकट होने लगा, और सन् १८८५ से तो राष्ट्रीय महासभा या कांग्रेस निरन्तर काम कर रही है। इसके विपरीत, देशी राज्यों में जन-आन्दोलन बीसवीं सदी के आरम्भ में होने लगा, और कुछ सिलसिलेवार कार्य का पता तो इस सदी के लगभग पन्द्रह वर्ष बाद से मिलता है। केन्द्रीय रियासती संस्था का संगठन १९२७ में जाकर हुआ, और इसे भी पूरा अखिल भारतवर्षीय स्वरूप सन् १९३९ में भी नहीं, १९४५ में जाकर मिला है, जब कि ब्रिटिश भारत में स्वतन्त्रता का संग्राम करीब करीब आखरी मंज़िल पर पहुँच गया था।

देशी राज्यों की भीतरी परिस्थिति के जानकारों से यह छिपा नहीं कि अब भी वहाँ जन-जागृति प्रायः प्रारम्भिक स्थिति में है। आज भी जब किसी रियासत में राजा की सवारी निकलती है तो जनसमूह बड़ी उत्सुकता और श्रद्धा से उसे देखने के लिए उमड़ आता है, चाहे राजा साहब कितने ही विलासिता में डूबे हुए हों, और अपने वैभव और ऐश्वर्य के लिए जनता का कितना ही शोषण करते हों। बाहर के आदमियों को आश्चर्य होता है कि जनता ऐसे अयोग्य और अत्याचारी

शासक के प्रति भक्ति भाव क्यों रखती है, वह उसके प्रति अपना क्षोभ और विद्रोह क्यों नहीं प्रकट करती। बात यह है कि रियासतों की साधारण जनता में इस समय भी राजनीतिक चेतना का यथेष्ट उदय नहीं हुआ है, उसके लिए अभी बहुत प्रयत्न करना है।

जागृति के कारण; संसार का वातावरण—देशी राज्यों की जनता का जागरण विशेषतया बीसवीं सदी के आरम्भ होने पर प्रकट होने लगा। इस समय संसार के विविध देशों की जनता में आपसी सम्पर्क बहुत बढ़ गया था, और एक देश की जागृति और आन्दोलनों का प्रभाव दूसरे देशों पर पड़ना अनिवार्य था। एशिया भर में एक जोरदार लहर चल रही थी। इस महाद्वीप के देश अपनी हानिकर रूढ़ियों और संस्थाओं को हटाकर विविध सुधारों को अपना रहे थे। जापान ने वैध शासनपद्धति स्थापित कर अपने आप को आधुनिक राष्ट्र बना लिया था। उसने योरपीय देशों के वैज्ञानिक आविष्कारों से यथेष्ट लाभ उठाने के लिए कमर कस ली थी। विविध क्षेत्रों में उन्नति करके वह एशिया भर का सिरमौर बनरहा था। चीन जैसा प्राचीन रूढ़ियों और रीतिरस्मों वाला देश राष्ट्रीय भावों को अपनाकर अपने स्वेच्छाचारी शासन का अन्त करने और प्रजातन्त्र राजप्रणाली आरम्भ करने में लगा था। अरब, मिश्र, टर्की, फारिस और अफगानिस्तान सभी निद्रा और आलस्य छोड़ते जा रहे थे; टर्की में तो क्रान्तिकारी नेता कमाल पाशा ने धार्मिक और सामाजिक अन्ध विश्वासों को दूर करके जनता का विलक्षण काया-कल्प कर दिया था। इन सब बातों का भारतवर्ष पर गहरा प्रभाव पड़ा। और, देशी राज्य भारतवर्ष के अविभाज्य अंश होने के कारण इस व्यापक प्रभाव से बचे न रह सके।

योरपीय महायुद्ध का प्रभाव—इसके अलावा योरपीय

महायुद्ध (१९१४-१८) का भी भारतीय जागृति में यथेष्ट भाग है। यों तो उसका प्रभाव बहुत से देशों पर पड़ा है, पर भारतवर्ष उन थोड़े से देशों में से है, जो उससे बहुत अधिक प्रभावित हुए हैं। महायुद्ध में इंगलैंड एक प्रमुख भागीदार था, और भारतवर्ष की नकेल खासकर इसकी पराधीनता के कारण ब्रिटिश साम्राज्य के सूत्रधारों के हाथों में थी। यहाँ के जन धन से लाभ उठाने के लिए उन्होंने इसे भी युद्ध में घसीट लिया। इसके अलावा महायुद्ध के उद्देश्यों में 'स्वभाग्य निर्णय' और 'छोटे राष्ट्रों की स्वतंत्रता' आदि की बात सुनकर तथा इंगलैंड के संकट के समय उसकी सहायता करने की भावना से अधिकांश भारतीय नेताओं ने जान बूझकर, अपनी इच्छा से भी महायुद्ध में भाग लिया। देशी राज्यों के राजा और नवाबों को तो स्वतंत्र रूप से सोचने-विचारने का काम ही नहीं था, उन्होंने अपनी रियासत का जन-बल और धन-बल अपने ब्रिटिश प्रभुओं की सेवा में अर्पित कर दिया। इस प्रकार ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों को भी युद्ध का आर्थिक भार सहना पड़ा और बहुत से आदमी योरपीय क्षेत्रों में काम आये। हमें इसका विशेष विचार न कर, यह कहना है कि इस अवसर पर बहुत से आदमियों को योरपीय देशों की स्वतन्त्रता का प्रत्यक्ष अनुभव करने का प्रसंग आया, और वे इस देश की पराधीनता को अब असह्य समझने लगे। साथ ही महायुद्ध के कारण होनेवाले आर्थिक तथा अन्य संकटों से यहाँ लोगों की, पराधीनता से छुटकारा पाने की भावना और भी अधिक उग्र हो गई।

मांटफोर्ड सुधारों का प्रभाव—ब्रिटिश अधिकारियों ने महायुद्ध में भारतीय जनता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए कुछ न कुछ राजनीतिक सुधार करना आवश्यक समझा। इसलिए जब कि महायुद्ध चल ही रहा था, सन् १९१७ में घोषणा कीगई और भारत-मंत्री मि० मांटेग्यू ने भारतवर्ष आकर, यहाँ के वायसराय लार्ड चेम्सफार्ड के साथ

मिल कर शासन-सुधारों की रिपोर्ट तैयार की, जिसके आधार पर सन् १९१९ के मांटफोर्ड सुधार किए गए। ब्रिटिश भारत में स्वराज्य और आत्म-निर्णय के अधिकार की भावना बढ़ती देखकर ब्रिटिश सरकार राजाओं को उसके विरुद्ध उपयोग करने का अच्छा साधन समझती थी। उधर राजा लोग भारत-सरकार के राजनीतिक विभाग की ज्याद-तियों से यथा-सम्भव छुटकारा पाने के इच्छुक थे। बस, राजाओं और ब्रिटिश सरकार दोनों को एक दूसरे की जरूरत थी। राजाओं ने इस अवसर से लाभ उठाकर अपने संगठन की ओर ध्यान दिया। ब्रिटिश सरकार कुछ समय से ऐसा चाह ही रही थी। इस प्रकार सन् १९२१ में नरेन्द्र मंडल की स्थापना की गई। अब से राजाओं के प्रति ब्रिटिश अधिकारियों की सहानुभूति और भी बढ़ गई और वे साम दाम दंड भेद से, जैसे भी बना इन्हें अपनी ओर मिलाने लगे। इससे एक ओर तो रियासती कार्यकर्त्ता चौकन्ना हुए और उनमें अपना संगठन बनाने की भावना बढ़ी। दूसरे, ब्रिटिश भारत के नेता भी अब रिया-सतों के प्रश्न की उपेक्षा न कर सके। उन्होंने इनकी निरंकुशता हटाने और उत्तरदाई शासनपद्धति प्रचलित कराने की ओर अधिकाधिक ध्यान दिया।

रियासतों की जन-जागृति में पत्र-पत्रिकाओं ने भी महत्वपूर्ण भाग लिया है, पर इनके सम्बन्ध में आगे एक स्वतंत्र अध्याय में लिखा जायगा।

जन-जागरण का सूत्रपात—जिन सज्जनों ने आरम्भ में जन-जागरण का बीड़ा उठाया, उनके साहस और कष्टों का यथेष्ट अनुमान नहीं किया जा सकता। उस समय अत्याचारों का विरोध करने की बात तो दूर रही, जनता उसको प्रगट करने का भी साहस करने में अपने आप को असमर्थ पा रही थी। देशी राज्यों में भाषण देने और लेख लिखने या छपाने की स्वतंत्रता थी ही नहीं। इसलिए वहाँ स्त्रियों के

सतीत्वहरण और मनुष्यों के, जेल में घुट-घुट कर मरने तक की घटनाओं पर भी प्रकाश डालना कठिन था। उस जमाने में रियासती कार्यकर्त्ताओं के लिए बाहर के पत्रों में सम्वाद भेजना भी बड़ी जोखम उठाना था। पर जिन वीरों में स्वाभिमान जाग्रत हो गया था, उन्होंने जैसे भी बना, पहले रियासती सम्वाद भेजने का बीड़ा उठाया, फिर राष्ट्रीय सम्मेलनों में जाने आने का, और पीछे स्वयं अपने-अपने गाँवों और नगरों में लोक-संस्थाएँ बनाने का।

किसी-किसी राज्य में किसानों की माँगों को लेकर स्थानीय आन्दोलन खड़े किए गए। राजाओं ने सर्वोच्च सत्ता की सहायता से इन्हें कुचलने की निर्लज्ज चेष्टा की। बिजौलिया, बेगूं, सिरोही आदि के किसान-आन्दोलन इसके उदाहरण हैं। इन आन्दोलनों को ब्रिटिश भारत या कांग्रेस से कोई सहायता न मिली। इससे निराश होकर कुछ रियासती कार्यकर्ताओं ने इस बात के लिए कोशिश की कि सर्वोच्च सत्ता राज्य के प्रबंध में हस्तक्षेप करे। ऐसी दशा में यदि सर्वोच्च सत्ता की उस राजा पर कुछ कोर-दृष्टि होती तो उसे उस राजा को गद्दी से उतारने या उसके अधिकार कम करने का अच्छा मौका मिलता था। परन्तु इससे राज्य की व्यवस्था में कुछ अन्तर नहीं होता था, भारत सरकार द्वारा राजप्रबन्ध होने पर करों की भरमार होती, कुछ बाहरी आडम्बर बढ़ जाता, पर राजनीतिक विभाग को कुछ सुधार करने की फिक्र न होती। धीरे-धीरे कार्यकर्ता समझ गए कि सर्वोच्च सत्ता का हस्तक्षेप जनता के लिए प्रायः हानिकर ही होता है। इसलिए वे इस नीति को छोड़ते गए।

देशी राज्यों में सुधार के जो विविध कार्य किए गए, उनमें से कुछ का श्रेय तो खासकर जुदा-जुदा व्यक्तियों को है, और कुछ का विविध संस्थाओं को। इनके कार्यों का क्षेत्र पहले बहुत स्पष्ट या बँधा हुआ न था, जिसे जब जहाँ सुभीता या आवश्यकता प्रतीत हुई, उसने

वहाँ जनता को अपनी सेवा से लाभ पहुँचाया। कुछ संगठन किसी राज्य विशेष में काम करने के लिए हुए, और कुछ का क्षेत्र कई-कई राज्यों के समूह तक विस्तृत होने लगा।

कुछ प्राचीन सङ्गठन और आन्दोलन—जहाँ तक हमें मालूम हो सका है, खासकर उत्तर भारत के देशी राज्यों में सबसे पहले अपनी स्थिति से असतोष प्रकट करनेवाली जनता राजपूताने की ही थी। डूगरपुर में सन् १९०५ में कुछ संगठन होकर स्वामी गोविन्द के नेतृत्व में भील आन्दोलन हुआ। वह शासकों के नृशंस दमन के कारण दब गया। सिरोही की संप सभा (यूनियन क्लब) सन् १९०५-६ में स्थापित हुई, उसका उद्देश्य स्वदेशी प्रचार और शिक्षा-विस्तार के अलावा जनता की तकलीफें मिटाने का उद्योग कराना था। इसके कुछ कार्यकर्ता राज्याधिकारी थे, उनके स्वार्थवश इसे विशेष सफलता न मिली और सन् १९०८ में इसे कानून द्वारा बन्द कर दिया गया। सन् १९१५-१६ में बिजौलिया सत्याग्रह शुरू हुआ, सन् १९१८ में राजपूताना-मध्य भारत सभा और सन् १९१९ में राजस्थान सेवा संघ की स्थापना हुई। सन् १९२१-२२ में श्री मोतीलालजी तेजावत के नेतृत्व में भील आन्दोलन हुआ। इस समय आस पास कितने ही राज्यों में राजनीतिक काम करने वाली संस्थाएँ कायम की गईं, यथा सांगली स्टेट्स पीपल्स कान्फ्रेंस, भावनगर प्रजा परिषद, कच्छी प्रजा परिषद, हैदराबाद स्टेट पीपल्स कान्फ्रेंस, जंजीरा स्टेट सबजेक्ट्स कान्फ्रेंस, मिरज स्टेट पीपल्स कान्फ्रेंस, मैसूर कांग्रेस और ईडर प्रजा परिषद, आदि। इनके अलावा कई ऐसी संस्थाएँ भी बनती गईं, जिनका कार्यक्षेत्र कोई एक विशेष रियासत न होकर कई कई रियासतों का एक समूह था, जैसे काठियावाड़ राजनीतिक परिषद, दक्षिणी संस्थान लोकपरिषद, दक्षिणी संस्थान हितवर्द्धक सभा, पंजाब स्टेट्स पीपल्स कान्फ्रेंस, और सौराष्ट्र सेवा सङ्घ आदि।

आरम्भ में कई वर्ष तक इन संस्थाओं के अधिवेशन प्रायः कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर, और ब्रिटिश भारत में ही होते रहे। रियासतों के अधिकारी प्रायः यह सहन नहीं कर सकते थे, कि कोई संस्था वहाँ उनकी रियासत या किसी दूसरी रियासत की आलोचना आदि करे। धीरे-धीरे एक के बाद दूसरे देशी राज्य में कार्यकर्त्ताओं का सङ्गठन बढ़ने लगा और इन संस्थाओं की संख्या और कार्य बढ़ता गया।



छठा अध्याय

बिजौलिया का सत्याग्रह

बिजौलिया के छोटे से इलाके का नाम मेवाड़ के ही नहीं, बल्कि सामन्तशाही के खिलाफ जन-जागरण के इतिहास में अपनी खास जगह रखता है। यहाँ का किसान-सत्याग्रह शायद इस युग की पहली शान्तिमय लड़ाई थी, जो हिन्दुस्तान में लड़ी गई। चम्पारण का सत्याग्रह इसी के तुरन्त बाद की घटना है।

—'लोकवाणी'

बिजौलिया सत्याग्रह की विशेषता—सन् १६१६ में इस देश के राष्ट्रीय आन्दोलन की बागडोर म० गांधी के हाथ में आई, और उनके द्वारा संचालित सत्याग्रह और असहयोग ने यहाँ के राजनीतिक आन्दोलन को जनता का आन्दोलन बना दिया। इसके बाद की प्रगति पर पत्र-पत्रिकाओं आदि सामयिक साहित्य में अच्छा प्रकाश डाला गया है। पर उसके पहले के, खासकर रियासती आन्दोलनों की यथेष्ट

चर्चा नहीं हुई है, यहाँ तक कि बिजौलिया के सत्याग्रह को बहुत से आदमी असहयोग आन्दोलन का ही भाग समझते हैं। लेकिन यह भूल है। असल में राजस्थानी आन्दोलन महात्मा जी के असहयोग आन्दोलन से तीन चार वर्ष पहले आरम्भ हुआ था। फिर, इन दोनों आन्दोलनों में यह भी अन्तर है कि राजस्थान में जनता ने कहीं भी राज्य के साथ असहयोग नहीं किया, वह अन्त तक बराबर सहयोग करती रही और अपने कष्ट दूर कराने के लिए प्रार्थनाएँ करती रही। यदि उसने किसी-किसी बात में सत्याग्रह किया तो उन्हीं बातों में जिनमें स्वरक्षा पर अपनी सुनवाई कराने के लिए ऐसा करना उसके लिए अनिवार्य हो गया था। अस्तु, बिजौलिया सत्याग्रह का देशी राज्यों के और खासकर राजस्थान के जन-जागरण के इतिहास में अपना विशेष स्थान है। इसका परिचय, इसके प्रवर्तक श्री पथिकजी के उदयपुर की विशेष अदालत में दिये हुए बयान के आधार पर दिया जाता है।

आन्दोलन का कारण—श्री पथिकजी राजस्थान के विविध भागों की परिस्थिति का अध्ययन करने के लिए कई वर्षों से भ्रमण कर रहे थे। बीच-बीच में जहाँ शिक्षा-प्रचारक संस्थाएँ और पाठशालाएँ आदि स्थापित करने की सुविधा होती थी, वहाँ वे इन संस्थाओं को स्थापित कर देते थे। इस भ्रमण के सिलसिले में वे सम्वत् १६७२ में बिजौलियाँ (मेवाड़ का एक ठिकाना या जागीर) पहुँचे और वहाँ की शिक्षा-संस्थाओं को स्थाई बनाने के लिए वहाँ छः सात माह ठहरे। इस बीच में उन्होंने प्रयत्न करके वहाँ की पाठशाला के लिए मेवाड़ राज्य के महकमे खास से चालीस रुपये मासिक व्यय होने की स्वीकृति मंगाई।

बिजौलिया की जनता कुछ समय से अपने कष्टों को दूर कराने की कोशिश कर रही थी। सम्वत् १६७० में उसने एक वर्ष तक

के लिए जिले भर की जमीन पड़त रखी थी। सम्वत् १९७२ में जब श्री पथिकजी वहाँ गए तो लोगों ने इस सम्बन्ध में इनसे सहायता देने को कहा, पर उस समय ये अपना काम पूरा नहीं कर सके थे, इसलिए इन्होंने यह स्वीकार नहीं किया। अगले वर्ष जब ये बून्दी, उदयपुर आदि के गाँवों में बीमारों की सेवा-संस्थाएँ स्थापित करते हुए कोटा आए तो इन्हें बिजौलिया के कुछ परिचित किसान मिले। उनसे मालूम हुआ कि उस साल जमीन की पैदावार में से ठिकानेवालों की मांग बहुत अधिक होने के कारण लोगों ने वहाँ आन्दोलन शुरू कर दिया है। पीछे बिजोलिया पट्टे के कुछ पंच इनके पास आए और सब हाल कह कर जमीन पड़त रखने का विचार प्रकट किया। पड़त रखने में ठिकाने और प्रजा दोनों की हानि का विचार करके श्री पथिकजी ने उन्हें कानूनी उपायों से काम लेने की सलाह दी। अस्तु, लोगों ने बेगार व लागतों को, जिन्हें वे अनुचित और गैर-कानूनी या नियम-विरुद्ध मानते थे, देने से इन्कार कर दिया। इस पर ठिकाने ने भयंकर दमन किया।

जनता का सत्याग्रह और रचनात्मक कार्य—जनता ने सत्याग्रह किया और काफी प्रमाणों के साथ एक दरखास्त राज्य के महकमा-खास में दी। इधर ठिकाने में नए-नए नायब मुंसरिम आते गये और नए-नए ढंग से दमन करते रहे। सैकड़ों किसान पीटे गये, काठ (खोड़े) में दिए गए; बिना खुराक, ओढ़ना बिछौना दिए सात आठ माह कैद में रखे गए। किन्तु वे शान्त रहे और अपनी शिकायतें महकमे-खास और महद्राज्य सभा में पहुँचाते रहे। इसके बाद बिजौलिया के अधिकारियों ने जनता की रक्षा न करने और चोरी आदि की रिपोर्ट न लेने का ढंग खुल्लमखुल्ला इख्तियार किया। कई गाँव लुटे; चोरियों की संख्या बेतरह बढ़ गई। अब लोगों को अपनी रक्षा के लिए स्वयं पहरे का प्रबन्ध करना पड़ा। परिस्थिति को ध्यान

में रख कर श्री पथिकजी ने उन्हें ग्राम-पञ्चायतों द्वारा जुर्मों की संख्या रोकने, आपसी झगड़े न बढ़ने देने, शिक्षा-प्रचार करने, मादक द्रव्य, मांस, विदेशी वस्त्र और अपव्यय आदि रोकने की सलाह दी। लोगों ने तदनुसार काम किया।

जनता का स्वावलम्बन—लोगों ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मेवाड़ के बने कपड़े और दूसरी उपयोगी वस्तुओं के लिए सहकारी समितियों के रूप में पञ्चायती दूकानें खोलीं। ग्राम-पञ्चायतों द्वारा झगड़े निपटाने तथा शिक्षा-प्रचार करने आदि की बात पहले कही जा चुकी है। इन सब बातों के फलस्वरूप जुर्मों की संख्या इतनी घट गई कि वर्ष में एक दो मुकदमे भी मुश्किल से ऐसे होते थे, जो पुलिस की दस्तंदाजी के काबिल हों। चोरियाँ बन्द सी हो गईं। सैकड़ों किसानों, अन्त्यज कहे जानेवाले आदमियों और उनके लड़के लड़कियों को अक्षर-ज्ञान हो गया। अश्लील गीतों और मादक द्रव्यों के प्रचार का नाम ही उठ गया। लोगों में सादगी और मितव्ययिता खूब बढ़ गई। इससे यह भी लाभ हुआ कि बिजौलिया पट्टे में जहाँ मोटे रेजे के अलावा और कोई कपड़ा नहीं बनता था, खादी के साफे धोती आदि सब कपड़े बनने लग गए।

बिजौलिया की इस प्रगति की महात्मा गांधी ने अपने सेक्रेटरी श्री महादेव देसाई के द्वारा जाँच कराई थी। जब उन्हें मालूम हुआ कि किसानों के कष्टों की बात बिल्कुल सच है, और उनका आन्दोलन सत्याग्रह के नियमों के अनुसार है, तो उन्होंने इस आन्दोलन का समर्थन किया था, और तत्कालीन दीवान श्री रमाकान्त जी मालवीय को पत्र लिखवाया था।

आन्दोलन की सफलता—मेवाड़ की सामन्ती ज्यादतियों के विरुद्ध, रियासतों में होनेवाला यह सब से पहला अहिन्सात्मक आन्दोलन

चार साल तक चला। महिलाओं ने भी इसमें काफी भाग लिया। अधिकारियों ने दमन-चक्र चलाने में कुछ कमी न की। पर आखिर, उन्हें हार ही नसीब हुई। सन् १९२२ में ए० जी० जी० के बीच में पड़ने पर बिजौलिया के जागीरदारों को किसानों से समझौता करना पड़ा, बेगार और बेजा लागतें उठानी पड़ीं, किसानों की पञ्चायतें स्वीकार करनी पड़ीं, और उन्हें किसानों के मामले तय करने का अधिकार देना पड़ा। बेगार और बेजा लागतें माफ कर दी गईं। जमीन का लगान कायम करने के लिए स्थाई बन्दोबस्त करने की बात तय हुई। आन्दोलन के समय रचनात्मक कार्य करने से किसानों के सामाजिक, आर्थिक आदि विविध क्षेत्रों में जो स्वावलम्बन की भावना पैदा हुई, वह उनकी अमूल्य निधि है। श्री पथिकजी का बड़े परिश्रम से लगाया हुआ पौधा श्री माणिक्यलालजी वर्मा आदि सज्जनों ने सींच-सींचकर हरा भरा रखा। इससे जनता का बल बढ़ते रहने में अपूर्व सहायता मिली।

आन्दोलन के बाद—सम्भवतः सत्ताधारी अधिकारियों को जन-आन्दोलन की यह सफलता रुचिकर न हुई। जो हो, सन् १९२७ में विजौलिया में जो बन्दोबस्त हुआ, उसमें किसानों के साथ इन्साफ नहीं किया गया। जमीन का लगान तो बहुत बढ़ाया ही गया, कुछ लागतें भी लगा दी गईं। इस पर किसानों ने विरोध-स्वरूप ८००० बीघा माल की जमीन से इस्तीफा दे दिया। ठिकाने ने यह जमीन नीलाम कर दी। किसानों ने इसके लिए सत्याग्रह किया। इसमें उनको भीषण दमन का सामना करना पड़ा। सन् १९२९ में श्रीहरिभाऊजी उपाध्याय ने राज्य से मिलकर किसानों का समझौता करवा दिया। लगान में कमी हुई। तीन हजार बीघा जमीन लौटा दी गई। बाकी जमीन को धीरे-धीरे लौटाने का वायदा किया गया। वह वायदा पूरा न होने के कारण किसानों ने सन् १९३१ में फिर सत्याग्रह की शरण

ली। इस वक्त दमन में महिलाओं तक को न छोड़ा गया। करीब सात सौ गिरफ्तारी हुई। अन्त में श्री सेठ जमुनालालजी बजाज के प्रयत्न से राज्य ने जमीन वापिस लौटाना स्वीकार किया।

विशेष वक्तव्य—जैसा पहले कहा गया है, बिजौलिया के सत्याग्रह का देशी राज्यों की जन-जागृति के इतिहास में अपना विशेष स्थान है। यह भारतवर्ष के देशी राज्यों के अहिन्सक आन्दोलनों का अग्रदूत है। इसके बाद जगह-जगह संगठन कायम हुए और बेगार और अनुचित लागतों के खिलाफ आन्दोलन हुए। इस आन्दोलन ने सिद्ध कर दिया कि सच्चे कार्यकर्ता अशिक्षित और असङ्गठित जनता को अहिन्सक रखते हुए भी उसमें आजादी के लिए बलिदान होने की भावना भर सकते हैं, और उसे कुटिल निर्दयी और षड्यंत्रकारी अधिकारियों का सफलता-पूर्वक सामना करने योग्य बना सकते हैं; हाँ, कार्यकर्ताओं में शान्ति, धैर्य और गम्भीरता से सेवा करने की धुन हो, और उनके मन में निरंतर यह आदर्श बना रहे।



सातवाँ अध्याय

राजपूताना मध्यभारत सभा

यश वैभव सुख की चाह नहीं,
परवाह नहीं, जीवन न रहे।
यदि इच्छा है, यह है,
जग में स्वेच्छाचार दमन न रहे॥

पहली मुख्य संस्था—पिछले अध्याय में, बीसवीं सदी के आरम्भ में जगह-जगह कुछ व्यक्तियों अथवा संस्थाओं द्वारा देशी

राज्यों में जन-जागृति का कार्य आरम्भ होने का जिक्र किया गया है। जहाँ तक हमें मालूम हो सका है, रियासती जनता की राजनीतिक सेवा करनेवाली पहली सुसङ्गठित संस्था राजपूताना मध्यभारत सभा है। धीरे-धीरे कई दूसरे राज्यों में भी संस्थाएँ स्थापित हुईं। काठियावाड़ के आदमियों ने काठियावाड़ हितवर्द्धक सभा स्थापित की, इसने लोकमत शिक्षित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। फिर त्रावणकोर और उसके बाद दूसरे राज्यों की संस्थाएँ कार्यक्षेत्र में उतरीं। परन्तु इनमें से कई एक अपनी असमर्थता का अनुभव करके कांग्रेस में मिल गईं। कांग्रेस का कार्य उस समय खास कर ब्रिटिश भारत में ही परिमित था, यद्यपि उसका उद्देश्य सारे भारतवर्ष के हित के लिए काम करना था।

इस समय अनेक राजनीतिक संस्थाएँ हैं, ये एक-एक राज्य या राज्य-समूह में खूब काम कर रही हैं, और भारतवर्ष भर के राज्यो से सम्बन्धित एक केन्द्रीय संस्था भी है, तथापि ऐतिहासिक दृष्टि से राजपूताना मध्यभारत सभा का अपना निराला महत्व है। जब इसकी स्थापना हुई, सर्वसाधारण में राजसत्ता का आतंक छाया हुआ था, रियासती जनता राजाओं के अत्याचारों के विरुद्ध आवाज निकालने का साहस नहीं करती थी। रियासतों में रियासती सम्बन्धी पत्र प्रकाशित करना या सार्वजनिक व्याख्यान देना भारी जोखम मोल लेना होता था। ऐसी स्थिति में जिन महानुभावो ने इस सभा की स्थापना की, और राजाओं से प्रजा के प्रति उत्तरदाई होने की माँग की, वे धन्य हैं।

सभा की स्थापना और उसका उद्देश्य—सन् १६१८ में कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर देहली में राजपूताना, मध्यभारत और पंजाब की रियासतों के अनेक जनसेवक इकट्ठे हुए थे। उनकी

उपस्थिति से लाभ उठा कर कुछ महानुभावों ने देशी राज्यों सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार-विनिमय करने, रियासती जनता की आवाज़ राष्ट्रीय महासभा तथा शासकों के पास पहुँचाने और उस पर होनेवाले अन्याय अत्याचारों के विरुद्ध संगठित आन्दोलन करने का निश्चय किया। इसके फल-स्वरूप चान्दनी चौक के मारवाड़ी पुस्तकालय में जोधपुर, जयपुर, उदयपुर, भरतपुर, अलवर, रीवां, इन्दौर, नरसिंहगढ़ गवालियर, झालरापाटन आदि देशी राज्यों के, और ब्रिटिश भारत के लगभग ८० सज्जन एकत्र हुए। कविवर श्री गिरिधर शर्मा सभापति चुने गए। स्व० श्री गणेशशंकर जी विद्यार्थी ने अपने भाषण में देशी राज्यों की प्रजा की उन्नति के लिए एक संस्था की आवश्यकता बताते हुए राजपूताना और मध्यभारत की रियासतों के लिए एक संस्था स्थापित करने की आवश्यकता बतलाई। उनके प्रस्ताव और श्री चान्दकरण जी शारदा के अनुमोदन पर राजपूताना-मध्यभारत सभा बनाई गई; इसका उद्देश्य 'देशी नरेशों के प्रति श्रद्धा रखते हुए राजपूताना और मध्यभारत के देशी राज्यों की प्रजा का कल्याण साधन करना' निश्चित हुआ।

यह तय हुआ कि (१) राजपूताना और मध्यभारत के निवासी ही इस सभा के सदस्य हो सकेंगे, ब्रिटिश भारत के निवासी केवल सहायक होंगे। (२) इन प्रदेशों के जिन राज्यों में शिक्षा की बहुत कमी हो, उनमें प्रारम्भिक शिक्षा के प्रचार का यत्न किया जाय। और (३) जिस राज्य में प्रजा को जो कष्ट हो उसकी ओर उस राज्य के नरेश का ध्यान आकर्षित किया जाय। और (४) देशी राज्यों में ब्रिटिश सरकार का हस्तक्षेप न चाहा जाय। सभा का कार्यालय कानपुर रखा गया।

अस्थाई रूप से श्री सेठ जमनालाल जी बजाज सभापति और श्री

विद्यार्थी जी मंत्री निर्वाचित हुए और एक कार्यकारिणी कमेटी बनाई गई।

सभा के चार अधिवेशन—सभा का पहला वर्ष खासकर सङ्गठन और प्रचार में ही व्यातीत हुआ। सन् १६१६ के अशान्त वातावरण में इसके द्वारा कोई विशेष कार्य न हो सका। अमृतसर कांग्रेस के अवसर पर इसका दूसरा अधिवेशन हुआ, उसमें इसकी नियमावली आदि स्वीकार की गई। इस अधिवेशन के सभापति श्री गिरधारीलाल जी माहेश्वरी बेरिस्टर थे। इसमें मध्यभारत और राजपूताना की रियासतों के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त कलकत्ता, कानपुर, अमृतसर, बम्बई आदि के मारवाड़ी भी उपस्थित थे, तथा काठियावाड़ की रियासतों के प्रजामण्डल के मंत्री श्री मणिलाल जी कोठारी भी पधारे थे।

सभा में मुख्य प्रस्ताव इन विषयों के स्वीकार किये गये—देशी राज्यों की प्रजा को और खासकर राजस्थान और मध्यभारत की प्रजा को राजा लोग उत्तरदाई शासन दें। सभा की ओर से एक साप्ताहिक समाचारपत्र निकाला जाय; कांग्रेस देशी राज्यों के विषय को भी अपनावे; राजस्थान में विद्या का प्रचार किया जाय; बिजौलिया के सत्याग्रहियों के प्रति सहानुभूति दिखाई जाय, महाराणा उनके कष्ट निवारण करें। सभा का कार्यालय अजमेर लाया गया और श्री चान्दकरणजी शारदा मंत्री चुने गए।

सभा का तीसरा अधिवेशन मार्च १६२० में अजमेर में हुआ, सभापति श्री सेठ जमनालाल जी बजाज थे। इसमें राजपूताना, मध्यभारत की रियासतों के अलावा, बहावलपुर, बड़ौदा, काठियावाड़ राजकोट तथा हैदराबाद के भी प्रतिनिधि आए थे। प्रस्तावों के विषय खासकर पिछले अधिवेशन वाले ही थे। समस्त देशी राज्यों की एक बड़ी कान्फ्रेंस होने की भी जरूरत बतलाई गई।

कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन के समय दिसम्बर १९२० में सभा का चौथा (और अ० भा० देशी राज्य सम्मेलन का पहला) अधिवेशन श्री गणेशनारायण जी सोमाणी (जयपुर) की अध्यक्षता में खूब धूमधाम से हुआ। इस अवसर पर विशेषतया श्री बृजलाल जी बियाणी के प्रयत्न से मारवाड़ी सेवा सङ्घ का भी शानदार जलसा हुआ। सभा अपने जन्मकाल से रियासती जनता के विषय को अ० भा० कांग्रेस से सम्बद्ध कराने का प्रयत्न कर रही थी। उसके तथा कुछ दूसरे उद्योगों के फल-स्वरूप नागपुर में, कांग्रेस में पहली बार देशी राज्यों के निवासियों को कांग्रेस में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया; पर यह मर्यादा रखी गई कि कांग्रेस देशी राज्यों के अन्दरूनी मामलों में हस्तक्षेप न करेगी। इसी वर्ष कांग्रेस ने अपने एक प्रस्ताव में राजाओं से अपील की कि वे अपनी प्रजा को प्रतिनिधि शासन प्रदान करें।

'राजस्थान केसरी'—पहले कहा जा चुका है, कि इस सभा की ओर से एक साप्ताहिक पत्र निकालने का विचार उसके अमृतसर के अधिवेशन में, दिसम्बर १९१९ में हुआ था। इसके लिए एक कार्य-कारिणी कमेटी, मार्च १९२० में बनाई गई। यह निश्चय किया गया कि 'राजस्थान केसरी' नाम का पत्र वर्धा से प्रकाशित हो। उसकी नीति हो—देशी राज्यों की प्रजा की हर प्रकार की उन्नति करना तथा उसे उन्नति के क्षेत्र में देश भर के साथ बनाए रखने के लिए सत्यनिष्ठा और निर्भीकता के साथ वैध उपायों का प्रचार करना। पत्र के लिए श्री जमनालाल जी बजाज ने ठाकुर केसरीसिंह जी और श्री विजयसिंह जी 'पथिक' को रुपया दिया। बम्बई से राजपूताना मध्यभारत सभा के प्रचार के लिए चन्दा एकत्र हुआ, उसमें इस पत्र को सहायता करने का काम भी शामिल था। इसका सम्पादक हुए श्री विजयसिंहजी 'पथिक', और प्रकाशक और सहायक सम्पादक, श्री रामनारायणजी

चौधरी। 'उन दिनों कानूनी जिम्मेदारी प्रकाशक की ही होती थी, सम्पादक का नाम देना भी जरूरी नहीं था। श्री कन्हैयालाल जी, कलयंत्री ने इस पत्र के अवैतनिक मैनेजर के रूप में बड़े परिश्रम से काम किया। श्री ईश्वरदानजी ने भी इसमें खूब योग दिया। अखबार के दो विभाग थे—एक में देशी राज्यों की समस्याएँ और दूसरे में ब्रिटिश भारत के आन्दोलन; दो-दो अग्रलेख और उसी हिसाब से टिप्पणियाँ जाती थीं। असहयोग और मजदूरों तथा किसानों के लिए दो पृष्ठ सुरक्षित थे, उनका सम्पादन श्री चौधरीजी करते थे। सब कार्यकर्ताओं के उत्साह और लगन से काम करने के कारण पत्र की जल्दी ही धाक जम गई। थोड़े ही समय में 'राजस्थान केसरी' कार्यालय वर्धा के राजनीतिक जीवन का केन्द्र बन गया।'*

श्री पथिकजी के अजमेर आ जाने पर इस पत्र का सम्पादन श्री सत्यदेव जी विद्यालंकार ने किया। इस पत्र ने (और, श्री गणेशशंकर जी विद्यार्थी द्वारा सम्पादित 'प्रताप' ने) देशी रियासतों की जनता की विलक्षण सेवा की।

अत्याचारों की प्रदर्शनी—सभा के नागपुर अधिवेशन के समय कांग्रेस मंडप के सामने रियासती जनता पर होनेवाले विविध अमानुषिक और लज्जाजनक अत्याचारों की प्रदर्शनी की गई। उसका कुछ ब्योरा यहाँ सभा की सन् १६२०-२१ की रिपोर्ट में उद्धृत 'राजस्थान केसरी' के लेख से दिया जाता है।* उसमें लिखा गया था—

---

*श्री चौधरी जी की 'राजस्थान का सार्वजनिक जीवन' पुस्तक की हस्तलिखित प्रति के आधार पर।

*इससे पाठकों को इस पत्र की शैली का भी ज्ञान हो जायगा।

'वहाँ यह दृश्य आपके सामने आवेंगे कि किस प्रकार नरेश या उस राज के लड़के लड़की की शादी में हिंसकों को बकरे काटकाटकर खिलाने, अतिथियों को शराब पिलाने और रंडियाँ नचाने के लिए रुपये न देने पर बड़े-बड़े मारवाड़ियों और अन्य प्रजाजनों एवं किसानों के मुँह पर पाखाने और मिर्चों से भरे हुए, घोड़े को दाना खिलाने के तोबरे बाँध दिये जाते हैं और वे घंटों हाथ-पैर बाँध कर इसी अवस्था में धूप में डाल दिए जाते हैं एवं जब तक इच्छित रकम नहीं देते, इसी तरह सताए जाते हैं। किस तरह बेगार में काम न करने पर लोग जूतों से पीटे जाते हैं, उलटे लटकाए जाते हैं, फिर बेतों द्वारा उनके सारे शरीर में जख्म कर दिए जाते हैं और कभी-कभी मार तक डाले जाते हैं। किस तरह कुल-बधुएँ विलास-लिप्सा की पूर्ति के लिए जबरदस्ती पकड़वा और उठवा मँगाई जाती हैं, स्वीकार न करने पर उन्हें कैसी-कैसी यातनाएँ दी जाती हैं, किस तरह उलटी लटकाई जाती हैं, उन्हें मिर्चों की धूनी दी जाती है और उनके लहँगों तक में मिर्चें भर दी जाती हैं, और इस प्रकार कहना मानने को बाध्य की जाती हैं; किस तरह लोगों के शरीर में मूँज की रस्सी कसकर बाँध दी जाती है और फिर उस पर लगातार पानी डालने से वह किस तरह ऐंठ कर गरीब प्रजा के शरीर को जगह-जगह से फाड़ डालती है, और फिर किस तरह उस निर्दोष मनुष्य-शरीर से रक्त की पिचकारियाँ छूट कर राक्षसों की राक्षसी प्रवृत्ति की पूर्ति करती हैं।'

आगे लिखा था—'करोड़ों नर शरीरधारी १३) रु० वार्षिक पर जीवन निर्वाह करने के लिए बाध्य किए जाते हैं। करोड़ों ठंड की रातें सिर्फ आग के सहारे काटते हैं और निमोनिया होने पर गाय बैलों की तरह जलते लोहे से दागे जाते हैं। घास के बीजों और छाछ के पानी के सहारे करोड़ों नर-शरीर दिन-रात परिश्रम करते हैं, और यदि कभी सूखा पड़ गया तो 'हा अन्न, हा अन्न!' कहते प्राण छोड़ देते हैं।

परन्तु उनके मरने का किसी को उतना भी दुख नहीं होता, जितना कीट-कृमि का! खुल्लमखुला जबरन गुलाम रखे जाते हैं, और गुलाम बनाए जाते हैं—सहस्रों नहीं लाखों अपने समान मन इन्द्रियाँ और बुद्धि रखनेवाले मनुष्य, और बाध्य किए जाते हैं सड़े अनाज के घोड़ों के दाने में से छाने हुए दलिये की रोटियाँ खाकर नीचातिनीच सेवा करने को, रात-रात भर पैर दबाने को, उच्छिष्ट भोजन खाने और जूठे बर्तन माँजने और जूते साफ करने को; और अस्वीकार करने पर जलादी जाती हैं उनकी अंगुलियाँ और नोच डाले जाते हैं उनके बाल! मनुष्य, हाँ, हाथ पैर और आँख कान नाक रखनेवाले आपके ही जैसे मनुष्य दान में दे दिये जाते हैं, और बदल लिए जाते हैं दूसरे गुलामों के बदले में। मा रोती रहती है, बाप बिलखता है और छोटे-छोटे बच्चे बच्चियाँ बेच दी जाती हैं। बड़ी उम्र के मनुष्यों के द्वारा किए जाने योग्य कामों में उन्हें दिन भर पानी खींच लाना, कड़ाके की ठंड में बर्तन माँजना, स्वामियों को भोजन कराना, शराब पिलाना, उनके लिए वन-पशुओं की हत्या करना, उन्हें चीरना-फाड़ना, काटना और कड़ाके की धूप में बोझा लेकर दौड़ लगाना सीखना पड़ता है, उस समय, जब पलने में खिलाया या शाला में जाना सिखाया जाना चाहिए था! और वे बात-बात पर मार खाना, गालियाँ खाना, जूते खाना और फिर भी 'अन्नदाता, अन्नदाता!' कहना सीख जाते हैं, उस समय जब उन्हें सम्राट् की टोपी उतार लेने में भी संकोच न होना चाहिए था। ये सब अमानुषिक कृत्य और पैशाचिक अत्याचार होते हैं, आपके सामने, आपके देश में, और आपके घर के पिछवाड़े; परन्तु आपने कभी इन अत्याचारों की निन्दा की है? अत्याचारियों को धिक्कारा है?

नागपुर की इस प्रदर्शनी का दर्शकों पर बहुत प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। इससे रियासतों के विषय में लोकमत जागृत

होने में खूब सहायता मिली। सन् १६२० के बाद ऐसी प्रदर्शनी कहाँ-कहाँ और किस-किस समय हुई, इसका ब्योरा हमें नहीं मिला। हाँ, हरिपुरा कांग्रेस से पहले ब्यावर (अजमेर) में ऐसा प्रदर्शन किया गया था और उसकी सामग्री पीछे हरिपुरा भेजी गई थी। सन् १६४२ के आन्दोलन में वह सब नष्ट कर दी गई। आवश्यकता है कि देशी राज्यों में इतना सुधार हो जाय कि अब ऐसी प्रदर्शनियों की आवश्यकता या उपयोगिता न रहे, और यह केवल इतिहास की बात रह जाय।

सभा के अन्य अधिवेशन और रजत जयन्ती—सभा की रिपोर्टों तथा भाषणों में कहा गया है कि सन् १६२० के बाद इस सभा के बहुत से कार्यकर्ता कांग्रेस में शामिल हो गए। तथा कुछ रियासतों द्वारा वहाँ की संस्थाओं का किसी बाहरी संस्था से सम्बन्ध अवैध घोषित किये जाने पर उनकी प्रजा परिषदें स्वतन्त्र रूप से संगठित हो गईं और अपनी केन्द्रीय सभा 'राजपूताना मध्यभारत सभा' के अधीन नहीं रहीं। जो हो, चौथे अधिवेशन के बाद सभा विशेष संगठित संस्था न रही, और इसका कार्य साधारण रूप में चलता रहा। इसके अधिवेशन प्रायः हर साल पुष्कर (अजमेर) के मेले के अवसर पर होते रहे।

सन् १६३६ में सभा का अठारहवाँ अधिवेशन विशेष समारोह से रहा। सभापति (श्री कलयंत्री) जी ने एक मेमोरेंडम प्रकाशित किया, जिसे अधिकारियों, नेताओं, कार्यकर्ताओं तथा सर्वसाधारण के पास पहुँचाया गया। इसकी कुछ माँगें निम्नलिखित थीं :—लेखन भाषण की स्वतन्त्रता; राजनैतिक कैदियों की मुक्ति; दमनकारी कानूनों तथा समाचारपत्रों की बंदिशें दूर करना; बेगार, लागतें और भेंट बन्द करना, प्रजा द्वारा नियुक्त असेम्बली स्थापित करना, सङ्घ पार्लिमेंट में रियासती जनता के प्रतिनिधि भेजना, किसानों की स्थिति सुधारना, आदि।

३०, ३१ अक्तूबर १६४४ को सभा का रजत जयन्ती-उत्सव पुष्कर में हुआ। स्वागताध्यक्ष श्री शारदा जी और सभापति श्री कलयन्त्री जी थे। प्रस्तावों में दूसरी सामयिक बातों के अलावा राजाओं से सिर्फ वैधानिक शासक रहने और जनता को राजप्रबन्ध करने देने के लिए कहा गया। भारतवर्ष को अखंड बनाए रखने और पाकिस्तान का विरोध करने के विषय में भी प्रस्ताव पास किया गया।

सभा के कार्यकर्ता और मुख्य कार्य—इस सभा ने घोर आन्दोलन करके, और कोटा, बून्दी, झालावाड़, भरतपुर, देवास और धार आदि के शासकों से मिलकर गुलामी और बेगार प्रथा बन्द करवाने का खूब प्रयत्न किया। इसके अतिरिक्त अलवर, सिरोही, बिजोलिया आदि में होनेवाले गोलीकांड से जो सैकड़ों नर-नारी हताहत हुए उनकी जाँच की। सभा से श्री चान्दकरण जी शारदा का घनिष्ट सम्बन्ध शुरू से ही रहा है, और वे अब तक इसके प्रमुख सूत्र-सञ्चालक हैं। आपके अलावा स्व० अर्जुनलालजी सेठी, स्व० मणिलाल जी कोठारी, और कन्हैयालाल जी कलयन्त्री आदि महानुभावों ने सभा को बहुमूल्य सहयोग प्रदान करते हुए रियासती जनता की बहुत सेवा की है। इस सभा के अध्यक्ष स्व० जमनालाल जी बजाज, स्व० मणिलाल जी कोठारी, स्व० गणेशशङ्कर जी विद्यार्थी, स्व० राव गोपाल-सिंह जी (खरवा), सर्वश्री स्वामी सत्यदेव जी, गणेशनारायण जी सोमाणी, गोविन्दलाल जी पित्ती, शारदा जी, और कलयन्त्री जी आदि सज्जन रहे हैं।

पिछले वर्षों में सभा का मुख्य कार्य, जागीरदारों द्वारा सताई हुई खासकर कृषक जनता का उद्धार करना, रहा है; सभा ने इसके लिए एक बहुत उपयोगी प्रश्नावली छपा कर वितरण की और आवश्यक जानकारी संग्रह की।

विशेष वक्तव्य—यह स्पष्ट है कि इस संस्था के कार्यक्षेत्र की अपनी सीमाएँ हैं। इसका कोई अधिवेशन मध्यभारत में नहीं हुआ, और न इसके किसी अधिवेशन में मध्यभारत के प्रतिनिधियों ने नियमानुसार भाग लिया। इसका केन्द्र अजमेर रहा, और इसके अधिवेशन प्रायः अजमेर के निकटवर्ती तीर्थस्थान पुष्कर में होते रहे हैं। अब तो राजपूताना और मध्यभारत में अलग-अलग प्रादेशिक संगठन हो गए हैं, और स्थान-स्थान पर उनकी विविध शाखाएँ जन-जागृति और लोकसेवा का कार्य कर रही हैं। इसलिए वर्तमान स्थिति में संस्था के रूप में इस सभा का महत्व बहुत कम रह गया है। हाँ, इस ने शुरू में आगे बढ़ कर जो महान कार्य किया, उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती।

इस समय भी इसके कुछ कार्यकर्ता खूब काम कर रहे हैं। मिसाल के तौर पर श्री चान्दकरण जी शारदा कितने ही राज्यों से बराबर सम्पर्क बनाए हुए हैं, आप उनके शासकों का ध्यान जनता की सामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर दिलाते रहते हैं। मार्च १९४७ में आपने इस सभा के सभापति की हैसियत से एक खुला पत्र उनके पास भेज कर यह निवेदन किया था कि वे मुसलिम लीग के बहकावे में न आवें, जो भारतीय विधान-सभा में भाग नहीं ले रही है, और चाहती है कि राजा महाराजा भी अभी उससे अलग ही रहें, तथा भारतीय सङ्घ में भी शामिल न हों। इस प्रकार श्री शारदा जी अपने ढंग से रियासती जनता के लिए काफी परिश्रम करते रहे हैं; यही बात कुछ अंश में श्री कलयन्त्री जी आदि अन्य मुख्य कार्यकर्ताओं के विषय में कही जा सकती है।

—:o:—

आठवाँ अध्याय

राजस्थान सेवा संघ

(१)

संगठन और आदर्श

जान के खौफ से, कर्तव्य से न हटूँगा कभी।
काम रह जायगा, जान रहे या न रहे॥

संघ की स्थापना—बिजौलिया सत्याग्रह के बारे में पहले लिखा गया है। उसमें प्रगति होने पर उसके प्रवर्तक श्री पथिक जी वर्धा चले गए, जहाँ श्री सेठ जमनालाल जी अपने दूसरे सेवा-कार्यों के साथ राजस्थान के उद्धार की योजना में लगे हुए थे। यहाँ से 'राजस्थान केसरी' पत्र निकला, जिसका परिचय पहले दिया जा चुका है। सन् १६१६ में यहाँ, राजस्थान सेवा संघ की स्थापना हुई। अप्रेल १६२० में श्री पथिकजी बेगार आन्दोलन के सिलसिले में अजमेर आए। वे यहाँ बीमार पड़ गए। सेवा संघ का कार्यालय इस वर्ष से अजमेर ही आ गया।

कुछ खास नियम; कठोर साधना—राजस्थान सेवा सङ्घ देशी राज्यों में काम करनेवाली अपने समय की एक खास संस्था रही है। इसलिए इसके विषय की मुख्य-मुख्य बातें जान लेनी चाहिएँ। श्री पथिक जी के मन में धीरे-धीरे यह भावना बढ़ रही थी कि राजस्थान की सेवा के लिए एक दृढ़ और स्थाई व्यवस्था हो: ऐसे उत्साही

युवकों का सङ्गठन हो जिनके जीवन का व्रत लोकसेवा हो, वे अपना सारा समय इसी काम में लगावें। श्री पथिक जी ने अपनी कल्पना की संस्था के लिए दो नियम खास तौर पर रखे। एक यह कि कोई आजीवन सदस्य पैसा कमाने का धंधा न करें, और व्यक्तिगत या निजी सम्पत्ति न रखे। दूसरे, कोई सदस्य धार्मिक भेद भावों के चक्कर में न पड़े, और मतमतान्तरों के वाद विवाद में भाग न ले। श्री पथिकजी ने अपने विचार रियासती कार्यकर्ताओं और हितैषियों के सामने रखे। पर आपकी योजना की ये दो बातें दूसरों को सहज ही स्वीकार होनेवाली न थी। किन्तु पथिकजी ने काम आरम्भ करने का निश्चय कर लिया था; सदस्यों की संख्या बढ़ने की इन्तजार न कर सिर्फ तीन सज्जनों से ही 'राजस्थान सेवा सङ्घ' की स्थापना कर दी गई—श्री पथिक जी, रामनारायणजी चौधरी, और हरिभाई किंकर। श्री पथिक जी अध्यक्ष हुए, और चौधरी जी मंत्री।

धीरे-धीरे अन्य सज्जनों ने सङ्घ का सदस्य बनने का साहस किया। यह निश्चय हुआ कि कोई सदस्य १५) मासिक से अधिक न ले। श्री चौधरी जी ने लिखा है कि 'सङ्घ के किसी विवाहित सदस्य ने भी ३०) माहवार से ज्यादा गुजारे के लिए नहीं लिया। इसमें भी जो बचत होती थी, सङ्घ को लौटा दी जाती थी।'

आजीवन सदस्य—किसी संस्था का बल उसके कार्यकर्ता या सदस्य ही होते हैं। जितना ये ऊँचा उठते हैं, उसी परिमाण में संस्था भी अधिक तेजस्वी और प्रभावशाली होती है। इस विचार से यहाँ सेवा सङ्घ के आजीवन सदस्यों का कुछ परिचय दिया जाता है।

[सम्भव है किसी पाठक की किसी सदस्य के बारे में बहुत अच्छी धारणा न हो, उसे उसके सम्बन्ध में कुछ शिकायतें हों। हमें यहाँ यह विचार नहीं करना है कि उपर्युक्त पाठक का मत कहाँ तक ठीक या गलत है। प्रायः हमारे सामने किसी व्यक्ति के जीवन का खास पहलू

आता है, बहुत-सी बातें हमारी नजर से ओझल रहती हैं। इस तरह जितना कुछ हम किसी व्यक्ति को जान पाते हैं, उसीके आधार पर हम उसके सम्बन्ध में अपना मत बना लेते हैं। फिर, हमारी अपनी सीमाएँ होती हैं, हम कुछ विशेष विचार-धारावाले, या किसी विशेष पार्टी या दल की नीति से प्रभावित, होते हैं, और उसके अनुसार ही दूसरे आदमियों के बारे में अपनी राय कायम कर लेते हैं। मतलब यह कि हमारा मत किसी व्यक्ति के विषय में एकांगी या अशुद्ध हो सकता है।]

१—श्री पथिक जी। सेवा-सङ्घ के संस्थापक और अध्यक्ष श्री पथिक जी ने इस संस्था का काम करने में कैसी-कैसी मुसीबतें उठाई और किस प्रकार अपने आप को विविध कष्ट सहने का आदी बना लिया, यह यहाँ विस्तार से लिखने का स्थान नहीं। आपको अपना काम जारी रखने के लिए अक्सर छिप कर रहना पड़ा, और ऐसी हालत में खाने-पीने और विश्राम करने आदि में जो बाधाएँ आती हैं, उन्हें कोई भुक्तभोगी ही अच्छी तरह जान सकता है। श्री पथिक जी ने देर-सबेर जहाँ जैसा खाने को मिला, उसी पर निर्वाह किया, और यदि कभी कुछ भी न मिला तो वैसे ही काम चलाया। रात में विश्राम का ठिकाना न था; कितनी ही अंधेरी रातें भयंकर पशुओं वाले जगलों में ही बीतीं। यह तो विशेष अवस्था की बात रही। साधारण दशा में भी पथिक जी अपने शरीर पर क्या दया करनेवाले थे! आपके अजमेर-निवास के प्रसङ्ग में श्री चौधरी जी ने लिखा है—"पथिक जी को संग्रहणी हो गई थी, फिर भी वे दिन-रात काम में जुटे रहते। न खुद आराम लेते, और न दूसरों को चैन से बैठने देते थे। मैंने एक बार हिसाब लगाया था कि उनका औसत खर्च आठ रुपए मासिक से अधिक नहीं होता था। प्रथम श्रेणी के कार्यकर्ताओं में मेरी जानकारी में परिश्रमशीलता और कम खर्च की यह मिसाल अद्वितीय थी।......

कोई आश्चर्य नहीं, यदि किसानों ने उन्हें 'महात्मा' की पदवी दी और उनके शब्द को आज्ञा के रूप में माना। पथिक जी ने इस भक्ति से अपना कोई स्वार्थ साधन नहीं किया।'

२—श्री रामनारायण जी चौधरी। इनके विचारों और कार्यों का कुछ परिचय 'क्रान्तिकारी आन्दोलन' अध्याय में दिया जा चुका है। आपके उत्साह और परिश्रम का अनुमान इससे ही हो सकता है कि आपने 'राजस्थान केसरी' के सम्पादन में खूब योग्यता पूर्वक हाथ बटाया था, और पीछे आप राजस्थान सेवा सङ्घ के मन्त्री बनने के योग्य समझे गए। आपने यह जिम्मेवारी का काम भी तन-मन से किया। असल में आप श्री पथिक जी के दाहिने हाथ थे; जहाँ विशेष सङ्कट, जोखम या चतुराई की आवश्यकता हुई, वहाँ आप ही भेजे जाते थे, इसका कुछ व्योरा आगे मिल जायगा।

३—श्रीमती अंजना देवी चौधरी। सेवा सङ्घ के काम में श्री चौधरी जी के साथ आपकी पत्नी श्री अंजनादेवी ने रह कर अपने सहधर्मणी पद को सार्थक किया। सङ्घ में शामिल होने पर आपने दरिद्रता का व्रत लिया और अपने जेवर अपने पिता जी को सौंप दिए और फिर कभी आभूषणों की लालसा न रखी। स्वास्थ्य अच्छा न होने पर भी देवीजी ने मेवाड़ में जिस सहनशीलता और साहस से सेवा-कार्य किया, उसके उदाहरण राजस्थानी महिलाओं में, उस समय इने-गिने होंगे। आपने मेवाड़ और बूंदी में, स्त्रियों में खूब प्रचार-कार्य किया। आपकी सेवाओं को राजसत्ता ने भी मान्य किया; आप जहाजपुर में गिरफ्तार हुईं,* और बूँदी राज्य से कई वर्ष निर्वासित रहीं।

४—श्री माणिकलाल जी वर्मा। अपने त्याग, कष्ट सहन और

---

*रियासती जनता के आन्दोलन में किसी महिला की यह पहली ही गिरफ्तारी थी।

सेवा-भाव के कारण जनता में आप 'मेवाड़-नायक' पद से प्रसिद्ध है। आपका शुभ जन्म बिजौलिया में हुआ, जिसका आधुनिक राजस्थानी इतिहास में विशेष स्थान है। जब श्री पथिक जी बिजौलिया गए तो वे इस होनहार युवक की ओर विशेष आकर्षित हुए। उस समय भी वर्मा जी पर गृहस्थी के निर्वाह की ज़िम्मेवारी थी, और आप ठिकाने में कार्य करते थे, पर आपमें किसानों के दुःख दूर करने की भावना ऐसी बढ़ी कि आप नौकरी छोड़कर सेवा-क्षेत्र में कूद पड़े। आपकी जिन्दगी किसानों की जिन्दगी रही। उनके लिए ही आपका सब समय और शक्ति अर्पित रही। किसानों के सङ्गठन में आपने श्री पथिक जी को महत्वपूर्ण सहायता दी। कितनी बार आप जेल गए, और कितनी कानूनी और गैर-कानूनी सजाएँ इन्होंने भुगती, यह तो एक अलग ही विषय है।

५—श्री शोभालाल जी गुप्त। आपने असहयोग आन्दोलन में देश की पुकार पर हाईस्कूल की नवों श्रेणी से पढ़ना छोड़कर सेवा का क्षेत्र अपनाया था। सङ्घ के सदस्यों में आप सब में छोटे थे। आप अपनी लेखनी पर यथेष्ट नियंत्रण रखनेवाले गम्भीर लेखक हैं। खूब परिश्रमी हैं। इस समय भी पत्रकार का जीवन बिता रहे हैं, दैनिक 'हिन्दुस्तान' के सहायक सम्पादक हैं, और समय-समय पर स्थानापन्न या कार्यवाहक सम्पादक भी रहे हैं। आप स्वभाव के सरल और मिलनसार हैं।

६—श्री कुंवर मदनसिंह जी। आप करौली के पुरुष-रत्न थे। आपके मन में रियासती भाइयों के कष्ट दूर करने की प्रबल लालसा थी। आप पत्रों में खरे-खरे सम्वाद छपाते रहते थे। देशी राज्यों में अच्छा साहित्य का प्रचार करने की आपको बड़ी धुन थी। आपकी पुस्तक 'राजस्थान और देशी राज्य दर्शन' में रियासतों में जनता पर होनेवाले अत्याचारों का खूब दिग्दर्शन कराया गया है। बेगार

हटाने के लिए आपने जी-तोड़ परिश्रम किया। आपने अपने इस विषय के विविध अनुभव सन् १९२३ में, 'कर्तव्य' (इटावा) में विस्तार-पूर्वक प्रकाशित किए थे।

७—श्री हरिभाई किंकर। आपने मेवाड़ में खूब प्रचार किया। इसके फल-स्वरूप आप गिरफ़्तार किए जाकर उदयपुर सेंट्रल जेल में रखे गए। यहाँ के जो समाचार आपने पत्रों में प्रकाशित कराए, उनसे लोगों को मालूम हुआ कि रियासतों के जेलख़ानों में कैसे-कैसे रोमांचकारी अत्याचार होते हैं। आप रियासती जनता में पुस्तक-पुस्तिकाओं द्वारा ज्ञान का प्रचार करने में लगे हैं, और बहुत थोड़ी आय में ही निर्वाह करते हैं।

८—पंडित नयनूराम जी। आप पहले कोटा में पुलिस के सब-इन्स्पेक्टर थे। जब राजनीतिक आन्दोलन में आए तो डटकर काम किया। सादगी और निर्भयता आपके विशेष गुण थे। आपने देशी राज्य के अन्दर रहते हुए ही उसके उत्थान का प्रयत्न किया। आप समाचारपत्रों में किसी भी अधिकारी की टीका करने से चूकनेवाले न थे। आप राजस्थान सेवा सङ्घ की कोटा शाखा के अध्यक्ष थे। आपके विषय में कुछ बातें आगे कोटा राज्य के बारे में लिखते हुए कही जायँगी।

९—श्री लादूराम जी जोशी। आप श्री अर्जुनलाल जी सेठी के निकट सम्पर्क में आए थे। आपने शेखावाटी जैसे पुराण-पंथी प्रदेश में विधवा-विवाह करके अपने साहस और समाज-सुधार का परिचय दिया था। सेवा सङ्घ को मालूम हुआ कि बिसाऊ ठिकाने में किसानों को ठाकुर के शिकार के लिए पाले हुए सुअरों, बेगार, लगान और लागबाग का बड़ा कष्ट है और ठाकुर ने किसानों से सहानुभूति रखनेवाले श्री गजराज जी मुजनूवाला को अपमानित किया है। इस पर

सङ्घ ने बिसाऊ में आन्दोलन छेड़ा, उसमें श्री माणिकलाल जी के साथ श्री जादूराम जी ने खूब काम किया। आपका रहन-सहन बहुत सादा है। सेवा-कार्य में आपने विविध कष्टों का स्वागत किया है। इन दिनों जयपुर प्रजामंडल को आपकी सेवाओं का सौभाग्य प्राप्त है जिसके आप स्वागताध्यक्ष और सभापति भी रह चुके हैं।

इस प्रकार के महानुभाव थे, जिन्होंने राजस्थान की सेवा करने का बीड़ा उठाया था। यह बात खास तौर से ध्यान में रखने की है कि इन सभी की स्कूली शिक्षा बहुत कम हो पाई थी, आर्थिक स्थिति भी साधारण थी। पर संसार में बहुत से मार्के के काम मध्य श्रेणी के आदमियों ने ही किए हैं।

सेवा सङ्घ की नीति—आजकल जागीरदारी प्रथा को उठाने का आन्दोलन हो रहा है; राजाओं के प्रति भी प्रायः लोगों की भावना अच्छी नहीं। राजस्थान सेवा सङ्घ आमतौर से जागीरदारों या राजाओं का विरोध नहीं करता था। उसकी नीति अन्याय का विरोध करने की थी। अगर कोई जागीरदार जनता को दुख देता तो सङ्घ जनता का पक्ष लेता था। अगर कोई राजा जागीरदार पर ज्यादती करता तो सङ्घ जागीरदार का साथ देता। और, अगर ब्रिटिश सरकार किसी राजा पर अनुचित दबाव डालती तो सङ्घ राजा की मदद करना अपना कर्तव्य समझता था।

मिसाल के तौर पर झिरी के ठाकुरों का मामला लीजिए। धौलपुर के शासक ने उन्हें कुचलने का प्रयत्न किया और उन पर फौज लेकर चढ़ाई कर दी। सङ्घ की नीति से परिचित होने के कारण ठाकुर सङ्घ के पास अजमेर आए। संघ को जाँच करने पर उनका पक्ष उचित और न्यायानुकूल मालूम हुआ। उसने उन्हें सलाह और सहायता दी; उनके विषय में असली बातें अखबारों में छपाईं और अधिकारियों के

ामने रखीं। इसी प्रकार जुलाई, सन् १९२१ में सरकार ने मेवाड़ रबार को अधिकारच्युत करने का विचार किया। सङ्घ ने इसका ़द तो सङ्गठित विरोध किया ही, दूसरों से भी इसका विरोध कराया। ल यह हुआ कि सरकार अपने विचार को कार्यरूप में परिणत न कर की, उसने महाराजकुमार को कुछ अधिकार दिलाकर अपने हस्तक्षेप ी मानरक्षा की। इसके बाद ए० जी० जी० का मेवाड़ में दौरा हुआ; स दौरे में उन्हें मालूम हुआ कि संघ का, जनता के हृदय पर कितना धिकार है।

भावी राजस्थान सम्बन्धी विचार—यहाँ यह भी विचार र लिया जाय कि बिजौलिया सत्याग्रह के सञ्चालक और राजस्थान वा-सङ्घ के सूत्रधार श्री पथिक जी के राजस्थान के भावी रूप सम्बन्धी या विचार थे। उनके सन् १९२४ में प्रकाशित बयान के इस विषय म्बन्धी कथन का सारांश यह है कि नए ढंग के शासन-सुधारों में र्च बेतरह बढ़ता है, और रियासतें किसी भी दृष्टि से उसका सामना रने को प्रस्तुत नहीं हैं। प्रायः यह सम्मति दी जाती है कि छोटी रिया-सतों को बड़ी में मिलाकर कुछ बड़े-बड़े राज्य बना दिए जायँ, जो उस यय-भार को सहन कर सकें। किन्तु इस अवस्था के भी अनेक अपवाद । फिर, मैं तो छोटे से छोटे राज्य और ठिकाने की भी स्वतन्त्रता का ाश होना पसन्द नहीं करता। ऐसी अवस्था में देशी-राज्यों के लिए वीन उन्नतिशीलता का अनुकरण छोड़कर अपनी पुरानी सभ्यता के ी ऊँचे और सरल सिद्धान्तों का अनुगमन श्रेयस्कर हो सकता है। ौर, उसका उपाय निम्न बातों को कार्य रूप देना हो सकता है—

१—ग्राम-पञ्चायतों का पुनरुज्जीवन कर उनके द्वारा जुर्मों और ुर्गुणों की संख्या कम करना।

२—उन्हीं के द्वारा ग्राम के स्वास्थ्य, रक्षण, शिक्षण, व्यवस्था और ासन का प्रबन्ध कराना

३—ज्यों-ज्यों जनता योग्य होती जाय, उस पर शासन-प्रबन्ध का अधिकाधिक भार डालते जाना।

४—पुराने ढङ्ग की धार्मिक और जातीय विद्वेष-शून्य शिक्षा का प्रचार करना और इसके लिए योग्य शिक्षक और अधिकारी तैयार करने की व्यवस्था करना।

५—स्वयं अपने राज्य की बनी वस्तुओं का व्यवहार करना और अधिकारियों, जागीरदार एवं जनता से कराना।

६—इसी प्रकार जीवन के सब विभागों की आवश्यकताएँ घटाना और सादगी बढ़ाना।

७—कल कारखानों और अन्य दरिद्रता या विलासिता बढ़ानेवाली बाहर की वस्तुओं को रोकना, और सरकारी लगान भरने, कर्ज चुकाने या दान के अतिरिक्त अन्य अवस्थाओं में किसी प्रकार का कच्चा माल राज्य से बाहर न जाने देना।

८—गाँवों में सहकारी समितियाँ स्थापित कराना और उनके उत्तम सञ्चालन की व्यवस्था कराना।

९—अन्य धन्धों की अपेक्षा कृषकों को उत्तेजन और सम्मान देना।

१०—इस व्यवस्था को कार्यरूप देने में विशेष योग्यता दिखलाने वाले और अधिक दायित्व लेनेवाले गाँव, ताल्लुकों, जिलों और प्रांतों तथा उनके हाकिमों को छूट (लगान में कमी) एवं तरक्की देने का नियम करना।

श्री पथिकजी की उपर्युक्त बातों में से किसी-किसी से आधुनिक पाठक का मतभेद होगा, तथापि इससे यह समझने में सुविधा होगी कि अब से पच्चीस वर्ष पहले रियासती कार्यकर्ताओं की विचार-धारा कैसी थी, अब उसमें क्या परिवर्तन हुआ है।

संघ का कार्यक्रम—सङ्घ के सामने सामाजिक, और आर्थिक

तथा राजनीतिक दोषों का दूर करने और उनके स्थान पर उपयोगी व्यवस्था प्रचलित करने का काम था। इस प्रकार उसके कार्यक्रम को दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है। उसके ध्वंसात्मक कामों में ये बातें थीं—लागतें और बेगार बन्द करना, विदेशी वस्तुओं और खासकर विदेशी वस्त्र का बहिष्कार, बाहरी नौकरों को संख्या घटाने का प्रयत्न करना और मादक पदार्थों का निषेध। इसके साथ सङ्घ का रचनात्मक कार्यक्रम भी था; उसके मुख्य अंग ये थे—पंचायत प्रथा का उद्धार, शिक्षा-प्रचार, प्रत्येक राज्य में वहाँ के बने वस्त्रों का प्रचार, ग्राम-रक्षण समिति की स्थापना, मितव्ययिता का प्रचार।

संघ की सफलता—सङ्घ के इस कार्यक्रम ने सर्वसाधारण जनता में स्वावलम्बन और स्वाभिमान का भाव बढ़ाया और उनमें इस विषय की दृढ़ भावना पैदा की कि पुरानी रूढ़ियों या कुप्रथाओं और दुर्व्यसनों को छोड़ दें और सुधार-पथ में आगे बढ़ते जायें।

इसका सुन्दर परिणाम यह हुआ कि सब जगह बिजौलिया की तरह ही सामाजिक और आर्थिक सुधार हुए। कम-से-कम साठ हजार आदमियों में मेवाड़ के बने रेजे का प्रचार हुआ। अश्लील भाषा और मादक द्रव्यों का बहिष्कार हुआ और शिक्षा का प्रेम बढ़ा। इससे राजा और प्रजा दोनों को लाभ हुआ। इसी से मेवाड़ भर में असन्तोष के कई कारणों को मिटानेवाली एकसी बन्दोबस्त व्यवस्था सम्भव हुई। सेवा सङ्घ के कार्यकर्ताओं के त्याग और सेवा-कार्य से हजारों आदमियों ने शराब पीना बन्द कर दिया, औसर-मौसर तथा अन्य सामाजिक अपव्यय का कार्य नहीं किया, अधिकारियों द्वारा हजार सताये जाने पर भी बेगार नहीं दी; रसद नहीं पहुँचाई। राजपूताने जैसे पिछड़े हुए प्रदेश में, और अब से पचीस वर्ष पहले, ऐसी बातें होना अपना निराला महत्व रखती हैं।



नवाँ अध्याय

राजस्थान सेवा-संघ

(२)

[१—बेगूं का किसान-आन्दोलन, २—मेवाड़ के जाटों का आन्दोलन, ३—सिरोही हत्याकांड, ४—बून्दी में स्त्रियों पर फौजी सिपाहियों का हमला, और ५—बून्दी में गोली-कांड]

पिछले अध्याय में सेवा-संघ के संगठन और आदर्श आदि की मुख्य-मुख्य बातें बताई जा चुकी हैं। अब सङ्घ द्वारा विविध आन्दोलनों के संचालन के विषय में लिखा जाता है।

बेगूं का किसान-आन्दोलन—संघ ने पहले बेगूं (मेवाड़) के किसान-आन्दोलन की तरफ ध्यान दिया। इस ठिकाने में, दूसरे ठिकानों की तरह बेगार और अनुचित लागतें प्रचलित थीं। यहाँ किसान जंगल से घास और लकड़ी लाने और मवेशी चराने तक से रोके गए। वे इन बातों को हटवाना चाहते थे, पर ठिकाने के अधिकारियों ने उनकी माँग स्वीकार न कर अनुचित दमन से काम लिया। रावड़दा के ठाकुर ने चन्दाखेडी के एक धाकड़ को बाँध कर वृक्ष से लटकाया और पहरे में रखा, जिसका उसे कोई अधिकार न था। इसके बाद ठिकाने के अहलकारों ने मंडावरी में शान्ति से बैठे हुए लोगों पर गोलियाँ चलादीं। ठिकाने का यह कार्य कौलनामे और रिवाज के खिलाफ था, फिर भी मेवाड़ राज्य की ओर से कोई कार्यवाही न की गई। बेगूं के किसान श्री पथिक

जी का पता लगाते हुए अजमेर आये, और इनसे सहायता और पथ-प्रदर्शन करने के लिए कहा। इस पर सङ्घ के मन्त्री श्री रामनारायण जी चौधरी उदयपुर भेजे गए। वे वहाँ के तत्कालीन दीवान श्री दामोदरलाल जी से मिले। दीवान साहब ने श्री मानसिंह जी को इस मामले की जाँच के लिए मुकर्रर कर दिया। इस आन्दोलन में, तथा मेवाड़ के अन्य आन्दोलनों में, श्री माणिकलाल जी वर्मा ने बहुमूल्य भाग लिया, अनेक कष्ट उठाकर भी वे जन-सेवा और लोकजागृति के कार्य में डटे रहे।

अधिकारियों की निर्दयता—अस्तु, जाँच के बाद ठिकाने के अधिकारियों ने आम तौर पर जो किसान जहाँ मिला, उसे मारना-पीटना, उसका घास आदि जलाना, खेती के औजार आदि तोड़ फोड़ डालना, और कस्बे बेगूं में आनेवालों को बेइज्जत करना आदि शुरू कर दिया। रावड़दा ठाकुर और छरछा ठाकुर ने तो अपने किसानों के खड़े खेत जला दिये और उन्हें बुरी तरह मारा-पीटा। इससे लाचार होकर किसानों ने जमीन पडत रखी। दूसरे आदमियों ने उनके खाने के वास्ते अन्न इकट्ठा किया। रावड़दा ठाकुर को यह सहन न हुआ कि आदमी इस प्रकार सहायता करें। उसने ऐसे आदमियों से सामान छीन लिया और उनको सताया और कैद किया, जिसका उसे कोई अधिकार न था। कई बार आदमी बाहर के इलाके से घास लाए तो वह भी छीन लिया गया और जला दिया गया। जनता ने इन बातों की पुकार मेवाड़ राज्य के महकमे खास तक पहुँचाई, किन्तु कोई सुनाई नहीं हुई!

फैसले में रेजीडेन्ट आदि की बाधा—निरन्तर दो वर्ष तक दमन होने और उत्तेजित किए जाने पर भी जनता शान्त और सत्याग्रही बनी रही, तब बेगूं के राव जी और राजकर्मचारी समझौते के

लिए तैयार हुए। राजस्थान सेवा सङ्घ की मध्यस्थता तथा किसानों की रजामन्दी से, कई महीनों के परिश्रम के बाद, फैसले की शर्तें तैयार हुईं। किन्तु उदयपुर के रेजीडेन्ट और नये मंत्रिमंडल ने फैसला न होने दिया। अन्त में भिन्न-भिन्न मुकदमों की आड़ में बेगूं के राव जी को दबाया और उदयपुर लाकर बिठा दिया गया; ठिकाने पर मुंसरमात कायम कर दी गई।

उधर जनता को पहले बिजौलिया के अनुसार फैसला कराने का आश्वासन देकर पीछे उसके सामने ऐसी शर्तें रखी गईं, जो उस फैसले से बहुत कम थीं और जिन्हें जनता स्वीकार नहीं कर सकती थी। यद्यपि बिजौलिया के समझौते में राजस्थान सेवा-सङ्घ के कार्यकर्ताओं से मदद ली गई थी, और उन्हें किसानों के भाव प्रकट करने का अवसर दिया गया था, किन्तु बेगूं में यह हुक्म जारी कर दिया गया कि किसान किसी बाहरी आदमी को अपना प्रतिनिधि नहीं बना सकते, और मेवाड़ के सिर्फ उन्हीं आदमियों को बना सकते हैं, जो इस राज्य के निवासी हों।

ट्रेन्च कमीशन का अन्याय—किसानों ने इस अवस्था में भी फैसले के लिए अपनी तैयारी बताई और ट्रेंच कमीशन * के पास गए। मेवाड़ का कोई सहायक न मिलने पर उन्होंने केवल यह चाहा कि दिन भर की कार्यवाही के आवश्यक नोट्स लेते रहने के लिए वे एक पढ़ा-लिखा आदमी अपने साथ रख सकें, जिससे वे शाम को उस कार्यवाही को अपने जिले के दूसरे पंचों को बता सकें और उन

*मिस्टर ट्रेंच आई० सी० एस० मेवाड़ के रेवन्यू कमिश्नर थे। मेवाड़ सरकार ने इन्हें दो अन्य सज्जनों सहित बेगूं के किसानों के मामले का विचार करने के लिए नियुक्त किया था।

बातों पर उनका मत जानकर दूसरे दिन उसे कमीशन के सामने रख सकें। कमीशन ने यह स्वीकार न किया। तब लोगों ने यह दरख्वास्त दी कि जितनी बातों का उत्तर हमसे लेना हो, वे रोजाना लिखकर हमें देदी जाया करें, दूसरे दिन हम उनका लिखित उत्तर पेश कर दिया करेंगे। कमीशन ने इसे भी स्वीकार न किया। इस पर विवश हो किसानों ने कमीशन की कार्यवाही में हिस्सा न लेने का निश्चय किया। कमीशन ने बिना काफी और सम्भव जांच किए, मनमाना एकतर्फा फैसला दे डाला और उसे तामील के लिए किसानों के पास भेज दिया। किसानों ने दरख्वास्त दी कि हमें फैसले की नकल दी जाय और उसके जवाब के वास्ते कम-से-कम एक सप्ताह की मोहलत मिले। किन्तु कमीशन ने यह भी स्वीकार न किया। इन बातों से उसका घोर अन्याय साफ जाहिर है।

सत्याग्रहियों पर गोलियाँ और स्त्रियों का अपमान—उपर्युक्त अन्याय भरे फैसले को अमली रूप देने और जनता पर आतंक जमाने के लिए ट्रेंच महाशय, उनके साथी, और बेगूं के नये कामदार लाला अमृतलाल ने गाँव जलाने के लिए घासलेट तेल के चार पीपे तथा फौज लेकर गोविन्दपुरे पर चढ़ाई कर दी। निर्दोष और शान्त लोगों पर बन्दूकें चलने लगीं, यद्यपि हुक्म छर्रे चलाने का ही था। उस दिन वहाँ नवयुवक मण्डल का अधिवेशन होनेवाला था। लोग चारों ओर से आ रहे थे। बन्दूकें चलने की खबर गाँव-गाँव में फैल गई। इस पर जो-जो आदमी वहाँ के पंचों में थे, उनकी औरतें असलियत जानने के लिए उस ओर दौड़ीं। साहब बहादुर और उनके साथियों का इशारा पाकर उन औरतों पर हाथ डाला गया, यहाँ तक कि कुछ वापिस भागती हुई स्त्रियों को नंगा किया गया और कई एक को कुन्दों से मारकर गिरा दिया गया। स्त्रियों पर तलवार चलाने तक

के सबूत मिले हैं। अस्तु, बन्दूकों की तीन बाढ़े दागी गईं, और आतंक जमाने के लिए पचासों निर्दोष ज़ख्मी किए गए।

इस पैशाचिक नाटक के बाद लगभग ५०० आदमियों को पकड़ कर तमाम रास्ते अपमानित करते हुए बेगूँ ले जाया गया; इनमें लगभग १०० बच्चे भी थे। बेगूँ में उदयसिंह फौजदार ने इनसे मुखियों और सरपञ्चों के नाम पूछे। लोगों ने कहा, हम सभी मुखिया और सरपच हैं। इस पर १८-२० आदमी घोड़े बाँधने के स्थानों में ले जाकर पीटे गए। जब कई बार मारने-पीटने पर भी किसान सत्याग्रह से न डिगे तो उनकी स्त्रियों से यह कहलाया गया कि यदि तुमने लागतें और बेगारें न दी तो वे (पुरुष) मार डाले जायंगे। इस प्रकार अनेक षड़यंत्र रचे गये। फौज के सिपाहियों ने किसान स्त्रियों के नाड़े तक काट दिए और उन्हें अपमानित किया। यह दुर्व्यवहार खुद गोरांग मिस्टर ट्रेंच की प्रेरणा और सहमति से तथा उनकी मौजूदगी में हुआ। इस पर भी पथिक जी ने अपने बयान में लिखा था कि 'यह जालिम किसी स्वतन्त्र मुल्क में बहिन बेटियों के साथ ऐसा निर्लज्जतापूर्ण व्यवहार करता तो आज वह जेल के सीकचों में सिर पटकता हुआ नजर आता।'

काले कारनामों की लीपापोती—ट्रेन्च साहब ने उदयपुर पहुँच कर अपने काले कारनामों को सफेद रङ्ग में रङ्गने की कोशिश की। दीवान प्रभासचन्द्र जी के बङ्गले पर उन्होंने एक कम्यूनिक (विज्ञप्ति) लिखा; दीवान साहब ने उस पर हस्ताक्षर करके समाचार-पत्रों में भेज दिया, इसमें बेहद झूठ का आश्रय लिया गया, पंचायतों को सोवियट ढङ्ग की, और कार्यकर्ताओं को बोलशेविक बताया गया। कम्यूनिक में लिखा गया कि कमीशन फौज लेकर ऐसे मुख्य-मुख्य लोगों

को पकड़ने गया था, जिनके जिम्मे लगान बाकी था।* किसानों पर यह भी आरोप लगाया गया कि वे लाठियों और बन्दूकों से सुसज्जित थे और उन्होंने आक्रमण किया था। किन्तु कोर्ट के सामने वादी पक्ष के सरकारी मुलाजिम गवाहों ने यह स्वीकार किया कि किसानों ने हमला नहीं किया, वे शान्ति-पूर्वक गिरफ़्तार हो गए। अस्तु; सरकारी अधिकारियों की लीपापोती से उसके दुष्कृत्यों की भयंकरता छिपी नहीं रह सकती।

जांच कमीशन का निर्णय—जांच कमीशन ने बेगूं के किसानों की शिकायतों के बारे में अपना निर्णय ४ जुलाई १९२३ को दिया। उससे मालूम हो जाता है कि किसानों से लगान के अलावा विभिन्न प्रकार के कितने मनमाने कर या लागतें वसूल की जाती रहीं हैं। किसानो की साठ से अधिक शिकायतों में से हरेक के सम्बन्ध में कमीशन का क्या विचार रहा, उसका ब्योरेवार वर्णन करना यहाँ सम्भव नहीं है; सिर्फ उदाहरण के तौर से कमीशन की कुछ सिफारिशें आगे दी जाती हैं।

किसानों की इस शिकायत के बारे में कि जन्माष्टमी के उत्सव पर, तथा उच्च अधिकारियों के आने पर हमें दूध दही आदि मुफ़्त देना पड़ता है, कमीशन ने कहा कि जन्माष्टमी पर तो चीजें इसी तरह दी जायँ; दूसरे अवसरों पर वे दाम लेकर दी जायँ। चौरी (जागीरदार की लड़की के विवाह के उपलक्ष्य में दिया जानेवाला कर) के सम्बन्ध में कमीशन का निर्णय रहा कि यह प्राचीन कर हर जगह लिया जाता है,

---

*सभ्य संसार में कहीं भी हासिल की बकाया के लिए आसामी को गिरफ़्तार करने का नियम नहीं है; सिर्फ उसका कुछ माल कुर्क किया जा सकता है; ऐसा करने का ठिकाने या कमीशन ने कोई प्रयत्न नहीं किया।

पर ४) रु० अधिक है, इस के बजाय २) रु० दिए जाया करें। किसानों की एक शिकायत यह थी कि राव जी के परिवार में कोई विवाह या मृत्यु होने पर हमें बिना कुछ मज़दूरी लिए अनाज पीसना और आटा उनके घर पहुँचाना होता है, और उसमें जो छीजन (कमी) हो जाय उसका मूल्य देना होता है। कमीशन ने सिर्फ यह संशोधन किया कि आटा पीसने में फी मन एक सेर तक छीजन हो तो उसका मूल्य नहीं लिया जायगा। किसानों की इस शिकायत के बारे में कि हमें दौरा करनेवाले अधिकारियों को भोजन, अफीम, तमाखू और बिस्तर आदि बिना कुछ लिए देना होता है, कमीशन ने निर्णय किया कि भोजन मूल्य लेकर दिया जाय, परन्तु घास, लकड़ी, और बर्तन मुफ्त दिये जायँ। किसानों की शिकायत था कि विचाराधीन कैदियों (हवालातियों) को अपने भोजन का मूल्य देना होता है, और कठोर परिश्रम भी करना होता है। कमीशन ने इसके सम्बन्ध में कहा कि हवालातियों को कठिन परिश्रम नहीं करना होगा।

इस प्रकार कमीशन ने कुछ शिकायतों को थोड़ा-बहुत कम करने की सिफारिश की। पर उसकी सिफारिशें किसानों पर होनेवाले अत्याचारों को दूर करनेवाली न थीं। उन्हें तो पीछे भी मध्ययुग की स्थिति में ही रहना पड़ा। हाँ, उनके आन्दोलन से, उनके त्याग और कष्ट-सहन से प्राचीन परम्परा को नई हवा के झोंके का कुछ अनुभव करना पड़ा। अस्तु, राजस्थान सेवा-सघ ने तत्कालीन अन्धकारमय वातावरण में भरसक प्रकाश फैलाने का उद्योग किया, इसमें कोई सन्देह नहीं।

× × ×

मेवाड़ का जाट-आन्दोलन——बेगूं का किसान-आन्दोलन आरम्भ होने के बाद जाटों का आन्दोलन शुरू हो गया, और वह सारे मेवाड़ में फैल गया। श्री पथिक जी इस समय बीमार थे और उनने

पास साथी कार्यकर्ता भी कम थे। इसलिए केवल विज्ञप्तियाँ छपवाने और उन्हें मेवाड़ के गाँवों में बँटवाने का काम किया गया। विज्ञप्तियों में जनता को शांतिपूर्वक कानूनी प्रयत्नों द्वारा अपने कष्ट दूर कराने की सलाह दी गई। जिन जगहों के लोगों ने हर अवस्था में शान्त तथा कानून के पाबन्द बने रहने का विश्वास दिलाया, संघ ने उन्हीं स्थानों के आदमियों के पथ-प्रदर्शन का भार लेना स्वीकार किया। जाँच करने पर संघ को मालूम हुआ कि इन प्रदेशों की प्रायः सभी बातें बिजौलिया की तरह हैं। इसलिए सब जगह, बेगूं में भी, वही कार्यक्रम ग्रहण किया गया।

× × ×

सिरोही हत्याकाण्ड—सिरोही में भील-ग्रासियों की अशान्ति बहुत बढ़ गई थी। सिरोही दरबार के बुलाने पर श्री पथिक जी वहाँ गए और युद्ध की अवस्था टाल कर अस्थाई रूप से शांति स्थापित करने में सफल हुए।* साथ ही उन्होंने भील-ग्रासियों को इस बात पर राजी कर लिया कि एक नियत तिथि को इकट्ठे होकर अधिक व्यावहारिक शर्तें तय करें और उन्हें पूरी कराने के लिए अपने-अपने राज्य से सहयोग की नीति ग्रहण करें। यदि भील-ग्रासियों की उपर्युक्त कान्फ्रेंस हो जाती तो स्थाई शान्ति हो जाना निश्चित था। पर सरकार ने भीलों पर आतंक जमाने के लिए खूब दमन करने का निश्चय किया। इस बीच में म० गांधी की ओर से श्री मणिलाल जी कोठारी यहाँ आए; उन्होंने दिन-रात परिश्रम करके एक ओर भीलों तथा

---

* इस अवसर पर सिरोही के चीफ मिनिस्टर पं० रमाकान्त जी मालवीय ने म० गांधी को जो तार दिया था, उसमें लिखा था—'पथिक जी का दल उपद्रवी क्षेत्रों में शानदार काम कर रहा है; रक्तपात बचाने का यश बहुत कुछ उनको है।

उनके नेता श्री मोतीलाल जी तेजावत को, और दूसरी ओर मिस्टर हालैंड को समझौते के लिए तैयार किया। पर राजपूताना एजन्सी ने बारबार बचन दिए और भंग किए। अन्त में मई १९२२ में रोहेरा तहसील में गोलियाँ चलाई गईं, और दो गाँव (भूला और बलोलिया) जला दिए गए।

सेवा-सङ्घ द्वारा जांच –९ मई को इसकी सूचना राजस्थान सेवा-सङ्घ को मिली। दस मई के कुछ अखबारों में सरकारी सूचना भी प्रकाशित हुई। परिस्थिति की गम्भीरता का तथा मीलों और ग्रासियों की सहायता की प्रार्थना का विचार करके सङ्घ ने इस विषय की जाँच करने का निश्चय किया। इसके वास्ते श्री सत्यभक्त जी, (भूतपूर्व संयुक्त सम्पादक 'भविष्य') और श्री रामनारायण जी चौधरी मौके पर तहकीकात करने के लिए भेजे गए। इन्होंने १५ मई को बलोलिया में पंचों का बयान लिया। इसमें विविध घटनाओं का बयान करके अन्त में बहुत करुणा-पूर्वक कहा गया था कि 'राज्य ने हमें नष्ट कर दिया है, और हमारे परिवार को कुछ दिन निर्वाह करने के साधनों से भी वंचित कर दिया है। अब वह हमें धमकी देता है कि 'एकी' की धार्मिक शपथ न तोड़ने पर मार डाले जाओगे। हमारा राज्य पर से सब विश्वास उठ गया है, और हम पहाड़ियों में रहना ठीक समझते है, क्योंकि हमें डर है कि अगर हमने दुबारा मकान बनाए तो वे फिर जला दिए जायंगे। रही, बड़े साहब की बात; उसका हमारे दिल में रत्ती भर भी विश्वास नहीं रहा। उसकी ही आज्ञा से सरकारी सेना ने हमें नष्ट किया है। सिर्फ परमात्मा ही हमारा रक्षक है।'

पञ्चों का बयान लेने के बाद ११५ दूसरे आदमियों की शहादतें ली गईं। इन्होंने पंचों की मुख्य-मुख्य बातों का समर्थन किया, और अपनी हानि का ब्योरा बतलाया। बहुत से गवाहों के बयानों से हत्याकांड सम्बन्धी खास-खास बातों पर प्रकाश पड़ा।

बलोलिया से सङ्घ के प्रतिनिधि भूला गाँव में आए। यहाँ पहले मुखियाओं का बयान लिया। मुखियाओं ने दूसरी बातों के बाद कहा कि 'हमसे जो व्यवहार किया गया है, उसे देखते हुए, हमने निश्चय कर लिया है कि जब तक कि हमारे साथ पूर्णरूप से न्याय नहीं किया जायगा, हम कोई कर नहीं देंगे, चाहे इसमें हमें अन्तिम भील बालक की जान खोनी पड़े। हमें राज्य की, सिर्फ एक फसल की मालगुजारी देनी थी, और उसके चुकाने का भी अभी समय नहीं आया था, तो भी राज्य ने हमें अपरिमित कष्ट दिया है। सिरोही जैसे राज्य में रहना पाप है'

मुखियाओं का बयान लेने के बाद, १३८ भीलों की शहादत ली गई, जिनके मकान फौज ने जला दिए थे। लगभग सभी गवाहों ने मुखियाओं की बातों का समर्थन किया। सङ्घ के प्रतिनिधियों ने अपनी रिपोर्ट में बहुत महत्त्वपूर्ण जानकारी दी, और अन्त में बतलाया कि दोनों गाँवों में ३२५ परिवारों और १८०० आदमियों की हानि हुई, ६४० घर जलाए गए या नष्ट किए गए, ७०८५ मन अन्न जलाया गया या लूटा गया, ६०० गाड़ी घास जलाया गया, १०८ पशु मारे गए या ले जाए गए और १०,००० रु० का दूसरा माल जलाया या लूटा गया।*

संघ की ओर से पीड़ितों को अन्न-वस्त्र देने या मकान बनाने में सहायता करने के लिए स्वयंसेवक भेजे गए, पर उन्हें जनता का कष्ट निवारण करने का अवसर नहीं दिया गया।

---

*इस विषय के अङ्कों में दूसरों का मत भेद है। अंगरेज अफसर मेजर प्रिमर्ड ने, जो ८ मई को बलोलिया गया था, भीलों से कहा था, 'हमने तुम्हारे ५० आदमी मारे और १५० जख्मी किए।'

× × ×

बून्दी में स्त्रियों पर फौजी सिपाहियों का हमला—राजस्थान सेवा-संघ को कई बार यह सूचना मिली कि बून्दी में सभाएँ और पंचायतें नहीं हो सकतीं, तथा राष्ट्रीय गीतों और नारों पर प्रतिबन्ध है। १५ जून १९२२ को उसे खबर मिली कि किसानों के बहुत से स्थानीय नेता गिरफ्तार कर लिए गए। १९ ता० के एक तार-समाचार से मालूम हुआ कि विविध गावों की कुछ औरतों पर राज्य की फौज ने हमला किया और उनमें से एक-दो मर गईं तथा कितनी ही ज़खमी हुईं। इस असाधारण दुर्घटना की जांच के लिए संघ के दो विश्वास-पात्र प्रतिनिधि श्री रामनारायण जी चौधरी और सत्यभक्त जी भेजे गए। उन्होंने पीड़ित और जखमी आदमियों के तथा ऐसे अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों के बयान लिए, जिन्हें आन्दोलन का स्वयं ज्ञान था।

सेवा-संघ की जांच-रिपोर्ट—उनकी रिपोर्ट में बताया गया कि 'बूंदी के आदमी स्थानीय दमन, करों और रिश्वतखोरी से बहुत कष्ट पा रहे हैं। लम्बखो के पंचों के बयान से जाहिर है कि यहाँ बेगार बहुत उग्र रूप से है। बेगारियों को अपनी मेहनत की मजदूरी, और चीज के दाम नहीं मिलते। बून्दी के आदमियों को युद्ध का चन्दा डेढ़ साल में तीन बार देना पड़ा। इसके अलावा लगान तथा दूसरे करों के साथ एक आना रुपया और भी वसूल किया गया। महायुद्ध १९१८ में समाप्त हो जाने पर भी जनता को अब (१९२२) तक युद्ध-ऋण से मुक्ति नहीं मिली। दूसरे और भी टेक्स हैं। कोई आदमी मरे हुए पशु की खाल का भी तब तक उपयोग नहीं कर पाता, जब तक कि वह राज्य को दो रुपए न चुकादे लोगों ने कई बार दरबार को दर्खास्तें भेजकर ये शिकायतें दूर करने के लिए कहा। बहुत सी दर्खास्तें तो बीच के अधिकारियों ने ही रोक लीं, जो स्वयं इस

परिस्थिति के लिए उत्तरदाई थे। अन्त में किसानों के पास इसके सिवाय कोई चारा न रहा कि पंचायतें करें और अधिकारियों के विरुद्ध आन्दोलन करें।

'किसानों की जागृति और पंचायतों की स्थापना से अधिकारी बहुत उत्तेजित हो गए, क्योंकि उन्हें यह मालूम होने लगा कि अब हमारी धांधली अधिक समय नहीं चल पाएगी। उन्होंने इसे राजद्रोह कह कर रोकना चाहा। जहाँ-कहीं पंचायत या सभा होती, राजकर्मचारी उसकी कारंवाई लिखने और अशिक्षित किसानों पर आतंक जमाने के लिए पहुँच जाते। फिर एक सूचना निकाली गई और हर प्रकार की सभा बन्द कर दी गई। ३० मई को किसानों की एक बड़ी पंचायत निमाना गाँव में हुई। वहाँ प्रधान मन्त्री और फौजी अफसर फौज लेकर आ पहुँचे। दुकानदारों को कह दिया गया कि किसानों को खाने-पीने की चीजें न बेचें, इस प्रकार दूर-दूर से आए हुए किसानों को दिन भर भूखा रहना पड़ा। इसके अलावा दो बड़ी तोपें सभा से थोड़े फासले पर ही लगा दी गई थीं।

'अगले दिन डबी में किसानों की साप्ताहिक पञ्चायत की सभा हुई। राज्य के सवारों ने आकर उसे घेर लिया, और बलपूर्वक उसे भङ्ग करने लगे। इस पर पंचायत दूसरी जगह हुई। अपनी आज्ञा का उलंघन होते देख कर अधिकारी अपने आपे से बाहर हो गए और अगले दिन चालीस-पचास सिपाही ले आए। उन्होंने पंचायत के सभापति, उपसभापति, कोषाध्यक्ष आदि सहित १७ कार्यकर्ताओं को धोखा देकर गिरफ़्तार कर लिया। औरतों पर हमला और भालों के प्रहार किए गए। इसका कारण यह मालूम हुआ कि औरतें सभाओं में आती थीं; राष्ट्रीय गीत गाती थी, बन्देमातरम् का नारा लगाती थी, और पुरुषों को दृढ़तापूर्वक आन्दोलन चलाते रहने को प्रोत्साहित करती थी। आन्दोलन के आरम्भ में जब कुछ कार्यकर्ता गिरफ़्तार किए

गए थे तो औरतों ने ही उन्हें सत्याग्रह करके छुड़ाया था। १३ जून को दूसरे गाँवों में गिरफ्तारियाँ की गईं। राजपुरा में एक भील के अलावा एक छोटा लड़का भी गिरफ्तार कर लिया गया। जो औरतें उन्हें छुड़ाने के लिए आईं, उन्हें गालियाँ दी गईं, और उन पर हमला किया गया। औरतों ने अपने बचाव के लिए सवारों और उनके घोड़ों पर छड़ियाँ चलाईं, जो उन्होंने वहाँ ही ज़मीन पर से उठाली थीं। पर छड़ियों से स्त्रियों की रक्षा कब तक होती; कुछ देर बाद कुछ तो जख्मी होकर गिर गईं, और कुछ गाँव में भाग गईं। राजपुरा से सवार लम्बखो आए; बीच में नरौली गाँव में भी उन्होंने औरतों को गालियाँ दीं, और दो आदमियों को गिरफ्तार किया। लम्बखो में पंचायत का एक साहसी कार्यकर्ता हरदेव ब्राह्मण गिरफ़्तार किया गया। कुछ औरतें उसके पीछे-पीछे, लगभग एक मील गणेशपुरा गाँव तक आईं। इस गाँव की भी कुछ औरतें उनके साथ हो गईं, और राजपुरा की औरतें दूसरे रास्ते से यहाँ आ गईं। औरतों को इस प्रकार इकट्ठा होते देख कर सवारों ने फिर उन पर हमला किया तथा पत्थर फेंके। और, जब औरतें विभिन्न दिशाओं में जाने लगीं तो सवारों ने अपने भालों से काम लिया और कुछ औरतों को बहुत जख्मी कर डाला।

'इन क्रूर और लज्जास्पद अत्याचारों से बून्दी जिले में ही नहीं, आसपास के स्थानों में भी उत्तेजना फैल गई। जनता के बढ़े हुए असन्तोष को दूर करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। कहीं-कहीं गाँवों के आदमियों को बुला कर उनकी शिकायतें सुनने का ढोंग रचा गया, पर वहाँ भी उन्हें पंचायतें न करने के लिए कहा गया। किसानों के दिल में क्रोधाग्नि प्रज्वलित है, पर वे उसे दबाए हुए हैं, वे अधिकारियों के षड्यंत्र और दमन से कुछ निराश से हैं। पर

औरतों की बात दूसरी है। यद्यपि वे जख्मी और अपमानित हुई हैं, तो भी वे अधिकारियों से दुबारा संघर्ष लेने के लिए तैयार हैं।

× ×

बून्दी का गोली-कांड—सन् १९२३ में बून्दी में गोली-कांड हुआ; उसकी बून्दी दरबार द्वारा नियुक्त जांच कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित नहीं हुई। सर्वसाधारण की जानकारी के लिए राजस्थान सेवा संघ ने अजमेर में सार्वजनिक उत्तरदाई कार्यकर्ताओं के सामने जख्मी आदमियों के बयान शपथपूर्वक लिए। उनमें एक बयान हीरा गुजर का है, जो १८ अप्रैल १९२३ को लिया गया था; दूसरा बयान २५ अप्रैल का है। इन बयानों में नीचे लिखी बातें कही गईं—

लगभग बास दिन हुए, शुक्रवार के दिन राज्य के अधिकारी पुलिस सुपरिंटेन्डेन्ट सहित अचानक करारड़ा गाँव में आए। उन्होंने नाइयों और कुम्हारों से बेगार लेनी शुरू कर दी। बरधा कुम्हार बूढ़ा था, वह पानी लाते-लाते थक गया तो भी उसे एक दूर के कुएँ से पानी लाने को मजबूर किया गया। जब उसने इससे अपनी अनिच्छा जाहिर की तो अधिकारियों ने उसे जूतों और घूँसों से पीटा और कैद कर लिया। इस बीच करारडा की पंचायत ने जिले भर की पंचायतों को सूचित कर दिया था कि राज्य के अहलकार यहाँ अचानक आ गए हैं। इस पर शनिवार के दिन जिला-पंचायत का असाधारण अधिवेशन हुआ। उसमें बेगार आदि के प्रश्नों पर विचार हुआ, पर कुछ कार्य इतवार के लिए स्थगित कर दिया गया, जबकि डबी में जिला-पंचायत का साधारण अधिवेशन होनेवाला था। पुलिस सुपरिंटेंडेंट और अन्य अधिकारी भी वहाँ चले गए। पंचायत ने सन्देश-वाहक द्वारा पत्र भेजकर अधिकारियों से निवेदन किया कि कुम्हार को छोड़ दिया जाय, और जिन कर्मचारियों ने गत वर्ष जिले की औरतों पर

लाठियों और भालों से हमला किया था, उन्हें दंड दिया जाय। सुपरिंटेंडेंट ने कुम्हार को छोड़ दिया, और पंचों से खुद आकर उससे (सुपरिंटेंडेंट से) मिलने को कहा। अगले दिन पंचायत ने अपनी शिकायतें* लिख कर भेजी, और कई घंटे तक उसकी पहुँच न मिलने पर एक आदमी को भेजा। तो भी सुपरिंटेंडेंट ने पंचायती पत्र की पहुँच नहीं दी। जब आदमी खाने का सामान इकट्ठा कर रहे थे, वह अचानक आकर उपस्थित लोगों के नाम पूछने लगा। करारडा ग्राम-पंचायत के सेक्रेटरी श्री धन्नालाल को हुक्का पीते देखकर उसने उसे गालियाँ दी और पीटा। इसपर लोगों में बड़ी नाराज़ी फैल गई। एक आवाज आई कि हमारे साथ धोखा हुआ। अब तो सुपरिंटेंडेंट अपनी बेंत से चारों तरफ आदमियों को पीटने लगा। पश्चात् उसने अपने आदमियों को बुला लिया, जो वहाँ बन्दूकें लिए हुए तैयार थे। उसने और खेडा के थानेदार के लड़के ने गोलियाँ चलाईं। पहले एक भील औरत के पेट और टांगों में जख्म हुआ। और भी लगभग बीस आदमी ज़ख्मी हुए। नानक भील तो तुरन्त ही मर गया। ऐसी अवस्था में जनता के भी कुछ आदमियों ने आक्रमणकारियों पर पत्थर और कंडे फैंके।† सुपरिंटेंडेंट और उसके साथी गोली चलाते गए और पीछे हटते रहे, यहाँ तक कि एक दीवार के आ जाने पर वे उसे फाँदकर चले गए।

इन घटनाओं की जानकारी संग्रह करके तथा उसे समाचारपत्रों में प्रकाशित करके सेवा-संघ ने बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया।

अन्य क्षेत्रों की बात—हमने ऊपर थोड़े से ही स्थानों की चर्चा की है। इनके अलावा अन्य स्थानों में भी आन्दोलन

---

* बेगार, लागत, चोरी और डाका आदि की।

† पंचों के कहने पर ये लोग ऐसा करने से जल्दी ही रुक गए।

हुआ था। "इन्हीं दिनों पारसोली, बस्सी, अमरगढ़, काछोला, बेगूं के साठ हजार किसानों में लागत, बेगार, विदेशी वस्त्र के खिलाफ आन्दोलन हुआ और पंचायतों का संगठन, शिक्षा, स्वदेशी वस्त्र प्रचार, ग्राम-रक्षा समितियों की स्थापना आदि रचनात्मक कार्य चले। सभी जगह दमन हुआ। हजारों किसान पीटे गए, जेलों में सताए गए, गोलियाँ चलाई गईं। इस दमन में महिलाएं भी नङ्गी की गईं तथा उनके सीने में भाले चुभाए गए। इस प्रकार तीन लाख किसानों ने आन्दोलन में भाग लिया और इसमें बेगूं के रूपा जी और कृपा जी नामक दो किसान शहीद हुए। इस आग की लपटें पड़ोसी रियासतों में पहुँचीं। बून्दी में युद्ध का चन्दा सन् १६२२ तक वसूल होता था, यद्यपि युद्ध १६१८ में ही बन्द हो चुका था। यहाँ बेगार तथा दूसरे टेक्स भी थे। किसान उठे और विरोध किया। अन्त में युद्ध का चन्दा वसूल करना बन्द हुआ और बेगार उठ गई। मध्य मेवाड़ के जाट किसानों के साथ दक्षिणी राजपूताना, ईडर, दान्ता, सिरोही, और पालनपुर की जातियाँ भी सङ्गठित हुईं।

"मेवाड़ की इस जागृति का श्रेय राजस्थान सेवा-संघ को ही है। सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन तो इससे यह हुआ कि मेवाड़ के पोलिटिकल एजन्ट हर साल मेवाड़ का दौरा करते थे, लाखों किसान बेगार से परेशान किए जाते थे, व्यापारी जूतों से पीटे जाते थे, और ठिकानों से हजारों की थैलियाँ भेंट में ली जाती थीं, यह सब बन्द हुई।"*

---

*श्री माणिकलाल जी वर्मा के भाषण से, जो उन्होंने अ० भा० देशी राज्य लोक परिषद के उदयपुर अधिवेशन के अध्यक्ष पद से, दिसम्बर १६४६ में दिया था।

संघ का मुख-पत्र—सन् १६२० से अजमेर में जाकर सेवा संघ ने खूब डट कर काम किया। राजस्थानी जनता में नए जीवन का संचार होने लगा। संघ के नेतृत्व में जगह-जगह जन-आन्दोलन जोर पकड़ने लगा। ऐसी दशा में सङ्घ को अपने एक मुख-पत्र की आवश्यकता महसूस होने लगी। यद्यपि 'राजस्थान केसरी' निकल रहा था, पर एक तो उसका कार्यालय दूर वर्धा में था; दूसरे, वह देशी राज्यों की अपेक्षा कांग्रेस-आन्दोलन अर्थात् ब्रिटिश भारत की समस्याओं की ओर अधिक जा रहा था। निदान, अहमदाबाद कांग्रेस (सन् १६२१) के बाद सङ्घ ने 'नवीन राजस्थान' नाम का साप्ताहिक पत्र निकालना शुरू किया। यह पत्र अधिकारियों की निगाह में हमेशा खटकता रहा।

इस पत्र के बारे में जिक्र करने लायक एक घटना यह है कि इसमें सुप्रसिद्ध श्री राजा महेन्द्रप्रताप जी के एक पत्र तथा एक अग्रलेख छपने पर श्री चौधरी जी और शोभालाल जी गुप्त पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया था। इन दोनों सज्जनों को जेल भेजा गया। श्री चौधरी जी बरी हो गए और शोभालाल जी को एक साल की सजा हुई। जब मेवाड़ राज्य ने 'नवीन राजस्थान' पर रोक लगा दी तो संघ ने 'तरुण राजस्थान' द्वारा जनता की सेवा की।

संघ का वैधानिक कार्य—संघ के विविध कार्यों का परिचय पिछले पृष्ठों में दिया गया है। उसका एक खास काम यह भी रहा कि जहाँ किसी राज्य में कोई ज्यादती या अत्याचार हुआ, उसने अपने खास आदमियों को भेजकर उसकी जाँच कराई, और रिपोर्ट तैयार की; और इसके आधार पर अंगरेजी और हिन्दी आदि के विविध पत्रों में सम्वाद प्रकाशित कराए; उसके मुख-पत्र में तो ऐसे विषयों की चर्चा अच्छी तरह होती ही थी। इस प्रकार दूर-दूर के पाठकों को रियासती आन्दोलनों और अत्याचारों को जानने का अवसर मिलता था। देशी

राज्यों तथा राजनीतिक विभाग के अधिकारी भी यह जानने लग गए कि ये बातें छिपी नहीं रह सकतीं।

ब्रिटिश सरकार ने देशी राज्यों के मामलों को भारतीय राजनीतिज्ञों के लिए अस्पृश्य ही रखा। इससे सेवा-सङ्घ के सामने यह कठिनाई थी कि वह भारतीय व्यवस्थापक सभा में उसके सदस्यों द्वारा इन विषयों के प्रश्न पुछवा कर कुछ सुधार नहीं करा सकता था। ऐसी दशा में उसने दूसरी युक्ति से काम लिया। उसने ब्रिटिश पार्लिमेंट के कुछ उदार सदस्यों से सम्पर्क स्थापित किया, और उन्हें रियासती अत्याचारों की समय-समय पर पूरी जानकारी देता रहा। वे सदस्य उचित अवसर पर पार्लिमेंट में प्रश्न पूछकर भारत-मंत्री का ध्यान आकर्षित करते, और वह यहाँ के राजनीतिक विभाग को लिखता। फिर राजनीतिक विभाग यहाँ के राजाओं को इस विषय में कुछ आदेश देता। इस प्रकार कुछ मामलों में भीतर ही भीतर राजाओं पर कुछ दबाव पड़ने, और सुधार होने का अवसर आ जाता। इस पद्धति से यथेष्ट काम होने में बड़ी देरी लगती थी, और अनेक दशाओं में कार्रवाई होने का खास समय ही निकल जाता था। पर इसके सिवाय दूसरा कोई उपाय भी तो न था। निदान, राजस्थान सेवा संघ से जिस तरह जो सुधार हो सकता था, उसके लिए वह कोई कसर नहीं रखता था।

राजपूताना एजन्सी का विरोध—ऐसी संस्था सत्ताधिकारियों को क्यों सुहाने लगी! सङ्घ पर अंगरेज अधिकारियों, उनके खुशामदी कर्मचारियों और निरंकुश राजाओं का सदा कोप बना रहा। सङ्घ का कार्यालय अजमेर आ जाने के बाद राजपूताना एजन्सी को अपनी मनमानी करने का खूब मौका मिला; कारण, यहाँ चीफकमिश्नरी होने से अधिकारी बहुत निरंकुश थे। सङ्घ ने ब्रिटिश अधिकारियों के विरुद्ध

भिरी (धौलपुर) वालों का पक्ष लिया था। सरकार ने सङ्घ के विरुद्ध कई झूठी विज्ञप्तियाँ निकालीं, उनका सङ्घ की ओर से यथेष्ट खंडन किया गया। इससे सरकार सङ्घ से और अधिक अप्रसन्न हो गई। पीछे सङ्घ ने मेवाड़ आदि की जनता में शान्ति स्थापित करने में सफलता प्राप्त की, जबकि ए० जी० जी० यह कार्य न कर सके। इन बातों से राजपूताना एजन्सी को सङ्घ की शक्ति का पता लगा और वह भीतर ही भीतर सङ्घ का विनाश करने की बात सोचने लगी। उसकी ओर से यह प्रयत्न किया जाने लगा कि राजस्थान सेवा-सङ्घ नर्म (माडरेट) संस्था हो जाय, वह सरकार की रियासतों सम्बन्धी नीति में बाधक न हो और रियासतों के कार्य में सरकार का सहयोग ले। सङ्घ ने यह स्वीकार न किया। इसका परिणाम यह हुआ कि राजपूताना एजन्सी सङ्घ का दमन करने, और इसके कार्यों में बाधा डालने पर तुल गई। उसने सङ्घ को, तलाशी लेकर, मुकदमा चला कर तथा दूसरे प्रकार से खूब परेशान किया। पर सङ्घ ने अपना काम जारी रखा। जब एजन्सी ने देखा कि रियासतें राजस्थान सेवा-सङ्घ के कार्यकर्ताओं के साथ न्याय का व्यवहार करती जाती हैं, इससे उनमें और रियासतों में सहयोग की भावना बढ़ती जाती है, तो उसने ऐसी रियासतों के प्रति भी अनुचित नीति का व्यवहार आरम्भ कर दिया।

विशेष वक्तव्य—राजस्थान सेवा-सङ्घ अपने समय में एक शानदार संस्था थी। इसके खास कार्यकर्ता इने-गिने ही थे, वे कोई बड़े विद्वान् नहीं थे, उनके पास धन का बल भी नहीं था। पर उनकी लोकसेवा की अटूट लगन ने जनता को उनका भक्त बना दिया था। सङ्घ की धाक दूर-दूर तक फैल गई। राजा लोग इसका लोहा मानते थे। राजपूताना एजन्सी तक इससे सहम गई और उसने राजाओं पर दबाव डालकर उन्हें इसके विरुद्ध कार्रवाई करने को उकसाया।

राजपूताना एजन्सी तथा राजाओं के कुचक्र के कारण संघ को अनेक मुसीबतें सहनी पड़ीं। इसके कार्यकर्ता समय-समय पर देशी राज्यों से निर्वासित अथवा जेल में रहे। सन् १९२८ में जब श्री पथिक जी उदयपुर जेल से छूटे तो मेवाड़-सरकार ने उनका भविष्य के लिए रियासत में प्रवेश निषिद्ध ठहरा दिया।*

खेद है कि जो सङ्घ बड़े-बड़े जागीरदारों और राजाओं से लोहा ले रहा था, जो राजस्थान एजन्सी से भी नहीं दब रहा था, वह खासकर अपने ही कार्यकर्ताओं के आपसी मतभेद के कारण छिन्न-भिन्न हो गया। सन् १९२८ से इसकी शक्ति बिखर गई। संघ के हितैषियों ने, खास कर स्व० श्री गणेशशंकर जी विद्यार्थी ने बड़ा प्रयत्न किया कि आपसी मतभेद दूर हो जाय, पर उन्हें सफलता न मिली। आखिर सङ्घ का मुखपत्र श्री मणिलाल जी कोठारी के सुपुर्द कर दिया गया। उनकी देखरेख में श्री जयनारायण जी व्यास और ऋषिदत्त जी मेहता 'तरुण राजस्थान' को ब्यावर से निकालने लगे।

सङ्घ के जो सदस्य या कार्यकर्ता इस समय जीवित हैं, वे जहाँ-तहाँ लोक-सेवा में लगे हैं। पर उसकी सङ्गठित शक्ति तो बिखर ही गई। अब तो राजस्थान के विविध भागों में नए-नए सङ्गठन काम कर रहे हैं। उनके बारे में आगे कहा जायगा।

---

* इसके उन्नीस वर्ष बाद सन् १९४७ में जाकर श्री पथिक जी उदयपुर गए थे।



दसवाँ अध्याय

केन्द्रीय संस्था स्थापित करने के प्रयत्न

पिछले अध्यायों में राजस्थान सेवा-सङ्घ और राजपूताना मध्य-भारत सभा के विषय में लिखा गया है। इन संस्थाओं के अलावा उस समय कुछ और सङ्गठनों ने भी जन-जागृति का कार्य किया। इनका कार्यक्षेत्र सुविधा तथा आवश्यकतानुसार कभी एक रियासत का कुछ भाग, कभी एक या दूसरी रियासत और कभी कुछ रियासतों का समूह होता था। इन सङ्गठनों के बाद एक रियासत के कार्यकर्ताओं को दूसरी रियासत वालों से तथा ब्रिटिश भारत के कार्यकर्ताओं से मिलने-जुलने और विचार-विनिमय करने का प्रसङ्ग अधिक आना स्वाभाविक ही था। धीरे-धीरे स्थानीय संस्थाएँ बनजानेपर इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई कि दूर-दूर के देशी राज्यों की जनता को एक सूत्र में बाँधा जाय; एक केन्द्रीय संस्था स्थापित हो, जिससे विविध प्रादेशिक संस्थाएँ सम्बद्ध होकर, एक-दूसरे के विचारों से लाभ उठावें और यथासम्भव मिल कर काम करें।

सन् १९१८ का प्रयत्न—कुछ कार्यकर्ताओं ने, जो जुदा-जुदा क्षेत्रों में रियासती समस्याओं पर लोकमत तैयार करने में लगे हुए थे, इस तरह का सङ्गठन सन् १९१८ में बनाने का प्रयत्न किया, जब भारत-मन्त्री मि० मांटेग्यू यहाँ भावी शासन सुधारों के सम्बन्ध में जाँच की कार्रवाई कर रहे थे। स्व० श्री मनसुखलाल रावजीभाई मेहता ने, जो काठियावाड़ के राजनीतिक आन्दोलन के जनक माने जाते हैं,

इस विषय में विशेष कार्य किया। परन्तु ऐसे प्रत्यनों को उस समय सफलता न मिली।

सन् १९२० की कान्फ्रेन्स— राजपूताना-मध्यभारत सभा ने अपने अजमेर अधिवेशन (मार्च १६२०) में यह निश्चय किया था कि सब देशी राज्यों की एक बड़ी कान्फ्रेन्स की जाय। इस सभा की संरक्षकता में नागपुर कांग्रेस के अवसर पर २७ दिसम्बर १६२० को भारतवर्ष की बिविध रियासतों की कान्फ्रेन्स हुई। शिमला पहाड़ी रियासतों से लेकर पंजाब, राजस्थान, मध्यभारत, काठियावाड़, बम्बई, मदरास, मैसूर, हैदराबाद, त्रावणकोर, महाराष्ट्र तक के देशी राज्यों के लगभग चार हजार आदमी इसमें सम्मिलित हुए। श्री केलकर, सम्पादक 'मरहठा' सभापति का आसन ग्रहण करनेवाले थे, पर वे कांग्रेस की विषय-निर्धारणी कमेटी में लगे रहने के कारण नहीं आ सके। इस पर श्री गणेशनारायण जी सोमाणी सभापति चुने गए।

सभा के प्रधान मन्त्री श्री चान्दकरण जी शारदा ने प्रतिनिधियों का स्वागत करते हुए समयानुकूल प्रभावशाली भाषण दिया। आपने कहा कि यह कान्फ्रेन्स इसलिए अत्यावश्यक है कि देशी राज्यों के शासक अपने शासन के लिए प्रजा के प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी हों। अकेली राजपूताना-मध्यभारत सभा की आवाज को कांग्रेस में इतना महत्व नहीं दिया जा सकता, जितना सारे भारत के देशी राज्य निवासियों की आवाज़ को। अब कांग्रेस अवश्य ही रियासती जनता को शामिल करेगी और उसके दुख दूर करने में सहायता देगी। हाँ, देशी राज्य निवासियों को स्वावलम्बी होकर सब अत्याचारों को दूर करने के लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिए।

इसके बाद सभापति श्री गणेशनारायण जी सोमाणी का ओजस्वी भाषण हुआ। आपने कहा कि वे राजा अब गद्दी पर नहीं रह सकते,

जो देश-कालानुसार अपनी वृत्तियों का सुधार करके प्रजातन्त्र कायम करने और प्रजा को स्वतन्त्रता देने के लिए आगे कदम नहीं बढ़ाते। आवश्यकता है कि अति शीघ्र ही वे अपने-अपने राज्यों में प्रजा-प्रतिनिधियों की व्यवस्थापक सभाएँ, म्युनिसपेलटियाँ, जिला-बोर्ड और रेवन्यू बोर्ड बनावें; शिक्षा-विभाग का सुधार करके स्कूल और कालिजों की ऐसी व्यवस्था कर दें, जिनसे सच्चे देशहितैषी और विद्वान निकलें। प्रेस एक्ट को तोड़कर जनता की वाणी को स्वतन्त्रता दें; कृषि और शिल्प की उन्नति करें, राज्य के लिए मन्त्री आदि की नियुक्ति अपने प्रजाजनों में से ही करें, और विचारपूर्वक बनाए हुए बजट के अनुसार खर्च करें।

दूसरे दिन अर्थात् ता० २८ दिसम्बर को श्री सेठ गोविन्ददास जी ने और तीसरे दिन २६ दिसम्बर को श्री स्वामी नृसिंहदेव जी सरस्वती ने सभापति का आसन ग्रहण किया और समयोपयोगी भाषण दिए।

इन तीनों दिनों में दो दर्जन प्रस्ताव पास किए गए। सब राज्यों से सम्बन्ध रखनेवाले कुछ प्रस्तावों का आशय यह था—

१—देशी राज्यों की प्रजा राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) में सम्मिलित कर ली जाय, और जो-जो देशी रियासतें जिस प्रान्त में हैं, वे उसी प्रान्त की कांग्रेस-कमेटी में सम्मिलित कर ली जायँ और उनको नियमानुसार मत देने का अधिकार रहे। आल-इंडया कमेटी में भी आबादी के लिहाज से प्रतिनिधि चुने जावें।

२—देशी नरेश अपनी प्रजा को उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन शीघ्र ही प्रदान करें।

३—देशी नरेश अपने और अपने खानदान के खर्च के लिए बन्धी हुई रकम लें, जो रियासत की आमदनी के लिहाज़ से अधिक

न हो; बाक़ी सब रुपया प्रजा के प्रतिनिधियों की इच्छा से खर्च करें और ऐसे सब टेक्स हटा दें, जिनसे प्रजा में असंतोष फैलता है।

४—देश के प्रभावशाली नेता देशी राज्यों में भ्रमण करें, और प्रजा को जगाने के लिए अपने प्राणों की आहुति दें।

अगले वर्ष के लिए निम्नलिखित पदाधिकारी चुने गए सभापति श्री जमनालाल बजाज; उपसभापति सर्वश्री बी० एस० पथिक, ठाकुर केसरीसिंह, अर्जुनलाल जी सेठी, गणेशशङ्कर जी विद्यार्थी, और सेठ गोविन्ददास जी; प्रधान मन्त्री श्री चान्दकरण जी शारदा, सहायक मन्त्री सर्वश्री स्वामी नृसिंहदेव जी सरस्वती और रामनारायण जी चौधरी।

इस संस्था के कार्यकारिणी के सदस्यों के रूप में राजपूताना और मध्यभारत के अतिरिक्त कलकत्ता, अहमदाबाद, जबलपुर, वर्धा, और मथुरा के सज्जन भी इस सङ्गठन में सम्मिलित हुए थे। काठियावाड़ देशी राज्य परिषद् और बड़ौदा प्रजामण्डल आदि इस संस्था से सम्बद्ध थे। इस सभा का दूसरा अधिवेशन अगस्त सितम्बर १६२१ में, बम्बई में हुआ; तीसरा कानपुर में, सन् १६२५ में; और चौथा बम्बई में, सन् १६३३ में।*

सन् १९२२ का प्रयत्न—ता० ५ मार्च १६२२ को, दक्षिण स्टेट्स असोसिएसन के अवैतनिक मन्त्री सर्वश्री एन० सी० केलकर और ए० वी० पटबर्द्धन के निमंत्रण पर देशी राज्यों के कुछ प्रमुख कार्यकर्ता भारत-सेवक-समाज (सर्वेंट्स आफ इंडिया सोसायटी) की भूमि में एकत्र हुए। श्री केलकर ने कार्यवाही आरम्भ करते हुए इस सभा का महत्व और उपयोगिता बतलाई। उन्होंने इस बात का वर्णन

---

* श्री चान्दकरण जी शारदा द्वारा प्राप्त लेख के आधार पर।

किया कि देश के भिन्न-भिन्न भागों में कौन-कौनसी संस्थाएँ रियासती समस्याओं पर विचार करने के लिए स्थापित हुई हैं। सभा के अध्यक्ष राजकोट के बेरिस्टर श्री शुक्ल जी थे। उन्होंने समझाया कि देशी राज्यों के सम्बन्ध में कैसी नई-नई समस्याएँ उपस्थित हो रही हैं, जनता मध्ययुगी शासन में कैसा कष्ट पा रही है, और अधिकारियों से संघर्ष में आए बिना उसमें कैसे सुधार किया जाना चाहिए।

अखिल भारतवर्षीय 'स्टेट्स पीपल्स कान्फ्रेन्स' संस्था स्थापित करने की तात्कालिक आवश्यकता का विचार किया गया। कुछ बहस और भाषणों के बाद निम्नलिखित प्रस्ताव किए गए—

१—आगामी अगस्त या सितम्बर में अ० भा० देशी राज्य लोक परिषद का अधिवेशन किया जाय; सभा के उद्देश्य और ध्येय सभा द्वारा ही निश्चित किए जायँ।

२—एक अस्थाई कमेटी बनाई जाय, जिसके सेक्रेटरी सर्वश्री केलकर, पटवर्द्धन, एस० एस० मेहता, पोपटलाल चूड़गर, और जे० आर० घरपुरे हों।

कमेटी ने कुछ प्रचार-कार्य किया, यह विविध रियासतों के कार्य-कर्ताओं से मिली, और रियासती समस्या के विविध पहलुओं पर विचार-विनिमय किया।

मदरास में देशी राज्य प्रजा परिषद—दिसम्बर १६२७ में कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर मदरास में एक और देशी राज्य प्रजा परिषद का अधिवेशन हुआ। इसके स्वागताध्यक्ष श्री सत्यमूर्ति, और सभापति श्री श्रीनिवास आयंगर थे। श्री सत्यमूर्ति जी ने अपने भाषण में कहा कि अब समय आ गया है कि कांग्रेस शीघ्र स्वराज्य-प्राप्ति के लिए ब्रिटिश भारत के अलावा देशी राज्यों के विषयों पर भी विचार करे। देशी राज्यों को सर्वोच्च सत्ता इस समय भी प्राप्त

नहीं है, इसलिए इस बात की आशंका व्यर्थ है कि स्वराज्य-प्राप्त भारत में इनकी सर्वोच्च सत्ता न रहेगी। देशी राज्यों में हर जगह इस समय राजा का व्यक्तिगत शासन है, वह कानून और न्याय का नियंत्रण करता है। कुछ राजा भारतवर्ष से बाहर कभी जाते ही नहीं, तो कोई कोई राजा विदेशों में रहकर अपनी प्रजा की गाढ़ी कमाई बुरी तरह उड़ाते रहते हैं।

देशी राज्यों की जनता की कम से कम माँगें ये है १—राजा की निजी सम्पत्ति और राज्य की सार्वजनिक सम्पत्ति का सदा के लिए स्पष्ट विभाजन रहे। २—कानूनों का अच्छी तरह पालन हो, और वे व्यवस्थापक सभा द्वारा ही बदले जायँ। ३—न्याय विभाग की स्वतंत्रता की व्यवस्था रहे। ४—कर निश्चित करने और वसूल करने के निश्चित नियम रहें। ५—शासन-कार्य में राजा निजी तौर पर भाग न ले; यह काम ऐसे मन्त्रियों को सौंपा जाय जो निर्वाचित व्यवस्थापक सभा के प्रति उत्तरदाई हों। ६—जनता को भाषण, लेखन, जान-माल की रक्षा, सभा सम्मेलन करने की, तथा धार्मिक स्वतंत्रता हो। आपने यह भी कहा कि खुद देशी राज्यों के हित के लिए यह आवश्यक है कि छोटी रियासतें अपने नजदीक के प्रान्त में मिल जायँ, और बड़ी रियासतें स्वाधीन भारतीय सङ्घ में सम्मिलित हों।

सभापति श्री श्रीनिवासजी आयंगर ने अपने भाषण में कहा कि राजाओं को प्रजा के साथ अच्छा व्यवहार करना चाहिए; और ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों की जनता में आपसी मेलजोल बढ़ाना चाहिए। रियासती जनता को अपने-अपने राज्य में उत्तरदाई शासन-पद्धति प्रचलित कराने के लिए यथेष्ट आन्दोलन करना चाहिए।

परिषद में बटलर कमेटी का विरोध, भावी विधान में देशी राज्यों का स्थान, स्वराज्य विधान बनाने के लिए एक कमेटी का निर्माण, राजाओं के बहुत-बहुत समय तक राज्य से अनुपस्थित रहने का विरोध, भारत

का भावी शासन विधान के कनाडा के सङ्घ शासन-विधान के समान होना, आदि विषयों के प्रस्ताव स्वीकार हुए।

विशेष वक्तव्य—इस प्रकार अखिल भारतीय रियासती संस्था स्थापित करने के कई प्रयत्न किए गए। इनका जन-जागृति में यथेष्ट महत्व है। हाँ, ये संस्थाएँ बहुत समय तक अपना स्वतंत्र और अखिल भारतीय स्वरूप न रख सकीं। इनमें से कोई तो समाप्त हो गई या सीमित रूप में रह गई; और कुछ उस संस्था के साथ समझौता करके उसमें मिल गईं, जिसका वर्णन अगले अध्याय में किया जायगा, और जो स्थाई रूप से अब तक अपने कार्य में प्रगति करती रही है।



ग्यारहवाँ अध्याय

अ० भा० दे० रा० लोकपरिषद्

(पहला अधिवेशन)

पिछले अध्याय में, केन्द्रीय रियासती संस्था स्थापित करने के कुछ प्रयत्नों के बारे में लिखा गया है। उनका सिलसिला बहुत समय तक जारी न रह सका। अब हम उस संस्था के पहले अधिवेशन की बात कहते हैं, जो इस समय तक बनी रही है और प्रायः सब देशी राज्यों की लोकसभाओं या प्रजामंडलों आदि का नियंत्रण और पथ-प्रदर्शन कर रही है।

सन् १९२६ का प्रयत्न—सन् १९२६ में कुछ कार्यकर्त्ता मिले, उन्होंने एक अस्थाई कमेटी बनाई और अ० भा० देशी राज्य

लोक परिषद संगठित करने का विचार किया। कमेटी के सेक्रेटरी सर्वश्री डा० सुमन्त मेहता, ए० बी० पटवर्द्धन और एल० आर० तेरसी थे। पहली मीटिंग ३१ अक्तूबर १६२६ को हुई। इसके बाद और मीटिंग हुई और सङ्गठन सम्बन्धी विविध विषयों का विचार किया गया तथा सार्वजनिक विज्ञप्ति प्रकाशित की गई।

कमेटी की इच्छा थी कि परिषद जनवरी १६२७ में की जाय, परन्तु उस समय देश में कई दूसरे काम होनेवाले थे, इसलिए परिषद न की जा सकी। १ अप्रेल १६२७ को सर्वश्री अमृतलाल ठक्कर, जी० आर० अभ्यंकर, ए० बी० पटवर्द्धन, के० टी० शाह, डा० सुमन्त मेहता, मणिलाल कोठारी और रामनारायण चौधरी ने देशी राज्यों के कार्यकर्ताओं को १७,१८ ता० को आमंत्रित किया। यह मीटिंग उक्त तारीखों में, भारत सेवक समाज के भवन में हुई। इसमें निश्चय किया गया कि देशी राज्यों की जनता के प्रतिनिधियों की परिषद मई १६२७ के अन्तिम सप्ताह के लगभग की जाय और उसमें भारतवर्ष के संशोधित विधान के अन्तर्गत देशी राज्यों की वैधानिक प्रगति के विषय पर विचार किया जाय। परन्तु इस बीच में गुजरात में अचानक भारी जलप्रवाह या बाढ़ आ जाने से परिषद का काम फिर स्थगित करना पड़ा।

आखिर २० नवम्बर को कार्यकारिणी कमेटी ने यह निश्चय किया कि परिषद दिसम्बर में की जाय। भावनगर स्टेट्स पीपल्स कान्फ्रेन्स के मंत्री श्री बलवन्तराय मेहता ने अपना सब समय और शक्ति परिषद के काम में लगाना स्वीकार किया, इससे परिषद को दिसम्बर के तीसरे सप्ताह में करने का निश्चय किया जा सका। कच्छ, काठियावाड़, गुजरात, दक्षिण, राजपूताना और हैदराबाद में प्रचार-कार्य करने के लिए इन राज्यों के मुख्य-मुख्य कार्यकर्ताओं की उपसमितियाँ बनाई गईं, और श्री ए० बी० ठक्कर की अध्यक्षता में स्वागत-समिति का संगठन

किया गया। विविध राज्यों के प्रजामंडल तथा इस प्रकार की अन्य संस्थाओं ने अपने-अपने क्षेत्र में बड़े उत्साह और परिश्रम से काम किया। देशी राज्यों की समस्याओं पर प्रकाश डालनेवाली विज्ञप्तियों और छोटी-छोटी पुस्तकों का खूब प्रकाशन हुआ। समाचारपत्रों में रियासतों सम्बन्धी लेखों को खासतौर से छपाया गया। जितना भी सम्भव हुआ, जनता का ध्यान भारतवर्ष की रियासती समस्याओं की ओर आकर्षित किया गया।

लोक-परिषद का पहला अधिवेशन—अस्तु, विविध विघ्न-बाधाओं का सामना करके, बड़े परिश्रम और तैयारी के बाद परिषद का पहला अधिवेशन बम्बई में १७ दिसम्बर १९२७ को आरम्भ हुआ। इसमें डेढ़ हजार से अधिक आदमियों की उपस्थिति थी, इनमें से ७५० स्वागत-सदस्य और प्रतिनिधि थे; और शेष, दर्शक। प्रतिनिधि ७० से अधिक राज्यों के थे। सभापति वैधानिक कानून के विद्वान् और वयोवृद्ध श्री दिवान बहादुर श्री रामचन्द्रराव चुने गए थे।* स्वागताध्यक्ष थे, हैदराबाद राज्य के सुप्रतिष्ठित श्री गोविन्दलाल जी पित्ती। इस अधिवेशन की सफलता के लिए जिन महानुभावों ने विशेष प्रयत्न किया, उनमें से कुछ के शुभ नाम ऊपर आ गए हैं; अन्य सज्जनों में विशेष उल्लेखनीय श्री मणिशङ्कर जी त्रिवेदी हैं, जिन्होंने अपने मरने तक परिषद के मन्त्री की हैसियत से देशी राज्यों की जनता की प्रशंसनीय सेवा की।

यह संस्था अब भारतवर्ष की रियासती जनता की एक मात्र व्यापक

---

* 'कांग्रेस अभी प्रत्यक्ष रूप से देशी राज्यों के प्रश्न को हाथ में लेना नहीं चाहती थी। इसलिए प्रेरणा और मार्ग-दर्शन के लिए कार्यकर्ताओं को नर्म दल का सहारा लेना पड़ा।' —बैजनाथ महोदय

केन्द्रीय और प्रभावशाली प्रतिनिधि संस्था है। इसके पहले अधिवेशन के विषय में कुछ ब्योरेवार बातें जान लेना आवश्यक है। इससे यह मालूम होगा कि अब से बीस वर्ष पहले रियासती समस्याओं के सम्बन्ध में नेताओं की विचार-धारा क्या थी; साथ ही दूसरी उपयोगी जानकारी भी प्राप्त होगी।

स्वागताध्यक्ष का भाषण; उत्तरदाई शासन पर ज़ोर—स्वागताध्यक्ष जी ने अधिवेशन-स्थान बम्बई के सम्बन्ध में कहा कि इसके आस-पास ५६३ में से ४४० राज्य हैं; यह केन्द्रीय स्थान है, और अपनी लोकसेवा-भावना और सार्वजनिक जीवन के लिए सुप्रसिद्ध है। आगे आपने कहा कि भारतवर्ष में तथा देशी राज्यों में स्वाधीनता के भाव फैलते जा रहे हैं। रियासती जनता को अपने पाँवों के बल पर खड़ा होना चाहिए। ऐसा होने पर प्रत्येक भारतवासी उसकी सहायता करने को तैयार हो जायगा। रियासतों की स्थिति का परिचय देते हुए आपने कहा कि कुछ ही वर्ष पहले इनकी संख्या ६६४ थी, पर सन् १६२५ की सरकार द्वारा प्रकाशित प्रामाणिक सूची को देखने से मालूम हुआ कि अब यह ५६३ रह गई है। यह कमी किस प्रकार हुई, इसका रहस्य सरकार का राजनीतिक विभाग ही जानता होगा। राजपूताना की कुछ रियासतों का सम्बन्ध भारतवर्ष के बहुत पुराने राजवंशों से हैं, दूसरी रियासतें सतरहवीं सदी में मुगल साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने पर, तथा १८ और १६ वीं सदी में मराठा और सिक्ख राज्यों के पतन के बाद बनी हैं। पहले ये सब रियासतें मुगलों या मराठों के अधीन थीं। १६ वीं सदी में ईस्ट इंडिया कम्पनी से उनकी सुलह हुई, पीछे सन् १८५७ की राजक्रान्ति के बाद वे अंगरेजी राज्य में शामिल हो गईं। राजाओं को शुरू में जो स्वाधीनता थी, वह धीरे-धीरे घटती गई, और अब तो सन्धियों का मूल्य ही नहीं रहा।

आगे आपने देशी राज्यों की आन्तरिक दुरवस्था और अवव्यस्था का सविस्तर वर्णन करते हुए कहा कि अधिकांश राजा अपनी रियासतों में मनमानी करते हैं; हर महकमे में उनकी अबाध सत्ता होने से प्रजा पर बहुत अत्याचार होता है, न्याय ठीक नहीं होता, फैसले में देरी होती है, रिश्वत का जोर रहता है। इन बुराइयों की मुख्य जड़ है—अच्छे कर्मचारियों का चुनाव न होना, कम तनख्वाह, लगानबन्दी की अस्थिरता और यथेष्ट निरीक्षण की कमी। इसका उपाय यह है कि व्यक्तिगत शासन को समाप्त किया जाय, उसकी जगह कानून का शासन स्थापित हो, किसी के साथ पक्षपात या रियायत न हो। राजा और रंक, धनी और निर्धन सब के साथ समानता का व्यवहार हो। जनता को बोलने और लिखने की आजादी रहे। न्याय-विभाग शासन-विभाग से अलग होना चाहिए। तमाम देशी राज्यों के लिए अपील की एक सर्वोच्च अदालत (सुप्रीम कोर्ट) की स्थापना होनी चाहिए। इससे रियासतों का खर्च कम होगा, और कानूनी सिद्धान्तों में समानता होगी, और न्याय मिलने में अधिक निश्चितता होगी।

आपने इस बात पर जोर दिया कि राजा अपनी-अपनी रियासत में उत्तरदाई शासन की घोषणा करें, और उसे प्रचलित करें। मताधिकार व्यापक हो, और राज्य का सब काम राज्य की ही भाषा में हो। राजा लोग अपने निजी खर्च के लिए बँधी हुई रकम लें। तमाम देशी रियासतों की आन्तरिक व्यवस्था की जाँच के लिए एक कमीशन नियुक्त हो और वह शासन-सुधार के लिए अपनी रिपोर्ट पेश करे। छोटी-छोटी रियासतें बड़ी रियासतों में शामिल हो जायँ और लोक-हित के विविध कामों के लिए अधिक रुपया बच सके। छोटी रियासतों को आपस में मिलाए जाने की क्रिया प्रजातन्त्री सिद्धान्तों पर हो; उनके हरेक सङ्घ का एक वैधानिक शासक हो, जो सुयोग्य राजाओं में से चुना जाय।

अन्त में आपने भारतवर्ष के लिए सङ्घ शासन-पद्धति की उपयोगिता बताते हुए देशी राज्यों को सङ्घ के अंग बनाने का आग्रह किया और कहा कि राजाओं की, सम्राट् से सीधा सम्बन्ध रखने की बात असङ्गत और अनिष्टकारी है। भारत-सरकार से अलग होकर रहना न राज्य के लिए ही हितकर है, और न सारे देश के लिए ही। संधियों पर पुनर्विचार होकर उन्हें देश-काल के अनुसार और लोकहित की दृष्टि से संशोधित किया जाना चाहिए।

सभापति का भाषण; भारतवर्ष को संयुक्त स्वाधीन और स्वावलम्बी बनाने की अपील—सभापतिजी ने बतलाया कि ब्रिटिश भारत की तथा देशी रियासतों की प्रजा के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय हित एक हैं, दोनों को एक दूसरे की स्वाधीनता के लिए आपस में सहयोग करना चाहिए। ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों का मिल कर एक संघ बनना चाहिए। सारे देश के हित को लक्ष्य में रख कर और अपने वर्तमान अधिकारों को छोड़ कर राजा भारतवर्ष के लिए संघ-विधान बनाने में सहायक हों। ब्रिटिश पार्लिमेंट की अपेक्षा, वे ऐसी पार्लिमेंट से सम्बन्ध रखना पसन्द करें, जिसमें उनके प्रतिनिधि होंगे, और जो जनता के प्रति जिम्मेदार होगी। 'जब तक शासन-कार्य में प्रजा को अधिक-से-अधिक अवसर नहीं दिया जायगा, शासन सुधरना कठिन है। शासन-सुधार का मूल तत्व है—व्यवस्थापक सभा का जनता के प्रति जिम्मेदार होना। कोई राजा अपने निजी गुणों से भी राज्य में बहुत से सुधार कर सकता है, पर वे सुधार स्थाई नहीं होते। आपने प्रजा के प्राथमिक अधिकारों—लेखन और भाषण की स्वतंत्रता पर जोर देते हुए कहा कि जनता में दिन-ब-दिन असंतोष बढ़ता जा रहा है, अगर उसके आन्दोलन की उपेक्षा की जायगी तो इससे राजा और सारे भारत का अहित होगा।

आपने साइमन कमीशन की आलोचना की, और इस बात से असंतोष जाहिर किया कि देशी राज्यों सम्बन्धी जाँच कमेटी, प्रजा के दुखों की जाँच न कर सिर्फ राजाओं और साम्राज्य-सरकार के आपसी सम्बन्ध की ही जाँच करेगी। हमारा उद्देश्य और आदर्श स्वतंत्र, प्रबल, संयुक्त स्वराज्य-भोगी और स्वावलम्बी भारत है; परिषद् को ब्रिटिश भारत के राजनीतिक सङ्गठनों के सहयोग से इस आदर्श की प्राप्ति में योग देना और रियासतों को ब्रिटिश भारत की तरह प्रगतिशील बनाना चाहिए।

परिषद के प्रस्ताव; जनता की मांग और कार्य-पद्धति—परिषद में स्वीकृत प्रस्ताव बहुत ही समयोचित और विचारपूर्ण थे। परिषद का उद्देश्य देशी राज्यों में, राजाओं की छत्र-छाया में प्रतिनिधि-संस्थाओं द्वारा जनता के लिए उत्तरदाई शासन की प्राप्ति, ठहराया गया। यह स्पष्ट किया गया कि प्रजा का यह स्वाभाविक अधिकार है कि वह अपने राज्य की शासन-पद्धति का स्वरूप निश्चित करे, और उसमें जो उचित समझे, परिवर्तन करे। राजाओं से अपने-अपने राज्यों में उत्तरदाई शासन-पद्धति प्रचलित करने, अपने निजी व्यय की सीमा निर्धारित करने, न्याय-विभाग स्वतन्त्र करने, और जनता को विविध नागरिक अधिकार तथा शासन-अधिकार प्रदान करने के लिए कहा गया। राजकुमार कालिजों में दी जाने वाली दूषित और अराष्ट्रीय शिक्षा की निन्दा की गई। इस बात पर जोर दिया गया कि सारे भारत के लिए नये विधान की जो योजना तैयार की जाय उसमें देशी राज्यों की जनता के लिए यथोचित स्थान रहना चाहिए और सार्वजनिक हित के मामलों में उसकी आवाज रहनी चाहिए। जनता की दशा सुधारने के लिए स्वावलम्बन के प्रयत्नों में विश्वास प्रकट करते हुए रचनात्मक काम—खादी प्रचार, शिक्षा, ग्राम पंचायत,

अछूतोद्धार, नशेबाजी की रोक करने के लिए संस्थाएँ स्थापित करने का निश्चय किया गया। राजाओं से गुलामी और बेगार प्रथा तुरन्त हटाने के लिए निवेदन किया गया। इस प्रकार परिषद् ने जनता की माँग और इच्छाओं को अच्छी तरह प्रकट किया।

इस अधिवेशन की विशेषता—देशी राज्यों सम्बन्धी विविध संगठनों के अधिवेशन अब तक कांग्रेस आदि के अवसर पर हुए थे। परिषद् का यह अधिवेशन स्वतन्त्र रूप से हुआ, इसमें पंजाब, राजपूताना, मध्यभारत, कच्छ, गुजरात, दक्षिणी राज्य, हैदराबाद, त्रावणकोर, कोचीन, मैसूर आदि सत्तर राज्यों के प्रतिनिधियों ने परिषद् का सङ्गठन बनाने और प्रस्ताव का मसौदा तैयार करने में पूर्ण रूप से भाग लिया। देश के कितने ही माने हुए नेताओं और कार्यकर्ताओं ने इसमें योग दिया। बड़ौदा के युवराज श्रीमन्त धैर्यशीलराव जी भी उपस्थित थे। ७५ सदस्यों की एक कार्यकारिणी समिति बनाई गई, जो परिषद के रचनात्मक कार्य तथा प्रचार-कार्य को बराबर करती रहे। परिषद का काम स्थाई रूप से चलाने के लिए ७०००) से अधिक चन्दा अधिवेशन में ही हो गया। परिषद के इस अधिवेशन से दूर-दूर तक के देशी राज्यों की जनता में उत्साह की अपूर्व धारा बह चली। यह पहला ही अवसर था, जब रियासती जनता इतने बड़े और व्यापक समारोह में अपनी समस्याओं पर विचार करने के लिए जमा हुई थी, और उसने अपने आन्दोलन को चलाते रहने के लिए स्थाई व्यवस्था की थी। लोक परिषद को कई निस्स्वार्थ और निष्काम भाव से काम करनेवाले सज्जन मिल गए। उसका कार्यक्षेत्र उत्तरोत्तर बढ़ता गया है, और वह अपने महान उद्देश्य में अधिकाधिक सफलता प्राप्त करती रही है। इस विषय में खुलासा आगे लिखा जायगा।

—:०:—

बारहवाँ अध्याय

सन् १९२७ से १९३९ तक

सन् १६२७ में अ० भा० दे० रा० लोकपरिषद् का पहला अधिवेशन हुआ, उसके बारे में पिछले अध्याय में लिखा जा चुका है। उसके बाद परिषद् के अधिवेशन समय समय पर होते रहे हैं।* अधिवेशनों के सम्बन्ध में एक खास बात यह है कि सन् १६३६ तक वे ब्रिटिश भारत में ही हुए। (सन् १६४५ का अधिवेशन पहला अधिवेशन था, जो एक देशी राज्य में हुआ।) परिषद् की शक्ति और कार्यक्षेत्र धीरे-धीरे बढ़ता रहा है, और इसका इतिहास कई अंशों में

---

*अ० भा० दे० रा० लोकपरिषद् के अधिवेशनों का ब्योरा—

सं०	सन्	सभापति	स्थान
१—	१६२७	श्री दी. ब. रामचन्द्रराव,	बम्बई
२—	१६२६	" सी० वाई० चिंतामणि,	"
३—	१६३१	" रामानन्द चटर्जी,	"
४—	१६३३	" नरसिंह चिंतामणि केलकर,	"
५—	१६३६	" डा० पट्टाभि सीतारामैया,	करांची
६—	१६३६	" पं० जवाहरलाल नेहरू,	लुधियाना
७—	१६४५	"	उदयपुर
८—	१६४७	" डा० पट्टाभि (कार्यवाहक)	ग्वालियर

[सन् १६३४ में एक विशेष प्रस्ताव स्वीकृत करने के लिए श्री के-नटराजन के सभापतित्व में दिल्ली में परिषद् की एक विशेष बैठक बुलाई गई थी]

रियासती आन्दोलन का इतिहास बनता गया है। परिषद का जीवन संघर्ष, कष्ट-सहन, और अपने ध्येय के प्रति अटल श्रद्धा तथा लगन का जीवन रहा है; और वह बहुत शिक्षाप्रद है। उस पर संक्षेप में एक नजर डाली जाती है।*

राजाओं के दैवी अधिकारों का विरोध—योरप से राजाओं के दैवी अधिकारों की मान्यता उठ चुकी थी। पर भारतवर्ष में खासकर ब्रिटिश सरकार के बल पर राजा और नवाब बने हुए थे, और उनके साथ उनके बहुत-कुछ निरंकुश शासन के अधिकार भी सुरक्षित थे। आखिर, रियासती जनता ने आजादी का आन्दोलन शुरू कर दिया। राजकोट सम्मेलन में पं० जवाहरलाल जी नेहरू ने साफ और बुलन्द आवाज से कहा कि 'राजाओं और नवाबों की व्यवस्था को खतम कीजिए।' रियासती जनता ने अपनी आँखें मलीं, वह सोचने लगी कि क्या ऐसी भी बात हो सकती है। उसमें कुछ तो राजाओं के के लिए कोमल भावनाएँ थी, और कुछ लम्बी गुलामी के कारण उसमें यथेष्ट साहस न रहा था। लोक परिषद के नेताओं और कार्य-कर्ताओं ने, इस बात को ध्यान में रख कर शान्तिपूर्ण उपायों से उत्तरदाई शासन प्राप्त करने का ही आदर्श रखा। परिषद ने स्पष्ट रूप से जान लिया कि वह किस ध्येय के लिए लड़ रही है।

बटलर कमेटी, और परिषद का आन्दोलन—इन्हीं दिनों जनता की इस नई चेतना से घबरा कर देशी नरेशों ने अपनी सत्ता की रक्षा के लिए चिल्लाना आरम्भ किया। ब्रिटिश सरकार और देशी नरेशों की सन्धियों को दृष्टि में रखते हुए उनके पारस्परिक सम्बन्ध पर विचार करने के लिए बटलर कमेटी नाम की एक समिति बनाई

---

*श्री रंगीलदास जी कापड़िया, भूतपूर्व मन्त्री, अ० भा० दे० रा० लोक परिषद, के लेख से।

गई थी। इस समिति के सामने अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए देशी नरेशों ने नवानगर के जाम साहब के नेतृत्व में अंग्रेजी वकील सर लेसली स्काट को नियुक्त करके जनता की गाढ़ी कमाई का बहुत-सा धन पानी की तरह बहा दिया।

देशी राज्य लोक परिषद ने भी इस अवसर पर अपना पक्ष उपस्थित करने का अच्छा अवसर देखा। एक प्रतिनिधि-मण्डल, जिसमें रियासती समस्याओं के मननशील विद्यार्थी स्वर्गीय प्रोफेसर जी० आर० अभ्यंकर तथा श्री पोपटलाल चुड़गर भी थे, इंग्लैण्ड भेजा गया। इस मण्डल ने बटलर कमेटी के समक्ष देशी राज्यों की जनता के पक्ष में एक लिखित वक्तव्य उपस्थित किया और इंग्लैण्ड के अनेक सार्वजनिक नेताओं तथा पार्लिमेण्ट के सदस्यों से मुलाकात भी की। इस प्रकार देशी राज्य लोक-परिषद की ओर से इंग्लैण्ड में जो प्रचार किया गया, उससे उस आवरण के हटाने में बड़ी सहायता मिली, जिसके पीछे देशी राज्यों की तानाशाही का चित्र छिपा हुआ था। इससे दूसरा लाभ यह हुआ कि रियासती प्रजा का प्रश्न पूर्ण रूप से प्रकाश में आ गया।

इसके कुछ ही दिनों बाद श्री पोपटलाल चुड़गर ने जो बैरिस्टरी की परीक्षा देने के लिए इंग्लैण्ड में ही रुक गए थे, अपनी "ब्रिटिश संरक्षण में देशी नरेश" ('प्रिन्सेज अण्डर ब्रिटिश प्रोटेक्शन') नामक पुस्तक प्रकाशित की। इस पुस्तक में रियासती प्रजा से सम्बन्ध रखने-वाली सभी समस्याओं का विस्तृत रूप से विवेचन किया गया था।

इस समय पूना के आर्यभूषण प्रेस ने रियासतों के सम्बन्ध में जो साहित्य प्रकाशित किया, उसने लोगों की विचार-धारा में एक क्रान्ति-सी उत्पन्न कर दी।

पटियाला-महाराज के अत्याचार—इन्हीं दिनों पटियाला से भयंकर हत्याओं, बलात्कारों तथा स्त्रियों के भगाए जाने के अनगिनत

और अविश्वसनीय समाचार आने लगे। लोक-परिषद ने चुप बैठना उचित नहीं समझा और उसने खुली जाँच की माँग की; किन्तु देशी नरेश ब्रिटिश सत्ता की छत्रछाया में थे, इसलिए जाँच की कोई आशा नहीं दिखाई दी।

अन्ततः दूसरे अधिवेशन में जो स्वर्गीय श्री सी० वाई० चिन्तामणि की अध्यक्षता में हुआ था, लोक-परिषद ने पटियाला-महाराजा के विरुद्ध लगाए गए भीषण आरोपों की जाँच करने के लिए एक अपनी ही समिति नियुक्त करने का निश्चय किया। जाँच का भार श्री चिन्तामणि, प्रोफेसर अभ्यंकर, श्री अमृतलाल सेठ, ठक्कर बापा तथा श्री लक्ष्मीदास तैरसी को सौंपा गया। कुछ विशेष कारणवश श्री चिन्तामणि इस कार्य में हाथ नहीं बँटा सके, किन्तु अन्य व्यक्तियों ने पञ्जाब का विस्तृत रूप से दौरा किया। कितने ही गवाहों की गवाहियाँ लीं गईं और अन्त में "पटियाला पर अभियोग" ('पटियाला इनडिक्टमेण्ट') नामक रिपोर्ट प्रकाशित हुई।

यह पहला ही अवसर था जब एक देशी नरेश के कुकृत्यों के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार द्वारा नहीं, बल्कि एक सार्वजनिक संस्था द्वारा जाँच की गई। यह एक महत्त्वपूर्ण घटना थी, जिससे लोगों को शिक्षा भी मिली। रिपोर्ट की धड़ाधड़ बिक्री हुई और समिति द्वारा प्रकाश में लाई गई बातों से जनता के रोंगटे खड़े हो गये। लोगों को यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि ब्रिटिश सरकार की आँखों के सामने ही इस प्रकार के घृणित अत्याचार हुए और उन्हें इस बात का विश्वास हो गया कि ब्रिटिश सरकार की अधीनता में रियासती जनता और उसकी सम्पत्ति का संरक्षण सम्भव नहीं है।

उत्तरदाइत्वपूर्ण शासन का आन्दोलन जबसे आरम्भ हुआ, तभी से देशी नरेश और भारत-सरकार के राजनीतिक अधिकारी मिल

कर काम करते रहे। राजनीतिक अधिकारी तो दमन को रोकने के बदले, उसे और उत्तेजित करते रहे और देशी नरेशों को इस बात में सहायता देते रहे कि वे अपने दमन-चक्र को सफलतापूर्वक चला सकें। इतना ही नहीं, इस प्रोत्साहन में स्वयं ब्रिटिश सरकार का हाथ रहा, जिसका जीता-जागता उदाहरण हमें पटियाला की घटना में मिलता है। जब परिषद ने पटियाला-नरेश पर अभियोग लगाते हुए अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की तो ब्रिटिश सरकार को लाचार होकर सरकारी जाँच की आज्ञा देनी पड़ी; इस काम के लिए फुलकियाँ राज्य के एजण्ट तैनात किए गए।

प्रजा परिषद ने सरकार को यह चुनौती दी थी कि या तो वह उसकी रिपोर्ट में लिखी गई बातों को मानकर अपराधियों के विरुद्ध कार्रवाई करे या उनपर मुकदमा चलावे। सरकारी जाँच-कमेटी ने कोई रिपोर्ट नहीं छापी। उसने ऐसा क्यों किया, यह तो वही जाने। हमें तो इतना ही मालूम है कि उसने परिषद की रिपोर्ट में लिखी गई बातों को सत्य मान लिया, यद्यपि हत्या का उत्तरदाइत्व महाराजा पर से हटाकर उनके कुछ अफसरों पर डाल दिया।

इस सम्बन्ध में इग्लैंड के प्रसिद्ध पत्र 'लन्दन टाइम्स' ने राजाओं के दूषित शासन और ब्रिटिश सरकार द्वारा उनके संरक्षण की कड़ी आलोचना की। इससे जनता की इस माँग को बड़ा बल मिला कि देशी राज्यों में शीघ्र ही उत्तरदाइत्वपूर्ण शासन स्थापित हो और उनपर से सरकारी संरक्षण हटा लिया जाय।

सन् १९३० का आंदोलन—इधर ब्रिटिश भारत में स्वतन्त्रता की लड़ाई लगातार चलती रही। भारत के लिए शासन-विधान बनाने की समस्या पर विचार करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने लन्दन में एक गोल-मेज-कान्फ्रेंस की। इस कान्फ्रेंस में विचार-विनिमय करने के

लिए देशी नरेशों को तो आमन्त्रित किया गया किन्तु रियासतों की जनता का कोई प्रतिनिधि नहीं बुलाया गया। इसलिए भारत की राष्ट्रीय कांग्रेस ने उसका बहिष्कार करने का निश्चय किया। सन् १९३० में सविनय-अवज्ञा का स्मरणीय आन्दोलन आरम्भ हुआ, और देखते ही देखते समस्त जनता में एक भीषण हलचल मच गई। रियासतों की प्रजा ने भी कांग्रेस का साथ दिया। वह युद्ध-क्षेत्र में निर्भीकता से कूद पड़ी; सहस्रों आदमी बन्दी बनाकर कारागार में डाल दिए गए।

इस घटना ने कांग्रेस और रियासती प्रजा के पारस्परिक सम्पर्क को और भी दृढ़ बना दिया। कांग्रेसी नेताओं के हृदय में यह भावना और भी जड़ जमाती गई कि रियासतों की समस्या हल किए बिना भारत की समस्या हल नहीं हो सकती। अतः जब देश की समस्या पर भारत के वाइसराय लार्ड अर्विन के साथ महात्मा गांधी की बातचीत आरम्भ हुई तो अखिलभारतीय देशी राज्य लोक-परिषद ने कांग्रेस कार्यसमिति के पास एक लिखित पत्र भेजा और अपने पक्ष की रक्षा करने के लिए प्रोफेसर अभ्यंकर, श्री रंगीलदास कापड़िया तथा श्री कक्कलभाई कोठारी का एक प्रतिनिधि-मण्डल भी दिल्ली रवाना किया। उन्होंने महात्मा गांधी से कहा कि वह वाइसराय महोदय से बातचीत करते समय और विचार-विनिमय के सभी आगामी अवसरों पर रियासतों की समस्याओं का ध्यान रखें। महात्मा गांधी ने उन्हें आश्वासन दिया कि वाइसराय महोदय के सामने वह देशी राज्यों की जनता के पक्ष को पूरी योग्यता के साथ उपस्थित करेंगे, किन्तु साथ ही साथ उन्होंने यह भी स्पष्ट कह दिया कि देशी राज्यों के मामले पर अड़कर वह अपनी बातचीत को असफल नहीं होने देंगे।

सन् १९३१ में कांग्रेस ने अपने कराची-अधिवेशन के अवसर पर

गोलमेज-कान्फ्रेंस में भाग लेने का निश्चय किया और महात्मा गांधी कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि चुने गए। उस समय रियासतों की प्रजा का क्या हुआ ? उनकी कहीं भी चर्चा नहीं की गई। अतः यह निश्चय करने के लिए कि गोलमेज कान्फ्रेंस में रियासतों की जनता की आवाज किस तरह पहुँचाई जाय, अखिल भारतीय देशी राज्य लोक-परिषद का तीसरा अधिवेशन शीघ्र बम्बई में किया गया। 'माडर्न रिव्यू' के सुप्रसिद्ध सम्पादक श्री रामानन्द चटर्जी इस अधिवेशन के सभापति बने और यह निश्चय किया गया कि एक प्रतिनिधि-मण्डल फिर इंग्लैण्ड भेजा जाय और उसे यह काम सौंपा जाय कि देशी राज्यों की जनता के पक्ष का समर्थन करने में वह महात्मा गांधी की सहायता करे और इस विषय में ब्रिटेन की जनता को भी ठीक-ठीक ज्ञान करावे। इस बार मण्डल में प्रोफेसर अभ्यंकर और श्री अमृतलाल सेठ भेजे गए।

जहाँ तक ब्रिटिश जनता को देशी राज्यों की समस्याओं का ज्ञान कराने का प्रश्न है, उक्त प्रतिनिधि-मण्डल ने निश्चय ही बड़ा सराहनीय कार्य किया, किन्तु जिस विशेष उद्देश्य के लिए वह इङ्गलैंड भेजा गया था, उसमें उसे बहुत कम सफलता मिली।

कांग्रेस ने साथ दिया—परिषद के कार्य में नया जीवन कराची-अधिवेशन (जुलाई १६३६) के बाद आया। कांग्रेस का क्रियात्मक समर्थन पहली बार उसी अधिवेशन में मिला, जब कि कांग्रेस के प्रसिद्ध नेता डाक्टर पट्टाभि सीतारामैया ने अधिवेशन का सभापतित्व स्वीकार किया। उन्होंने रियासती समस्याओं में गहरी दिलचस्पी दिखाई; राजपूताना, काठियावाड़ और दक्षिणी रियासतों में विस्तृत रूप से भ्रमण किया और परिषद का पथ-प्रदर्शन कर उसे अत्यधिक शक्तिशाली बनाया। उन्हीं के सभापतित्व-काल में हरिपुरा-कांग्रेस से

ठीक पहले नवसारी में, जो हरिपुरा के रास्ते में बड़ौदा राज्य के अन्त-गंत एक छोटा-सा कस्बा है, देशीराज्यों के कार्यकर्त्ताओं का एक सम्मेलन हुआ, जिसमें विभिन्न रियासतों के कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। इस सम्मेलन ने हरिपुरा कांग्रेस (फरवरी १६३८) से प्रार्थना की कि वह उनकी समस्या पर नये सिरे से विचार करे। इसके फलस्वरूप कांग्रेस का प्रसिद्ध हरिपुरा-प्रस्ताव पास हुआ, जिससे कांग्रेस और देशीराज्य लोक-परिषद् का सम्पर्क और भी घनिष्ठ हो गया।

तबसे कांग्रेस देशी राज्यों के मामले में निरन्तर अधिकाधिक रुचि दिखा रही है। कुछ कांग्रेसी नेता तो देशी राज्यों के आन्दोलनों में प्रत्यक्ष रूप में भाग लेने लगे हैं, और आवश्यकता पड़ने पर सभी तरह की सहायता देने को तत्पर हैं। सरदार वल्लभभाई पटेल ने राजकोट में जो नेतृत्व ग्रहण किया था, वह इसी बदलती हुई मनोवृत्ति का परिचायक था, इस अवसर पर म० गांधी ने राजकोट के ठाकुर के खिलाफ अनशन किया था।

इस तमाम समय लोक-परिषद् के प्रधान कार्यालय की व्यवस्था श्री मणिशङ्कर त्रिवेदी के हाथों में रही, और वह सारा प्रबन्ध अकेले ही करते रहे। उनके देहान्त के बाद यह कार्य श्री रंगीलदास जी कापड़िया को सौंपा गया। सन् १६३६ और उसके बाद के समय का देशी राज्यों की जनता के लिए अपना अलग ही महत्व है; उसके बारे में अगले अध्याय में लिखा जायगा।



तेरहवाँ अध्याय

सन् १६३६ और उसके बाद

हिन्दुस्तान एक नाजुक जमाने से होकर गुजर रहा है। ऐसे समय केवल प्रस्ताव पास करने से उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। वह समय तो खत्म हो चुका है। अब तो काम का समय है। हमें अपने सामने के विषयों पर जल्दी-जल्दी फैसला करके आगे बढ़ना है। —जवाहरलाल नेहरू

नया वातावरण—अब हमें लोक परिषद के सन् १६३६ और उसके बाद के कार्यों पर विचार करना है। यह रियासती जन-जागृति का नया अध्याय है। सन् १६३७ से ब्रिटिश भारत में उत्तरदाई शासन-पद्धति, कुछ अपूर्ण ही सही, अमल में आने लगी थी, और अधिकांश प्रान्तों में कांग्रेस-मंत्रिमंडल काम कर रहे थे। दो वर्ष सत्ता का उपयोग करने से, कांग्रेस की शक्ति बढ़ी हुई थी, और इसका प्रभाव देशी राज्यों पर पड़े बिना नहीं रह सकता था। हैदराबाद, मैसूर, त्रावणकोर, राजपूताना तथा उड़ीसा आदि के राज्यों में असन्तोष की लहर जोर से आई। रियासती जनता अपने अधिकारों तथा आजादी के लिए संघर्ष लेने को पहले से बहुत अधिक कटिबद्ध हो गई। जगह-जगह नए प्रजा-मंडल आदि स्थापित होने लगे; पहले की संस्थाओं में भी जोश आ गया। योरप में महायुद्ध की आशंका कई वर्ष से थी; वहाँ से आनेवाली स्वाधीनता की आवाज़ भारतवर्ष में स्थान-स्थान पहुँच रही थी। ऐसी स्थिति में अ० भा० दे० रा० लोक परिषद का छठा अधिवेशन सन् १६३६ में लुधियाना में हुआ।

लुधियाना अधिवेशन—इस अधिवेशन के सभापति श्री जवाहरलाल जी नेहरू चुने गए। अधिवेशन में भाग लेने के लिए भारतवर्ष के बहुत से देशी राज्यों के प्रतिनिधि बड़ी संख्या में आए। रियासती जनता को पहली बार एक निश्चित नेतृत्व प्राप्त हुआ। यहीं उन्होंने अपनी माँगों को ठोस रूप प्रदान किया। उन्हें इस बात का अटल विश्वास हो गया कि आजकल की शीघ्रता के साथ बदलने वाली परिस्थिति में छोटी-छोटी रियासतों का कोई स्थान नहीं है।

लुधियाना में जो प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, उसका मूल सिद्धान्त यह था कि केवल वे ही राज्य, जिनकी जनसंख्या २० लाख से अधिक है और जिनकी आय ५० लाख रु० से कम नहीं है, ऐसी शासन-व्यवस्था करने के योग्य हैं, जो स्वतंत्र और संघीय भारत के भिन्न-भिन्न घटकों के योग्य और अनुकूल समझी जा सकें।* शेष सभी राज्य या तो अलग-अलग या संघीय रूप से निकटवर्ती प्रांतों में मिला दिये जाने चाहिएँ। बाद में जब सरकार ने छोटी रियासतों को बड़ी रियासतों में मिलाने की अपनी योजना बनाई तो उसमें उसने परिषद के सिद्धान्त को मान लिया। यह बात और है कि छोटी-छोटी रियासतों को ब्रिटिश प्रान्तों में मिलाने के बदले, उनसे अपना साम्राज्यवादी अर्थ सिद्ध करने के लिए, उसने उन्हें बड़ी-बड़ी रियासतों में मिला दिया।

लुधियाना-अधिवेशन से देशी राज्यों के आन्दोलन में निस्संदेह एक नई स्फूर्ति पैदा हो गई। पंडित जवाहरलाल नेहरू की घोषणाओं

---

*पीछे और अनुभव और जाँच के बाद सितम्बर १९४६ में परिषद की स्थाई समिति ने निश्चय किया कि आमतौर से संघ की इकाई ऐसी ही रियासतें हों, जिनकी आबादी लगभग ५० लाख और सालाना आमदनी लगभग तीन करोड़ रुपये हो।

और वक्तव्यों से रियासतों से सम्बन्ध रखनेवाली समस्याओं की ओर न केवल भारतवासियों का, बल्कि बाहरी देशों के निवासियों का भी, अधिक-से-अधिक ध्यान आकर्षित हुआ। केन्द्रीय कार्यालय की फिर से व्यवस्था की गई और उसके अन्तर्गत एक खोज-विभाग भी खोला गया, जिसका प्रधान कार्यालय प्रयाग में रखा गया और जिसका प्रबन्ध-भार नवयुवक बैरिस्टर श्री शान्तिधावन को सौंपा गया। इस विभाग की ओर से अंगरेजी में एक पुस्तक प्रकाशित हुई—'देशी राज्य क्या हैं ?' श्री धावन जी के काफी समय न दे सकने के कारण इस विभाग का कार्य पीछे श्री द्वारकानाथ जी काचरू को सौंपा गया।

लुधियाना-अधिवेशन से कुछ ही पहले लोक-परिषद ने "स्टेट्स पीपुल्स" नाम से अपना एक मुख-पत्र भी प्रकाशित करना आरम्भ किया। पहले दो साल तक इसका सम्पादन श्री बलवन्तराय मेहता और श्री रंगीलदास कापड़िया ने किया। कुछ दिनों तक यह पत्र मासिक रूप में और कुछ दिनों तक पाक्षिक रूप में प्रकाशित हुआ। दो साल बाद वह डाक्टर पट्टाभि सीतारामैया के अधिकार में चला गया, जो उसका सम्पादन मछलीपट्टम से करते रहे।* (सन् १६४२ में उसका प्रकाशन स्थगित कर दिया गया।)

राजाओं की चिन्ता—पहले कहा जा चुका है कि सन् १६३६ में कांग्रेस कई प्रान्तों में शासन-सूत्र चला रही थी। यद्यपि कितनी ही रियासतों में दीवान-पद पर अंगरेज काम कर रहे थे, और रियासतों को अंगरेजी सेना और अफसरों का यथेष्ट सहयोग प्राप्त था,

---

* खेद है कि लोक-परिषद का प्रकाशन-कार्य पहले अंगरेजी में ही होता रहा। सन् १६४७ से कुछ प्रकाशन हिन्दी में हुआ है।

प्रान्तों की कांग्रेसी सरकारों को अब यह सह्य न था कि रियासतों में राजाओं की धांधली चलती रहे। राजकोट आदि रियासतों में जन-आन्दोलनों को म० गांधी और श्री पटेल आदि कांग्रेस-नायकों का आशीर्वाद ही नहीं, क्रियात्मक सहानुभूति मिली; इससे राजा लोग सतर्क हो गए। उन्होंने समझ लिया कि अब छोटी-छोटी रियासतें अपने जुदा-जुदा साधनों से जन-आन्दोलनों का अच्छी तरह सामना नहीं कर सकतीं। उन्हें यह चिन्ता हुई कि किन-किन विषयों में सम्मिलित साधनों का उपयोग हो सकता है, आन्दोलकों और कार्य-कर्ताओं से कैसा व्यवहार करने में अधिक सफलता की सम्भावना है, प्रजामण्डलों के प्रति साधारणतया कैसी नीति वर्ती जानी चाहिए, और जनता में उत्तरदाई शासन की जा मांग बढ़ती जा रही है, उसके सम्बन्ध में क्या कार्रवाई करना ठीक होगा।

कूटनीतिक मंत्रणा—इन विषयों पर खासकर महाराजा बीकानेर के नेतृत्व में काम करनेवाले राजाओं ने जो विचार-विनिमय किया, उसका संक्षेप में परिचय इस प्रकार है। आन्दोलकों के सम्बन्ध में यह विचार रहा कि बाहरी आन्दोलकों का राज्य में कोई स्वार्थ नहीं होता, वे तो नेता कहे जाने के लिए ही यह पेशा इख्त्यार करते हैं। उनका राज्य में ठहरना खतरनाक है। उनकी हलचलें बन्द करने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि उन्हें राज्य से बाहर निकाल दिया जाय, उन्हें देश-निकाले की सजा दी जाय, और उनका राज्य में प्रवेश रोक दिया जाय। जो आन्दोलक राज्य के ही निवासी हों यद्यपि उनका होना भी राज्य की सुव्यवस्था और शान्ति के लिए हानिकर है, तथापि उनकी बात कुछ दूसरी है। उनका राज्य में स्वार्थ होता है, अकसर वे जिन शिकायतों को प्रकाश में लाते या प्रचार करते हैं, वे एक सीमा तक ठीक होती है, और उन्हें यथा-सम्भव दूर किया जाना चाहिए, जिससे उनके आन्दोलन में कुछ दम न रहे और वह ठंडा पड़ जाय। अगर

आन्दोलक सच्चे हों और शिक्षित बेकारों के वर्ग में से हों तो उन्हें राज्य में उनके लायक काम देकर उनका मुँह बन्द करने की कोशिश की जानी चाहिए।

प्रजामंडलों के बारे में सोचा गया कि इनके संस्थापक और सहायक प्रायः असंतुष्ट प्रजाजन या बर्खास्त किए हुए सरकारी नौकर होते हैं। इनके विषय में बहुत सतर्क रहने की आवश्यकता है। इनकी कार्रवाई को ध्यान-पूर्वक देखते रहना चाहिए, और छोटी-बड़ी सब बातों को नोट किया जाना चाहिए। प्रजामंडलों को जन्म लेते ही कुचल दिया जाना ठीक है, जिससे वे कुछ बलवान न होने पायँ और वे प्रभावशाली संस्था का रूप न पा सकें। जिन प्रजामंडलों ने कुछ जोर पकड़ लिया है, उनके कार्य की दिशा होशियारी से बदल दी जाय, जिससे वे अपनी शक्ति शारदा-एक्ट (बाल विवाह निषेध) आदि समाज-सुधार के काम में लगाने लगें। इसके अलावा राज्यों में शासन-कार्य में परामर्श देने के लिए सलाहकार मंडल स्थापित किये जायँ, जो लोगों को दिखावटी उत्तरदाई शासन की शिक्षा देने के साधन हों। जो प्रजामण्डल राज्यों की सीमा से बाहर हों, उनकी उपेक्षा की जाय।

देशी राज्यों में जो उत्तरदाई शासन प्रचलित करने की बात म० गाँधी या सरदार पटेल आदि कांग्रेस नेता उठा रहे हैं, उनके बारे में यह समझा गया कि देशी राज्यों के आदमी उसके लिए बिलकुल तैयार नहीं है। उसे स्वीकार करना राज्य तथा जनता दोनों के लिए हानिकर होगा और राज्य की शान्ति और व्यवस्था के लिए घातक रहेगा। संक्षेप में यह निश्चय किया गया कि लोगों की माँग पर ध्यान तो दिया जाय, पर उत्तरदाई शासन प्रचलित न किया जाय।

कांग्रेस के सम्बन्ध में महाराजा बीकानेर की स्पष्ट नीति थी, और उन्होंने इन बातों पर बहुत जोर दिया—'न्याय करो, पर दृढ़ रहो'; लार्ड मिन्टो की सन् १९०८ के प्रसिद्ध पत्र में सूचित की हुई नीति

'दमन और उसके साथ ही संतुष्टिकरण'; 'मारते रहो और पुचकारते भी जाओ।' यह निर्णय करने में बहुत चतुराई और समझदारी से काम लेना चाहिए कि कब तो नरमाई वर्ती जाय, कब कड़ा होना चाहिए, और कब दोनों बातों को मिला देना ठीक रहेगा। इसका निश्चय इस बात पर निर्भर करेगा कि कब कैसा मौका है। राजाओं की यह मंत्रणा कितनी कूटनीति पूर्ण और लोक-हित विरोधी थी, यह स्पष्ट ही है।

दूसरा महायुद्ध—दूसरा महायुद्ध शुरू होने पर, सरकार से युद्ध-उद्देश्यों की घोषणा करने की मांग करने के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन पूना में हुआ। उसी समय अखिल भारतीय देशीराज्य लोक-परिषद ने भी कांग्रेस की मांग का समर्थन किया। उसने देशी नरेशों द्वारा अपनी रियासतों को जबरन लड़ाई में खींचने का, और जनता का धन युद्ध प्रयत्न में पानी की तरह बहाने का, विरोध किया। परिषद की स्थाई समिति ने अपने प्रस्ताव में यह भी कहा कि राजा लोग यह घोषित करें कि उन्हें अपने-अपने राज्य में पूर्ण उत्तरदाई शासन स्वीकार है, और वे उसे निकट भविष्य में अधिक-से-अधिक सम्भव रूप में अमल में लाने को तैयार हैं। युद्ध की आड़ में जो दमनकारी व्यवस्था स्थापित की गई है, वह स्थगित की जाय, जो शासन-सुधार रोक दिए गए हैं, उन्हें कार्यरूप में परिणत किया जाय, और व्यापक स्वतंत्रता चलने दी जाय।

क्रिप्स योजना—सन् १९४२ में ब्रिटिश युद्ध-मन्त्रिमन्डल की ओर से सर स्टेफर्ड क्रिप्स भारतवर्ष के भावी शासन की एक योजना लेकर आए; उसे आम बोलचाल में 'क्रिप्स योजना' कहा जाता है उस योजना में कहा गया था कि भारत का भावी विधान बनाने के लिए जो सभा बनाई जायगी, उसमें ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि के

जनता द्वारा चुने जायँगे किन्तु देशी राज्यों के प्रतिनिधि राजाओं द्वारा नामजद किए जायँगे; इसके बाद जब विधान बन चुकेगा तो इस बात का निर्णय भी राजा लोग ही करेंगे कि उनकी रियासत को भारतीय सङ्घ में शामिल होना चाहिए या नहीं; जो राजा भारतीय सङ्घ में शामिल न होंगे, वे ब्रिटिश सरकार के साथ सीधा सम्बन्ध रख सकेंगे। परिषद की स्थायी समिति की शीघ्र ही दिल्ली में एक बैठक की गई और सर स्टैफर्ड क्रिप्स से मुलाकात भी की गई। इस मुलाकात के लिए डाक्टर पट्टाभि सीतारामैया रियासती प्रजा के प्रतिनिधि चुने गए। किन्तु सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने देशी राज्यों के सम्बन्ध में अपनी योजना में परिवर्तन करने में लाचारी प्रकट की और विधान निर्मात्री सभा में रियासती जनता के प्रतिनिधित्व के अधिकार को स्वीकार नहीं किया। आखिर, यह योजना कांग्रेस और लोक-परिषद दोनों ने ठुकरा दी। देश के अन्य दलों को भी यह मान्य न हुई। निदान, यह अमल में नहीं आई।

सन् १९४२ का आन्दोलन—महायुद्ध से रियासतों और ब्रिटिश भारत की सीमाओं को तोड़ने में खूब मदद मिली। अब सारे भारतवर्ष की जनता में एक ही तरह की भावनाएँ और आकांक्षाएँ पैदा हो गईं। अगस्त १९४२ में म० गांधी ने राजाओं को भी अपना सन्देश दिया था, पर उन्होंने स्वार्थ और अदूरदर्शिता के कारण उस पर ध्यान न दिया; किन्तु जनता की बात दूसरी रही। अखिल भारतीय कांग्रेस की बम्बई बैठक के अवसर पर महात्मा जी ने रियासतों के प्रजामण्डलों के अध्यक्षों की बैठक बुलाई और प्रजामण्डलों को यह राय दी कि वे अपने राजा-महाराजाओं को पत्र भेजकर निवेदन करें कि वे अंगरेजी राज से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर दें। बहुत से प्रजामण्डलों ने कांग्रेस के साथ कन्धे से कन्धा मिलाया। उन्होंने 'भारत-छोड़ो' नारा लगाया और अपने शासकों को सम्राट् से नाता

तोड़ने और उत्तरदायी शासन स्थापित करने के लिए कहा। इसके जवाब में प्रायः राजाओं ने जी खोलकर दमन किया। स्थूल दृष्टि से सन् १९४२ का आन्दोलन सामूहिक रूप से रियासतों में सफल नहीं हुआ; पर जन-जागृति में इसका महत्वपूर्ण भाग रहा।

'सन् १९४२ में राष्ट्रीय आन्दोलन का, सर्व-प्रथम रियासतों की प्रजा के आन्दोलन के साथ, गठबन्धन हुआ। क्रान्ति की ज्वाला सब वाह्य नुमायशी बन्धनों को तोड़ती हुई रियासतों में धधकी और आन्दोलन की गतिविधि वहाँ पर भी ऐसी ही रही, जैसी कि ब्रिटिश भारत में। मध्यभारत की रियासतों में आन्दोलन बड़ी तीव्र गति से फैला और भरतपुर, कोटा, इन्दौर, गवालियर, रतलाम और बड़ौदा आदि में हड़तालें हुईं, विरोध प्रदर्शन हुए, सरकारी सत्ता पर आक्रमण हुए। दक्षिण भारत की रियासतों में भी इसकी लपटें फैलीं और विशेषकर मैसूर में तो उसकी गतिविधि बहुत ही बढ़ी-चढ़ी रही। यहाँ पर जनता ने सरकारी राजसत्ता पर प्रहार कर कब्जा करने के सफल व असफल प्रयत्न किए। उधर उड़ीसा और महाराष्ट्र की देशी रियासतों में शोले उटे। निस्सन्देह देशी रियासतों में जो आन्दोलन हुआ, उसका श्रेय वहाँ के प्रजामंडलों को है, जिन्होंने राज्य में जागृति व बेचैनी पैदा कर दी थी। इस कारण इस आन्दोलन की वाह्य गति के समाप्त होते ही सारी रियासतों में प्रजामंडलों का सङ्गठन और सम्मान बढ़ा और प्रायः राजाओं ने अपने प्रजामंडलों से किसी न किसी प्रकार समझौता करने की चेष्टा की।'*

इस आन्दोलन सम्बन्धी कुछ रियासतों का व्योरेवार परिचय आगे अलग-अलग उन रियासतों के प्रसङ्ग में किया जायगा।

---

* 'सन् बयालीस का विद्रोह' (लेखक—श्री गोविन्द सहाय एम० एल० ए०) से।

कुछ-भ्रम निवारण—यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है। सन् बयालीस का आन्दोलन कुछ राज्यों में बहुत ठंडा मालूम हुआ; कुछ लोगों ने यहाँ तक कहा कि यह आन्दोलन कुछ थोड़े से ही राज्यों में परिमित रहा; दूसरे राज्यों में यह नहीं हुआ। इस विषय में ये बातें ध्यान में रखने की हैं—

(१) कुछ राज्यों के प्रमुख कार्यकर्ता बम्बई अधिवेशन में गए थे। उनके अपने-अपने स्थान लौटने में कुछ देर लग गई और उन राज्यों की लोकसंस्थाओं ने उनके आने और निश्चित आदेश प्राप्त करने से पहले आन्दोलन सम्बन्धी कोई तेज कदम उठाना ठीक नहीं समझा; और जब वे ऐसा करने की स्थिति में हुई, तब तक देश का वातावरण कुछ बदल गया, और आन्दोलन चलाने की वैसी जरूरत न रही।

(२) कुछ राज्यों में अधिकारियों ने एक ओर तो लोक-संस्थाओं को तोड़-फोड़ की बातों को छोड़कर (जिनका असर रियासतों पर ही पड़ता) ब्रिटिश साम्राज्य विरोधी आन्दोलन करने की गौण रूप से अनुमति दे दी, और दूसरे उन्होंने इस समय बुद्धिमत्ता-पूर्वक शासन-सुधारों और रचनात्मक विषयों का काम हाथ में लेकर प्रजामंडलों का सहयोग प्राप्त कर लिया। इन राज्यों में प्रजामंडलों ने जो ब्रिटिश साम्राज्य विरोधी सभाएँ कीं, भाषण दिए या जलूस आदि निकाल कर प्रदर्शन किए, उसमें राज्यों ने कोई हस्तक्षेप न किया, उन्होंने इसे चुपचाप सहन किया, चाहे इसके लिए उन्हें राजनीतिक विभाग से कुछ फटकार भी सुननी पड़ी। इन राज्यों में साम्राज्य-विरोधी आन्दोलकों की गिरफ्तारी न होने से स्वभावतः आन्दोलन उग्र रूप धारण करने से रुका रहा। इन राज्यों के कुछ कार्यकर्ताओं ने अपने नजदीक के या कुछ दूर के ब्रिटिश इलाकों में जाकर वहाँ आन्दोलन में जी खोल-कर भाग लिया, और गिरफ्तारी, कैद या लाठी-वर्षा आदि का सहर्ष स्वागत किया। इनके प्रजामंडलों ने बाहर जाकर आन्दोलन में भाग

लेनेवाले अपने कार्यकर्ताओं के परिवारों को आर्थिक सहायता दी और ब्रिटिश भारत के कार्यकर्ताओं को भी यथा-सम्भव मदद पहुँचाई।

(३) कुछ प्रजामंडलों का संगठन इतना शिथिल या निर्बल था कि कांग्रेस-आन्दोलन से यथेष्ट सहानुभूति रखते हुए भी उनमें ऐसी शक्ति न थी कि आन्दोलन में खुलकर भाग लें।

निदान, जिन राज्यों के प्रजामंडलों ने सन् बयालीस के आन्दोलन में भाग नहीं लिया, प्रायः उनकी विशेष परिस्थिति ही उसका कारण रही।

उदयपुर-अधिवेशन—दिसम्बर १६४५ के अन्त और जनवरी १६४६ के आरम्भ में लोक-परिषद का अधिवेशन उदयपुर में हुआ, सभापति का आसन फिर श्री जवाहरलाल जी नेहरू ने ग्रहण किया। यह पहला अवसर था कि परिषद का अधिवेशन एक देशी राज्य में हुआ। जनता में अपूर्व उत्साह रहा। इस अधिवेशन में परिषद ने अपनी स्थायी समिति के उस प्रस्ताव का समर्थन किया जिसमें कहा गया था कि रियासतें स्वतन्त्र और सङ्घ-बद्ध भारत के अंग के रूप में रहें और उनमें पूर्ण उत्तरदायी शासन हो। यह भी निश्चय किया गया कि भावी विधान बनानेवाली सभा में रियासती जनता के चुने हुए प्रतिनिधि ही भेजे जायँ, और इनका चुनाव वैसे ही व्यापक मताधिकार के आधार पर हो, जैसा कि इस समय प्रान्तों में है।

इस अधिवेशन की विशेषता यह है कि इसमें लोक-संस्थाओं के, नियमानुसार चुने हुए प्रतिनिधियों ने भाग लिया। जिन ७७ राज्यों की जनता का यहाँ प्रतिनिधित्व हुआ, उनका क्षेत्रफल और जनसंख्या कुल राज्यों का क्रमशः ८७ और ८३ प्रतिशत था। लोक-परिषद का नया विधान भी स्वीकार किया गया। जो ७७ रियासती संगठन परिषद से सम्बद्ध हो गए, उनके सदस्यों की संख्या लगभग दस लाख थी। अब अन्य संगठनों का भी परिषद से सम्बन्ध हो जाने, और किसी संगठन के परिषद से बाहर न रहने की आशा हो गई। इस बात को अच्छी

तरह समझने के लिए, इस समय तक की परिस्थिति को ध्यान में रखना आवश्यक है। सन् १९४५ तक भारतवर्ष की छोटी-बड़ी अधिकांश रियासतों में लोक-संस्थाएँ बन गई थीं। कहीं रियासती लोक-संस्था का नाम प्रजामंडल था, कहीं लोकपरिषद, कहीं सार्वजनिक सभा, स्टेट कॉंग्रेस या मित्र-मंडल आदि। ये सब संस्थाएँ एक दूसरे से पृथक् और स्वतंत्र थीं। एक राज्य की संस्था का दूसरे अपने पड़ोसी राज्य की संस्था से भी विशेष सम्बन्ध न था ; बहुत दूर-दूर की संस्थाओं के आपसी सम्बन्ध की तो बात ही अलग रही। कहीं-कहीं एक ही राज्य में एक से अधिक संस्थाएँ संगठित थीं और उनके आपसी व्यवहार में कभी-कभी सहयोग की भावना न होकर कटुता होती थी, वे किसी का नियंत्रण नहीं मानती थीं। यद्यपि अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद सन् १९२७ से स्थापित थी, उसका देश भर की विविध संस्थाओं पर कुछ अधिकार न था। उससे सिर्फ इतना ही होता था कि विविध संस्थाओं के कार्यकर्ता तथा दूसरे व्यक्ति उसके अधिवेशनों में सम्मिलित होकर एक-दूसरे से मिलने जुलने और विचार-विनिमय करने का अवसर प्राप्त करते और उसके कार्यालय को अपने क्षेत्र की स्थिति और कार्रवाई की रिपोर्ट भेजते तथा दूसरी रियासतों के विषय में थोड़ी बहुत जानकारी प्राप्त कर लेते थे। वे एक दूसरे को, सहानुभूति प्रकट कर नैतिक सहायता भर दे सकते थे। उन्हें किसी से क्रियात्मक सहायता या पथ-प्रदर्शन की आशा न थी। उनमें कोई एकसूत्रता न थी। अब से बातें न रहीं।

प्रादेशिक समितियों का संगठन—परिषद के नये विधान के अनुसार के सब देशी राज्यों को १४ प्रादेशिक क्षेत्रों में बांटा गया*—

*अब पाकिस्तान राज्य बन जाने पर इसमें कुछ परिवर्तन की सम्भावना है।

१—कशमीर और जम्मू (पश्चिमोत्तर सीमा की रियासतों सहित) ।
२—हैदराबाद ।
३—बड़ौदा और गुजरात के राज्य ।
४—मैसूर, बंगनपल्ली और सन्दूर ।
५—मध्यभारत के राज्य, बनारस, रामपुर ।
६—त्रावणकोर, कोचीन, पद्दूकोटा ।
७—उड़ीसा के राज्य, बस्तर, मध्यप्रान्त के राज्य ।
८—मनिपुर, कूचबिहार और त्रिपुरा ।
९—दक्षिण के राज्य (महाराष्ट्र और कर्नाटक में) ।
१०—पंजाब के राज्य ।
११—शिमला के पहाड़ी राज्य ।
१२—बलोचिस्तान राज्य (कलात, खरां, लसबेला) ।
१३—काठियावाड़ राज्य (कच्छ सहित) ।
१४—राजपूताना की रियासतें ।

इस प्रकार सारे भारत में उपरोक्त प्रत्येक प्रदेश के लिए रीजनल कौंसिल अर्थात् प्रादेशिक अथवा प्रान्तीय समितियों का निर्माण किया गया ।

प्रादेशिक समिति का संगठन उक्त प्रदेश की रियासतों से नियमानुसार चुन कर आए हुए प्रतिनिधियों द्वारा होता है । विधान के अनुसार प्रति लाख जन-संख्या प सौ सदस्यों के पीछे एक प्रतिनिधि चुना जाता । इस तरह जितने प्रतिनिधि होते हैं, वे प्रादेशिक समिति के सदस्य होते हैं । ये प्रतिनिधि अपनी संख्या के आठवें हिस्से तक सदस्यों को नामजद कर अपने में मिला सकते हैं । ये कुल सदस्य, प्रादेशिक जनरल कौंसिल के सदस्यों को चुनते हैं और उक्त कौंसिल एक कार्यसमिति का निर्माण करती है । इस तरह कार्यसमिति पर प्रादेशिक समिति का कार्य चलाने की जिम्मेदारी रहती है ।

प्रादेशिक समितियों का कार्य—(१) ये प्रादेशिक समितियाँ उसी प्रकार अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् की अखिल भारतीय कौंसिल के सदस्यों की चुनाव करती हैं, जिस तरह कि प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटियाँ महासमिति के सदस्यों का।

(२) अपने प्रदेश के अन्तर्गत रियासतों के जन-संगठनों (जैसे प्रजामण्डलों, प्रजापरिषदों अथवा स्टेट-कांग्रेसों) को लोक परिषद से सम्बद्ध करने का अधिकार इन प्रादेशिक समितियों को है।

(३) प्रत्येक प्रान्तीय समिति परिषद के अधिवेशन के लिए प्रति एक लाख जन संख्या पर, जहाँ कि कम से कम १०० सदस्य हों एक प्रतिनिधि चुनकर भेज सकेगी।

इसके अलावा प्रादेशिक समिति जो कि सारे प्रदेश की प्रतिनिधि संस्था है, प्रदेश की राजनीतिक गति-विधि का संचालन करती है। इस तरह से प्रजा को भी एक साथ मिलकर आम समस्याओं व विषयों पर अपनी एक निश्चित नीति बनाने में सहायता प्राप्त होती है।

परिषद् की स्थायी समिति—परिषद की स्थायी समिति को अध्यक्ष नामजद करते हैं। सन् १६४६ में इसमें अध्यक्ष के अतिरिक्त १ कार्यवाहक अध्यक्ष, १ उपाध्यक्ष, १ कोषाध्यक्ष, ४ मंत्री, और १२ अन्य सदस्य अर्थात् कुल मिलाकर बीस सदस्य थे।* विशेष परिस्थिति में स्थायी समिति किसी रियासती संगठन को सीधे तौर पर भी सम्बद्ध कर सकती हैं। वह उचित कारण बतलाकर तथा कम से कम एक माह का नोटिस देकर किसी सम्बद्ध संस्था से सम्बन्ध-विच्छेद भी कर सकती है।

---

*सन् १६४७ में अन्य सदस्यों की संख्या १२ के बजाय १६ निश्चित की गई।

उदयपुर और ग्वालियर के बीच का समय—उदयपुर के अधिवेशन के सिर्फ सवा साल बाद ही (अप्रेल १९४७ में) परिषद का ग्वालियर अधिवेशन हुआ, पर इस सवा साल में, रियासती जनता की ही राजनीति में नहीं, भारतीय राजनीति में बड़े-बड़े परिवर्तन हो गए। ब्रिटिश मंत्रिमिशन यहाँ आया, उसने विधान-सभा के निर्माण और कार्यपद्धति की योजना बनाई; वह आदर्श की दृष्टि से उत्तम न होने पर भी कामचलाऊ थी। अन्तर्कालीन (अस्थायी) राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हुई। विधान-सभा का कार्य आरम्भ हुआ, जो प्रतिक्रिया-वादी शक्तियों की ओर से बाधाएँ उपस्थित की जाने पर भी चलता रहा। ब्रिटिश प्रधान मंत्री ने यह घोषणा की कि जून १९४८ में भारत-वर्ष में ब्रिटिश शासन समाप्त कर दिया जायगा। मंत्रिमिशन की घोषणा के बाद कुछ राजाओं ने उसकी त्रुटियों या दोषों से लाभ उठाकर भारतवर्ष की एकता में बाधक बनने और स्वतंत्र राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। उनको इस षड्यंत्र में राजनीतिक विभाग का सहारा मिला।

राजाओं की निरंकुशता और राजनीतिक विभाग के षड्यंत्रों के विरुद्ध शेरे-कशमीर शेख मोहम्मद अब्दुल्ला ने 'कशमीर छोड़ो' आन्दोलन आरम्भ करके रियासती जनता को प्रगतिशील नेतृत्व प्रदान किया। इसके फलस्वरूप कशमीर राज्य ने उन्हें जेल में बन्द किया, उधर रियासती जनता ने उन्हें सर्वसम्मति से अ० भा० देशी राज्य लोक-परिषद के ग्वालियर-अधिवेशन का अध्यक्ष निर्वाचित कर उनके प्रति अपने आदर-भाव का परिचय दिया।

गवालियर-अधिवेशन—परिषद के गवालियर-अधिवेशन में जनता ने बड़े दुख से यह अनुभव किया नौ करोड़ आदमी जिस सज्जन के नेतृत्व में अपनी सभा का संचालन करना चाहें, वह एक

रियासत की जेल में बन्द रखा जा सकता है। जनता को अपने निर्वाचित अध्यक्ष के सम्पर्क से वंचित करने का परिणाम यह होना ही था कि जनता में राजाओं और राजतन्त्र के विरुद्ध क्षोभ की भावना बढ़े। हाँ, यह क्षोभ परिषद के प्रस्तावों में व्यक्त नहीं हुआ। बात यह थी कि श्री नेहरू जी आदि लोकनेताओं ने अपने प्रभाव का उपयोग करके प्रस्तावों की भाषा यथा-सम्भव नर्म रखी। तथापि जिन्होंने अधिवेशन में दिए गए भाषण या वहाँ लगाए गए नारे सुने हैं, उनसे जनता की भावनाएँ छिपी नहीं रह सकतीं।

स्वागताध्यक्ष श्री गोपीकृष्ण जी विजयवर्गीय ने अपने भाषण में मध्यभारत की रियासतों के समूहीकरण और शासन-सुधारों के सम्बन्ध में ब्योरेवार विचार करते हुए कहा कि वास्तव में समस्त रियासती जनता की समस्याएँ एकसी है, हमें अपने संगठन अर्थात् लोक-परिषद को मज़बूत करना चाहिए। अब जनता की राजसत्ता ('पोपल्स सावरेनटी') का आन्दोलन करना चाहिए, और जल्दी जल्दी सारी रियासतों में (मुनासिब नोटिस देकर) जनता के अधिकारों के लिए व्यापक संघर्ष छेड़ना चाहिए। मुट्ठी भर एकतन्त्री राजा-नवाब नौ करोड़ जनता की तरक्की में बाधा डालने या हमारे कुदरती राजनीतिक अधिकार रोक रखने का हक नहीं रखते।

कार्यवाहक अध्यक्ष डाक्टर पट्टाभि सीतारामैया ने अंग्रेजों की रियासतों सम्बन्धी नीति, ब्रिटिश मन्त्रिमिशन की भावी विधान सम्बन्धी योजना, राजाओं और नरेन्द्र मंडल के विचारों और कार्यों तथा जागीरदारी आदि विविध रियासती समस्याओं पर सुन्दर प्रकाश डाला। आपने एक खास बात यह कही कि समय की पुकार है कि बड़ी रियासतों में, जो दस-बारह से ज्यादह नहीं है, फौरन जवाबदाराना हकूमत का एलान कर दिया जाय; जैसा कि कोचीन ने कर दिया है। और, साथ ही इस घोषणा के अमली रूप अख्तियार करने की

अवधि का भी एलान कर दिया जाय, जैसा कि अंग्रेज सरकार ने भारतवर्ष के लिए घोषित किया है कि जून १९४८ से पहले ही सत्ता हस्तान्तारित कर देंगे। इसके लिए राजाओं को विधान-सभा में शरीक होना जरूरी है। सौ डेढ़ सौ रियासतों को जिनकी आबादी कुछ हजार से कुछ लाख तक ही है, और आय बीस लाख और एक करोड़ के बीच में है, मिलाकर समूह बनाए जाने चाहिएँ और शेष छोटे-छोटे राज्यों को, जो कि केवल ठिकाने हैं, पास के प्रान्तों में मिलाया जा सकता है और उनके राजाओं को मुआवजा दिया जा सकता है।

परिषद् के प्रस्तावों में से कुछ तो विशेष रियासतों सम्बन्धी थे, और कुछ ऐसे थे जिनका सभी रियासतों से सम्बन्ध था। परिषद् ने आजाद और संयुक्त भारतवर्ष के अंग के रूप में रियासतों में पूर्ण उत्तरदायी शासन के अपने ध्येय को दोहराया, रियासतों से भारतीय सङ्घ में सम्मिलित होने तथा विधान-सभा में यथेष्ट सहयोग प्रदान करने का अनुरोध किया, और विविध प्रस्तुत समस्याओं पर व्यापक दृष्टि से विचार किया।

राष्ट्र-नायक श्री जवाहरलाल नेहरू ने लोक-परिषद् को अच्छा व्यावहारिक नेतृत्व प्रदान किया। आपने अपने भाषणों से जनता के सामने वर्तमान परिस्थिति का स्पष्ट चित्र उपस्थित किया। इसी लिए रियासती जनता के प्रतिनिधियों ने नेहरू जी और उनके साथियों द्वारा नरेन्द्रमंडल से किए हुए विधान-सभा की सीटों के बँटवारे सम्बन्धी समझौते को असंतोषजनक समझते हुए भी स्वीकार कर लिया। उस समझौते के अनुसार राजा और प्रजा में प्रतिनिधियों मोटे तौर से ५०—५० प्रतिशत बँटवारा करने का विचार किया गया था। परिषद् में श्री आचार्य नरेन्द्रदेव जी आदि के भाषणों से

समाजवादी विचार-धारा भी बनी रही। संक्षेप में यह अधिवेशन रियासती जनता की प्रगति का अच्छा चित्र था।

हमें वहाँ जो बातें विशेष खटकीं, उनमें से एक तो दर्शकों की अनुशासन की कमी थी। हम बहुत समय से जनता को सत्ता सौंपे जाने की बात कहते आ रहे हैं, ऐसी दशा में यह निहायत जरूरी है कि सर्वसाधारण के व्यवहार में सुव्यवस्था का परिचय मिले। दूसरी-असंतोपजनक बात यह थी कि हमारे अधिकांश नेता और व्याख्यान दाता अभी तक अंग्रेजी भाषा की गुलामी से अपना पिंड नहीं छुड़ा सके हैं। सभी प्रस्तावों का मसविदा अंग्रेजी में बना और प्रस्तावों पर कुछ भाषण या संशोधन भी अंग्रेजी में ही हुए। यह ठीक है कि श्रोताओं की आपत्ति होने पर हिन्दुस्तानी को स्थान दिया गया, पर वह भी अधूरे ही रूप में। हमने 'अंग्रेजो! भारत छोड़ो! का नारा लगाया। स्वयं अंग्रेजों ने यहाँ से जाने की अवधि निश्चित कर दी, और. वे यहाँ से जा रहे हैं। पर अंग्रेजी की यह दासता हम कब छोड़ेंगे और जनता का उत्थान जनता की भाषा में कब करेंगे?

अस्तु, गवालियर अधिवेशन ने रियासती जनता को स्पष्ट आदेश दिया कि वह अपनी माँगों और अधिकारों की प्राप्ति के लिए अपने संगठन बनावें और रियासतों के लिए विधान-परिषद बुलाने और इस कार्य के लिए अवधि नियत करने की माँग पेश करें। इस आदेश से रियासती जनता क कुछ कर गुजरने का आदेश दिया गया और संघर्ष के लिए उतावले नौजवानों को अगर वह चाहें तो संघर्ष छेड़ने का भी इशारा किया गया। इस प्रकार ग्वालियर-अधिवेशन अपनी शान-शौकत के अलावा राजनीतिक दृष्टि से भी खूब सफल रहा।

विशेष वक्तव्य—पिछले पृष्ठों में अ० भा० दे० रा० लोकपरिषद के बीस वर्षों के कार्यों का परिचय दिया गया है। परिषद ने त्याग

और कष्ट-सहन का और अपने उद्देश की पूर्ति में लगे रहने का प्रशंसनीय परिचय दिया है। सेवाव्रती कार्यकर्ताओं ने इसका बल बढ़ाया है, और यह आज दिन सारे भारतवर्ष के नहीं तो भारतीय संघ के सब देशी राज्यों की जनता को एक सूत्र में बांधनेवाली तथा उनका पथ-प्रदर्शन करने वाली संस्था है। इस प्रकार इसका उत्तर-दायित्व भी बहुत है। इसे रियासती जनता की विविध मांगों की पूर्ति करके और उसे शेष भारत की जनता के समान उन्नत करके रियासतों को भारतीय संघ की योग्य इकाई बनाना है। आशा है, लोक परिषद इस महान कार्य को करने में सफल होगी।



तेरहवाँ अध्याय

कांग्रेस और देशी राज्य

अब हमें यह विचार करना है कि कांग्रेस की देशी राज्यों सम्बन्धी क्या नीति रही है। उसने रियासती जनता की जागृति में कहां तक सहायता की है। इस विषय में यह याद रखना है कि यद्यपि कांग्रेस की स्थापना सन् १८८५ में हो गई थी और उसका उद्देश्य तभी से सम्पूर्ण भारतवर्ष की स्वाधीनता रहा, उसने रियासती जनता के बारे में खासकर सन् १९२० ई० से विचार किया। इसी समय से कांग्रेस में म० गांधी का नेतृत्व होने लगा। इस प्रकार कांग्रेस के निर्णयों में स्पष्ट या गौण रूप से म० गांधी के विचारों का विशेष प्रभाव रहा है। इस लिए यह आवश्यक है कि पहले यह जान लिया जाय कि म० गांधी के, देशी राज्यों के विषय में, खास विचार क्या रहे हैं।

म० गांधी और देशी राज्य—म० गांधी की, रियासती आन्दोलनों से, उनके प्रारम्भ से ही सहानुभूति रही है। बिजौलिया-सत्याग्रह में आपने जो रुचि दिखाई, उसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। आपकी रियासतों सम्बन्धी नीति यह रही कि यथा-सम्भव राजाओं के साथ सहयोग करते हुए खादी, हरिजन सेवा आदि रचनात्मक कार्यों द्वारा रियासती जनता की सेवा होती रहे। हाँ, इसका अर्थ यह नहीं था कि रियासतों में, अनिवार्य होने पर भी जन-आन्दोलन न किया जाय।

"गांधीजी की रियासती कार्य प्रणाली का निश्चित स्वरूप सन् १६२६ में सामने आया। उस वक्त यह तजवीज हुई थी कि राजा-प्रजा-सेवक समिति नामक एक अखिल भारतीय संस्था कायम की जाय, जो गांधीजी की सलाह से काम करे; स्व० जमनालाल जी बजाज उसके अध्यक्ष हों, स्व० मणिलालजी कोठारी उपाध्यक्ष हों, मुझे (श्री चौधरी जी को) उसका मन्त्री बनाया जाय और 'यंग राजस्थान' और 'तरुण राजस्थान' को द्विभाषी पत्र बनाकर समिति का मुखपत्र कर दिया जाय और समिति का कार्यालय साबरमती आश्रम में रहे। दुर्भाग्यवश सेठजी व कोठारीजी के मतभेद के कारण वह संस्था विचार में ही रह गई। उसकी कुछ बुनियादी बातें ये थीं :—(१) राज्यों में बृटिश सरकार का हस्तक्षेप नहीं कराया जायगा, (२) एक राज्य में बैठ कर दूसरे राज्य की टीका न की जायगी (३) राजा की सम्मति से प्रजा की शिकायतें दूर कराने की कोशिश की जायगी। कहना न होगा कि राजाओं को निश्चिन्त करके उनके मेल से प्रजा की सेवा करने का यह एक ठोस प्रयत्न था। अवश्य ही सत्याग्रह का अधिकार तो रखा ही गया था।"*

---

*श्री रामनारायण जी चौधरी के एक लेख से।

म० गांधी देशी राज्यों और उनकी जनता को समय-समय पर आवश्यक परामर्श देते रहे हैं। सन् १९३१ में गांधी-इर्विन समझौते के अनुसार जब म० गांधी कांग्रेस की ओर से, भारतवर्ष के प्रतिनिधि के रूप में, गोलमेज़ कान्फ्रेंस में सम्मिलित होने के लिए लन्दन गए तो परिषद् ने उन्हें ही अपना प्रतिनिधि ठहराया। महात्मा जी ने राजाओं से अनुरोध किया कि वे जो कोई योजना बनावें, उसमें उन्हें अपने प्रजा-जनों को भी स्थान देना चाहिए। उन्होंने कहा कि यदि कोई जीवित शरीर को दो हिस्सों में बाँट सकता हो तो भारत को भी दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है। भारतवर्ष अति प्राचीन काल से एक देश रहा है और कोई कृत्रिम सीमा इसे विभाजित नहीं कर सकती। महात्मा जी ने राजाओं से जनता के मूल अधिकारों को स्वीकार करने की अपील की, चाहे फिर इन अधिकारों को देशी राज्यों की अदालतों में ही परखा जाय।

महात्मा जी की यह राय रही है कि देशी राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप न करने की, कांग्रेस की नीति बुद्धिमत्तापूर्ण और ठोस है; उनका विश्वास है कि भारत में हम जो सफलता प्राप्त करेंगे, उसका देशी राज्यों पर अवश्य असर पड़ेगा। उनका यह मत रहा है कि कांग्रेस देशीराज्यों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करे, इस कार्य के लिए रियासती जनता की स्वतन्त्र संस्थाएँ हों। हाँ, कांग्रेस-कार्यकर्ता अपनी व्यक्तिगत हैसियत से ऐसे आन्दोलन में भाग ले सकते हैं। महात्मा गांधी ने राजकोट आदि राज्यों के मामले में स्वयं भाग लिया और अनशन तक किया। जनवरी सन् १९३९ में उन्होंने हरिजन में लिखा था कि अगर जयपुर का प्रश्न उचित प्रकार से हल नहीं किया गया तो वह समस्त भारतवर्ष का प्रश्न बन जायगा। इस पर बहुत से आदमियों को बड़ा आश्चर्य हुआ था, इस सम्बन्ध में यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि जयपुर, राजकोट,

धेंकनाल आदि राज्यों में प्रजा की तकलीफों या मुसीबतों का कारण अंग्रेजी एजन्ट या रेजीडेन्ट थे।

म० गांधी राजाओं का समाप्त करने के पक्ष में नहीं हैं। तथापि उनका राजाओं को स्पष्ट उपदेश है कि प्रजा के ट्रस्टी, संरक्षक या सेवक बन कर रहें, तभी उनका अस्तित्व रहेगा।

कांग्रेस का विचार; आरम्भ में—म० गांधी के विचारों को कांग्रेस की देशी राज्यों सम्बन्धी नीति की पृष्ठ-भूमि कहा जा सकता है। आरम्भ में तो कांग्रेस का कार्यक्षेत्र ब्रिटिश भारत तक ही सीमित था। देशी राज्यों की स्पष्ट चर्चा उसने सन् १८९४ में की, जब कि मैसूर के महाराज के देहान्त पर शोक, और उनके राज-परिवार से सहानुभूति प्रकट की गई तथा उनके वैधानिक शासन की प्रशंसा की गई। इसके दो वर्ष बाद अपने बारहवें अधिवेशन में कांग्रेस ने एक प्रस्ताव में यह माँग की कि जब तक किसी ऐसे सार्वजनिक कमीशन द्वारा, जिस पर सरकार एवं राजाओं का विश्वास हो, जाँच न हो जाँय, किसी राजा को कुशासन के आधार पर गद्दी से न उतारा जाय। यह स्पष्ट ही है कि उक्त दोनों प्रस्ताव राजाओं के सम्बन्ध में है जनता के सम्बन्ध में नहीं।

राजाओं से प्रतिनिधि-शासन की अपील—योरोपीय महायुद्ध (१९१४-१८) के समय देश में चहुँ ओर जागृति के भावों का उदय हुआ। देशी राज्यों में भी कार्यकर्त्ता जनता के कष्टों को दूर करने का उपाय सोचने लगे। श्री० विजयसिंहजी 'पथिक' आदि ने मेवाड़ में क्रान्ति की ज्योति जगा दी। कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन (१९२०) में राजस्थानी बन्धुओं की पुकार पहुँची। कांग्रेस इसकी उपेक्षा न कर सकी। उसने एक प्रस्ताव में राजाओं से अपील की कि वे अपनी-अपनी प्रजा को तुरन्त प्रतिनिधि-शासन प्रदान करें। रियासतों

जनता कांग्रेस के कार्यों में भाग ले सके, इसके लिए यह निश्चय किया गया कि भारतीय कांग्रेस कमेटी को वह अधिकार हो कि समय-समय पर विशेष-विशेष देशी राज्यों को विशेष-विशेष प्रान्तों की सीमा में कर दे, और प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी को अधिकार हो कि भारतीय कांग्रेस कमेटी ने जिस राज्य को उसकी सीमा में कर दिया हो, उसे अपने प्रान्त के किसी जिले की सीमा में कर दे। कांग्रेस ने इस समय देशी राज्यों के भीतरी मामलों में अ-हस्तक्षेप नीति रखी।

उतरदायी शासन की मांग—सन् १९२७ ई० में कांग्रेस का अधिवेशन मदरास में हुआ। इसमें शाही कमीशन (साइमन कमीशन) और हिन्दू-मुसलिम समस्या के विषय खासतौर से विचाराधीन थे। परन्तु इस समय रियासतों का जन-आन्दोलन भी काफी बढ़ा हुआ था; विविध स्थानीय लोक-संस्थाएँ स्थापित होने के अतिरिक्त अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद नाम की एक केन्द्रीय संस्था का भी सङ्गठन हो चुका था। इससे रियासती जनता की जागृति में खूब प्रगति हुई थी। लोकपरिषद् का डेप्यूटेशन कांग्रेस-अध्यक्ष से मिला। अब से कांग्रेस देशी राज्यों के सम्बन्ध में विशेष अनुराग रखने लगी। इस वर्ष उसने यह प्रस्ताव स्वीकार किया—'इस कांग्रेस की यह जोरदार राय है कि देशी राज्यों की जनता तथा उनके शासक दोनों के हित की दृष्टि से राजाओं को अपने-अपने राज्य में शीघ्र ही प्रतिनिधि-संस्थाएँ तथा उत्तरदायी शासन स्थापित करना चाहिए।'

सहायता का आश्वासन—अगले वर्ष (सन् १९२८) पंडित मोतीलाल नेहरू के सभापतित्व में होनेवाले कांग्रेस के कलकत्ता-अधिवेशन में यह प्रस्ताव स्वीकार हुआ—"कांग्रेस राजाओं से अनुरोध करती है कि वे अपने राज्यों में प्रतिनिधि-संस्थाओं के आधार पर उत्तरदायी शासन प्रचलित करें, और तुरन्त ऐसी घोषणाएँ करें या

ऐसे कानून बनाएँ जिनमें सभा-समिति बनाने, भाषण करने, और लिखने की स्वतन्त्रता तथा जान-माल की रक्षा और इसी प्रकार के अन्य मूल अधिकारों की बात हो। यह कांग्रेस रियासती जनता को यह विश्वास दिलाती है कि देशी राज्यों में उत्तरदाइत्व-पूर्ण शासन स्थापित करने के लिए उनके उचित और शान्तिमय प्रयत्न में उसकी सहानुभूति तथा सहायता रहेगी।"

रियासती जनता को सहायता का आश्वासन दे देने पर कांग्रेस को अपने विधान में कुछ परिवर्तन करना आवश्यक प्रतीत हुआ। निदान, पं० जवाहरलालजी नेहरू के प्रयत्न और प्रस्ताव से कांग्रेस-विधान में उक्त आशय का संशोधन किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि देशी राज्यों में कांग्रेस-संस्थाएँ कायम होने लगीं और जागृति के चिन्ह दिखाई देने लगे। मैसूर, हैदराबाद, भोपाल, ग्वालियर, इन्दौर, त्रावनकोर, रीवा और नागोद आदि देशी रियासतों में कांग्रेस की शाखाएं स्थापित हो गईं। मैसूर में तो कांग्रेस की शाखाओं का जाल-सा बिछ गया।

नीति स्पष्ट करने की मांग—सन् १९३० और १९३२ में कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार का संघर्ष हुआ। सत्याग्रह अन्दोलन बड़े जोर से चला। उसमें रियासती जनता ने भी खूब भाग लिया। किसी-किसी राज्य से तो हजारों आदमी गिरफ़्तार होकर जेल गए। सत्याग्रह-संग्राम के बाद यह मांग बहुत जोर से होने लगी कि कांग्रेस को अपनी देशी राज्यों सम्बन्धी नीति साफ-साफ घोषित करनी चाहिए।

अप्रेल सन् १९३५ में कांग्रेस महासमिति ने जबलपुर की बैठक में रियासती जनता की आजादी की लड़ाई का समर्थन किया और यह कहा कि रियासती जनता के हितों के साथ उसका वैसा ही

सम्बन्ध है, जैसा ब्रिटिश भारत की जनता के हितों से। तथापि रियासती जनता की ओर से कांग्रेस-नीति के अधिक स्पष्टीकरण की माँग रही। अक्तूबर में कार्यसमिति ने एक सविस्तर वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसमें कहा कि 'कांग्रेस अपनी उसी नीति पर दृढ़ है, और वह समझती है कि यह स्वयं राजाओं के ही भले के लिए है कि वे शीघ्रातिशीघ्र अपने राज्यों में पूर्ण उत्तरदाई शासन-प्रणाली कायम करदें, जिससे उनकी प्रजा को नागरिकता के पूर्ण अधिकार प्राप्त हों। पर यह बात समझ लेनी चाहिए कि इस प्रकार का संघर्ष जारी रखने का बोझ स्वयं देशी राज्यों की प्रजा पर है। कांग्रेस राज्यों पर नैतिक और मैत्रीपूर्ण प्रभाव डाल सकती है और, जहाँ भी सम्भव हो, डालने पर बाध्य है। मौजूदा परिस्थिति में और किसी प्रकार का सामर्थ्य कांग्रेस को प्राप्त नहीं है, यद्यपि भौगोलिक और ऐतिहासिक दृष्टि से सारे भारतवासी, चाहे वे अंग्रेजों के अधीन हों, चाहे देशी राजाओं के, और चाहे किसी दूसरी सत्ता के, एक हैं और उन्हें अलग नहीं किया जा सकता।'

अधिक प्रगतिशील सज्जन कांग्रेस की इस नीति से सन्तुष्ट न थे, वे राज्यों में उसके हस्तक्षेप को सामयिक और आवश्यक मानते थे, तथापि कांग्रेस उस हद तक बढ़ने को तैयार न हुई। सन् १९३६ में यही बात रही, परन्तु पीछे अक्तूबर १९३७ में कांग्रेस महासमिति ने मैसूर राज्य के दमन के विरोध में प्रस्ताव पास किया और देशी राज्यों और ब्रिटिश भारत के निवासियों को उनके संग्राम में पूर्ण सहयोग और प्रोत्साहन देने की अपील की। इस प्रस्ताव को म० गांधी ने कांग्रेस-मनोवृत्ति और अ-हस्तक्षेप नीति के विरुद्ध बतलाया। अब फिर बहुत से आदमियों का असन्तोष बढ़ा; और इस बात की आवश्यकता अनुभव होने लगी कि कांग्रेस देशी राज्यों के सम्बन्ध में अपनी नीति पूर्णतया स्पष्ट करे।

हरिपुरा कांग्रेस का प्रस्ताव और उसके बाद— फल स्वरूप हरिपुरा कांग्रेस (फरवरी १६३८) में इस विषय पर खूब वाद-विवाद हुआ। अन्त में एक विस्तृत प्रस्ताव इस आशय का स्वीकृत हुआ कि 'देशी राज्य भारत के ही अंग हैं, उनमें भी पूरी जिम्मेदार सरकार चाहिए। इस उद्देश्य को पूरा करना कांग्रेस का अधिकार है। यह मानते हुए भी मौजूदा हालत में कांग्रेस के, राज्यों में काम करने में बहुत सी कठिनाइयाँ हैं। कांग्रेस वहाँ राष्ट्रीय झंडे का अपमान नहीं सह सकती। वह प्रजा द्वारा उठाए गए प्रत्येक अहिंसात्मक आन्दोलन का स्वागत करेगी। व्यक्तिगत रूप से कोई भी कांग्रेसी कार्यकर्ता देशी राज्यों के आन्दोलन में भाग ले सकता है, कांग्रेस के नाम से कोई आन्दोलन नहीं उठाया जा सकता। इसलिए देशी राज्यों में पृथक् सङ्गठन होने चाहिएँ।'

यह प्रस्ताव रियासती कार्यकर्ताओं के लिए कुछ अंश में असंतोषजनक था, तथापि इससे उनमें स्वावलम्बन का भाव आया। कितने ही राज्यों में स्टेट-कांग्रेस या प्रजामंडलों की ओर से जागृति और जन-आन्दोलन आरम्भ हुआ। कितने ही प्रमुख कांग्रेसी कार्यकर्ताओं ने इसमें महत्वपूर्ण भाग लिया। पर अधिकारियों ने दमन भी खूब किया, और कई जगह ब्रिटिश सरकार की फौज और पुलिस की भी सहायता ली। इस पर कांग्रेस कार्यसमिति ने वर्धा की, दिसम्बर १६३८ की बैठक के प्रस्ताव में ऐसे शासकों की निन्दा करते हुए एलान किया कि 'अगर उत्तरदाई शासन की माँग के लिए चलाए गए अपनी प्रजा के आन्दोलन को ब्रिटिश सरकार की पुलिस या फौज की सहायता से दबाने का यत्न किया जायगा तो कांग्रेस को पूरा अधिकार होगा कि वह पुलिस और फौज द्वारा किए जाने वाले अनियंत्रित दमन से जनता की रक्षा करे।'

औंध और सांगली आदि कुछ राज्यों ने समय की गति पहचानने का परिचय दिया। परन्तु अधिकतर राज्यों में जन-आन्दोलन की वृद्धि के साथ दमन भी चरम सीमा पर पहुँचा। मार्च १६३६ में त्रिपुरी कांग्रेस ने अपने प्रस्ताव में देशी राज्यों की अद्भुत जागृति के स्वागत, प्रजा की उत्तरदाई शासन तथा नागरिक अधिकारों की माँग के समर्थन, राजाओं की दमन-नीति के विरोध, आदि के बाद कहा कि 'हरिपुरा कांग्रेस की नीति देशी राज्यों की प्रजा के हित में नियत की गई थी, ताकि स्वयं उसमें आत्मविश्वास और शक्ति उत्पन्न हो सके। परिस्थितियों के कारण कांग्रेस ने अपने ऊपर कुछ पाबन्दियाँ लगाई थीं, लेकिन उन्हें कभी अनिवार्य बन्धन नहीं माना गया।'

महायुद्ध और देशी राज्य--सन् १६३६ में योरपीय महायुद्ध छिड़ गया, और ब्रिटिश सरकार ने भारतवर्ष को उसकी इच्छा के विरुद्ध महायुद्ध में शामिल कर दिया। इससे जनता को रोजमर्रा की साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नाना प्रकार के सङ्कटों का सामना करना पड़ा। सन १६४०-४१ में कांग्रेस ने व्यक्तिगत सत्याग्रह चलाया और सन १६४२ में उसने 'अंगरेजो! भारत छोड़ो!' प्रस्ताव पास कर दिया। इसके बाद देश भर में क्रान्तिकारी आन्दोलन हुआ, और सन १६४५ तक सरकार का दमन-यंत्र खूब जोर से चला। रियासती जनता ने भी अनेक स्थानों में राजाओं से, अंगरेजों की सत्ता से मुक्त होने का, अनुरोध किया, और फल-स्वरूप वह घोर दमन का शिकार बनी। इससे रियासती समस्याओं की ओर भारतीय जनता और कांग्रेस का ध्यान और भी अधिक आकर्षित हुआ।

संघ-विधान और देशी राज्य—यहाँ इस बात का विचार और कर लें कि भारतीय सङ्घ में कांग्रेस देशी राज्यों का क्या स्थान चाहती रही है। सन १६३५ ई० के विधान के अनुसार ब्रिटिश सरकार

ने जिस सङ्घ की स्थापना का निश्चय किया था, उसके व्यवस्थापक मंडल में देशी राज्यों की जनता की उपेक्षा करके राजाओं के ही प्रतिनिधि रखने की योजना की थी। उस विधान को कांग्रेस ने अस्वीकार किया, और वह अन्ततः स्थगित ही हो गया। सन १९४२ ई० में कांग्रेस ने क्रिप्स योजना* को अस्वीकार किया; उसकी कार्यसमिति के वक्तव्य का इस विषय सम्बन्धी कुछ अंश इस प्रकार था—'इस योजना में देशी राज्यों के नौ करोड़ लोगों की सर्वथा उपेक्षा की गई है और उन्हें जड़ पदार्थों की तरह उनके शासकों की मर्ज़ी पर छोड़ दिया गया है, जो प्रजातन्त्र और आत्म-निर्णय दोनों के विरुद्ध है।'

सन १९४६ में ब्रिटिश मन्त्रिमिशन यहाँ आया और भारतवर्ष के भावी सङ्घशासन का विचार किया गया। उसके अनुसार विधान-सभा बनाई गई। इसमें यह तय कर लिया गया कि रियासतों की ओर से लिए जाने वाले सदस्य केवल राजाओं के ही प्रतिनिधि न हों; कम से कम आधे सदस्य जनता के प्रतिनिधि हों।

कांग्रेस और लोक-परिषद—म० गांधी जो सन् १९१९ से कांग्रेस के प्रमुख सूत्रधार रहे हैं, देशी राज्यों और उनकी जनता को समय-समय पर आवश्यक परामर्श देते रहे हैं। श्री जवाहर-लाल नेहरू, डा० पट्टाभि सीतारामैया, और सरदार पटेल आदि कांग्रेस-नेता देशी राज्यों के विषय में यथेष्ट मार्ग-प्रदर्शन करते रहे हैं। श्री नेहरू जी सन् १९३९ से अप्रेल १९४७ तक देशी राज्य लोक-परिषद के सभापति रहे, और ये ही सन् १९४६ में कांग्रेस के सभापति चुने गए। इस प्रकार ये एक साथ दोनों संस्थाओं के अध्यक्ष हो गए। इसका उल्लेख करते हुए डाक्टर पट्टाभि सीतारामैय्या ने एक लेख

---

*इसके विषय में पिछले अध्याय में लिखा जा चुका है।

ने कहा था—'इस प्रकार परिषद और कांग्रेस की दो गाड़ियाँ जो शुरू में अलग-अलग रास्तों पर चल रही थीं, बाद में साथ-साथ चलने लगी और अन्त में दोनों एक गाड़ी में बदल गई, और एक ही लकीर पर एक ही दिशा में और एक ही चालक के अधीन चलने लगीं। यही कारण है कि कांग्रेस ने गत जुलाई (१९४९) में कशमीर के मामले में हस्तक्षेप किया और बाद में हैदराबाद के बारे में कड़ा प्रस्ताव पास किया। कशमीर और हैदराबाद के मामलों में यह हस्तक्षेप, और रियासती जनता के ध्येय के साथ कांग्रेस की एकता, केवल लाक्षणिक चिह्न ही नहीं है, बल्कि ठोस हैं। इस प्रकार कांग्रेस और देशी राज्यों की जनता का एक ध्येय, एक झंडा और एक नेता है।*

विशेष वक्तव्य—कांग्रेस के कार्यक्रम पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसके सूत्रधार कभी तो ऐसे व्यक्ति रहे जो देशी राज्यों के सम्बन्ध में उसकी गति बहुत तेज़ होने के पक्ष में थे, और कभी ऐसे भी व्यक्ति रहे जो उसे मन्द गति वाली ही रखना चाहते थे। इसलिए कभी कांग्रेस एकदम काफी आगे बढ़ी हुई मालूम होती है, तो कभी वह कुछ पीछे हटी भी जान पड़ती है। तो भी कुल मिला कर वह आगे की ओर ही बढ़ी है। कांग्रेस का उद्देश्य रियासतों सहित सारे भारतवर्ष की एकसी, एकरस, समान और सर्वांगीन उन्नति करना है।

---

* 'हिन्दुस्तान'—कांग्रेस अंक, १९४६

पन्द्रहवाँ अध्याय

विविध विचार-धाराएँ

रियासती जन-जागृति के क्रम-विकास को अच्छी तरह समझने के लिए यह जान लेना आवश्यक है कि रियासती आन्दोलकों या नेताओं द्वारा समय-समय पर कैसी कार्यपद्धति अमल में लाई गई, अथवा उनकी कैसी-कैसी विचार-धाराएँ रहीं।

प्रारम्भिक स्थिति; दलों का अभाव—इस शताब्दी की दूसरी दशाब्दी में जब राजपूताना मध्यभारत सभा और राजस्थान सेवा-सङ्घ ने कार्य आरम्भ किया तो वह रियासती जन-जागृति का प्रारम्भ था। उस समय काम करने में बहुत संकट थे, इने-गिने सज्जन ही सेवा-क्षेत्र में उतरे थे, उन्हें जैसे भी बन आवे काम करना था। हरेक कार्यकर्ता की दूसरे कार्यकर्ता से सहानुभूति और सहयोग होना स्वाभाविक और अनिवार्य था। धीरे-धीरे जागृति बढ़ी, काम करने का कुछ रास्ता दिखाई देने लगा, काम करनेवालों को कुछ प्रतिष्ठा या सम्मान मिलने की आशा होने लगी, सर्वसाधारण में उनका प्रभाव बढ़ने लगा। अब कार्यकर्ताओं में अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखते हुए अपने काम का ढङ्ग दूसरे कार्यकर्ताओं से कुछ अलग तरह का रखने की प्रवृत्ति होने लगी, जिससे उन्हें विशेष महत्व, पद या यश मिले। यहाँ से मत-भेदों तथा अलग-अलग कार्यपद्धतियों या विचार-धाराओं की सृष्टि आरम्भ हुई। ये बातें सभी देशों के जन-आन्दोलनों में होती हैं। भारतवर्ष के देशी राज्यों के विषय में यह अनुभव कुछ विशेष रूप लगभग सन् १९२० से होने लगा। धीरे-धीरे एक कार्यपद्धति

दूसरी कार्यपद्धति से अधिकाधिक पृथक् हो गई, और एक प्रकार के कार्य करनेवाले दूसरे कार्यकर्ताओं की आलोचना और उन पर आक्षेप तक करने लग गए।

दस वर्ष के भीतर; पांच दलों का प्रादुर्भाव—जन-जागृति का कार्य आरम्भ होने के दस वर्ष के भीतर रियासतों के सार्वजनिक जीवन में कौन-कौन सी विचार-धाराएँ अलग-अलग मालूम होने लग गईं, इसका अप्रेल १९२९ के 'विशाल भारत' के सम्पादकीय लेख में अच्छा विवेचन किया गया था। उसकी मुख्य-मुख्य बातों का ज्ञान, जन-जागृति का विचार करनेवालों के लिए बहुत उपयोगी होने से, यहाँ संक्षेप में दिया जाता है। उपर्युक्त लेख में बताया गया था कि इस समय (सन् १९२९) पाँच दल अपनी-अपनी स्थिति और वृद्धि के लिए प्रयत्न करते दिखाई देते हैं—

१—वह, जो क्रियात्मक राजनीति से अलग रह कर काम करना अपना ध्येय बताता है, और जिसमें खादी दल मुख्य है।

२—वह, जो जहाँ सम्भव हो, वहाँ राज्यों से बिगाड़ न करके और जहाँ विपरीत स्थिति हो अथवा राजनीतिक कार्य के लिए अवकाश न मिले, वहाँ अपने अन्य शान्त उद्योगों द्वारा काम करना चाहता है। यह प्रजा के राजनीतिक संगठन को अधिक महत्व देता है। इसमें श्री पथिक का दल मुख्य है।

३—वह, जो राज्यों की अनुकूलता या प्रतिकूलता की चिन्ता न कर अपने निश्चित कार्यक्रम को व्यावहारिक रूप देना चाहता है, और उसके सम्बन्ध में कोई समझौता करना नहीं चाहता। वह राज्यों को कायम रखने के सिद्धान्त में विश्वास नहीं करता।

४—वह, जो राज्यों से सर्वथा निराश हो चुका है, इसलिए केवल प्रबल लोकमत और ब्रिटिश सरकार के हस्तक्षेप द्वारा ही शासन में सुधार करना चाहता है।

पाँचवाँ दल स्वार्थी और खुशामदी लोगों का है। इसका ध्येय राज्यों के सम्बन्ध की प्रगतियों को असफल बनाना है। इनके संगठन का आधार कोई सैद्धान्तिक मतभेद नहीं होता।

इन दलों के कार्य और विचार—इन दलों में से पाँचवें दल के विषय में विचार करने की कुछ आवश्यकता नहीं। पूर्वोक्त चार दलों के अपने-अपने कार्यक्रम सम्बन्धी विचार इस प्रकार हैं :—

पहले दल के कार्यकर्ता खादी, अछूतोद्धार, भक्ति और लोकसेवा का क्रियात्मक रूप में, और साहित्य तथा पत्रों द्वारा राजनीति का शिक्षात्मक रूप में, प्रचार करना आवश्यक मानते हैं। वे समाज और सार्वजनिक कार्यकर्ताओं की आलोचना विशेष रूप से और राज्यों या अधिकारियों की कम और वह भी मधुर शैली से करते हैं। राज्यों में सरकार के हस्तक्षेप आदि प्रश्नों पर वे प्रायः तटस्थ रहते हैं, और अपने कामों की सफलता के लिए राजाओं और ब्रिटिश अधिकारियों का सहयोग पाने का प्रयत्न करते हैं। क्रियात्मक राजनीतिक आन्दोलन उनका मुख्य लक्ष्य नहीं होता; यदि कभी इसे हाथ में लेते हैं तो राजाओं को सहमत और प्रसन्न करके।

दूसरे दल के कार्यकर्त्ता राजनीतिक आन्दोलनों और सिद्धान्तों के आधार पर राज्यों और प्रजा का संगठन करना आवश्यक समझते हैं। ये राज्यों में ब्रिटिश हस्तक्षेप के विरोधी होते हैं। यदि राज्य उन्हें कार्य न करने दें या प्रजा के कष्टों का उचित प्रतिकार न करें तो उनसे शान्त और वैध संग्राम भी करते हैं। इनके विचार से शिक्षात्मक, राजनीतिक कार्य केवल पढ़े लिखे वर्ग तक थोड़े ही अंश में, पहुँचता है। यह वर्ग अधिकांश राज्यों में नगण्य, और प्रायः सारा राज कर्मचारी और व्यापारी होने के कारण, अत्यन्त भीरु और स्वयं अत्याचार करनेवाला होता है। फिर, शिक्षात्मक राजनीतिक प्रचार से केवल सैद्धान्तिक ज्ञान, और वह भी बहुत देर से, होता है। इसके विपरीत क्रियात्मक

राजनीतिक आन्दोलन से सर्वसाधारण तक तो राजनीतिक ज्ञान बहुत जल्दी पहुँचता ही है, राज्य और प्रजा दोनों को व्यावहारिक राजनीति और उसकी कठिनाइयों का भी अनुभव हो जाता है

तीसरे दल के लोग यद्यपि नगण्य से हैं, पर हैं बहुत उग्र विचार वाले। ये एकतंत्री राज्यों के अस्तित्व के ही विरुद्ध हैं। इनके विचारानुसार समाजवाद ही संसार और राज्यों की जनता को सच्ची शान्ति दे सकता है। इस दल के लोग अपने सिद्धान्तों का, बिना देश-काल-पात्रादि का विचार किए, स्पष्ट रूप में प्रचार करते हैं। अहिंसा को ये नीति के रूप में मानते हैं।

चौथे दल के कार्यकर्ता राज्यों को मिटाना तो नहीं चाहते, पर उनके वर्तमान रूप को देश के लिए खतरनाक समझते हैं। इसलिए ये उन्हें तोड़फोड़कर नियंत्रित या वैधानिक वंशानुगत शासकों द्वारा शासित प्रान्तों अथवा ऐसे ही, किसी दूसरे रूप में ले आना चाहते हैं। इस कार्य को भी वे भारत-सरकार से मिलकर ही करना चाहते हैं। इस दल में वे कार्यकर्ता भी मिल गए हैं, जो राजाओं को, उनकी मूर्खता के कारण, सुधरने के अयोग्य मान चुके हैं। ये लाग वैध प्रयत्नों में अधिक विश्वास करते हैं।

पहले कहा जा चुका है कि इन चार दलों में से तीसरा नगण्य सा है। शेष तीन थोड़े बहुत संगठित हैं। सभी दल काम करनेवाले हैं, और देश-प्रेम की भावना से प्रेरित हैं। खासकर राजपूताना और मध्यभारत की जागृति का श्रेय अनेक अंशों में दूसरे और चोथे दल को ही है। खादी दल भी कई दिशाओं में बहुत प्रशंसनीय कार्य कर रहा है। उसका साहित्य-प्रचार सम्बन्धी कार्य तो बहुत ही उपयोगी है।

एक दूसरे की आलोचना और आक्षेप—दुर्भाग्यवश जान या अनजान में सभी दलों में एक-दूसरे की आलोचना

करने अथवा एक दूसरे के विरुद्ध प्रचार करने की भावना बढ़ गई है, इससे उनका बहुत सा समय और शक्ति नष्ट हो रही है। मिसाल के तौर पर खादी दल वाले कहते हैं कि दूसरे दलों के कार्यकर्ताओं में सत्यनिष्ठा नहीं है। वे चरित्रहीन और तिकड़मबाज है। हम बल का प्रयोग करके राजाओं या जागीरदारों से काम नहीं लेते, हमें तो उनसे मिलकर, उनकी स्वीकृति से ही काम करना है। दूसरे दल उनकी बुराई ही बुराई प्रकाश में लाते है। हम उनकी बुराई और भलाई दोनों को प्रकाश में लाते हैं। दूसरे दलों के प्रयत्नों से जनता को कोई लाभ नहीं पहुँचता। इस (खादी) दल के कुछ लोगों का यह भी मत है कि पहले भक्ति, आध्यात्मिकता और श्रद्धा का प्रचार करना चाहिए, राजनीतिक कार्य से देश की हानि होती है।

दूसरे दल के आक्षेप कुछ इस प्रकार हैं। धार्मिक दल वालों के प्रचार से लोगों में पुरानी रूढ़ियां मजबूत होती हैं, सुधारक मनोवृति बढ़ने में बाधा उपस्थित होती है। खादी वाले व्यापार करते हैं, ये खादी की उत्पत्ति के लिए राज्य में पैसा लगाते है। ये राजाओं को असन्तुष्ट नहीं कर सकते, अत्याचारी राजा या जागीरदार हजार दो हजार की खादी खरीद कर इनकी प्रशंसा का अधिकारी हो जाता है। इनकी आड़ लेकर राजा दूसरे दलों का दमन करते हैं। जिन राज्यों के कार्यकर्ताओं ने अपने कामों में इनको साथ न लेने की बुद्धिमानी की है, वे तो बचे हुए हैं, किन्तु काठियावाड़-परिषद आदि संस्थाएँ तो यह गलती करके अपना राजनीतिक रूप ही खो बैठी हैं। फिर, ये दल क्रियात्मक राजनीति से अलग भी नहीं रहते। द्राविडी प्राणायाम की नीति से वे प्रत्येक आन्दोलन को अपने हाथ में लेने की कोशिश करते है। इस दल में कई पूँजीवादी आ घुसे हैं। वे म० गांधी के प्रभाव का दुरुपयोग कर सारा काम अपनी शैली से कर रहे हैं। दूसरे दलों को हानि पहुँचा कर भी उनका श्रेय खुद ले लेते हैं। मिसाल के तौर

पर ये कहते हैं कि हमारे काम शुरू करने के पहले त्रिजोलिया में एक भी चरखा न चलता था। ये पूँजीपतियों का समर्थन करते रहते हैं, और राजनीतिक चुनाव आदि में उनकी सहायता तथा सर्वसाधारण की उपेक्षा या विरोध तक करते हैं।

तीसरे दल का आक्षेप होता है:—ये सब दल पूँजीवादियों के हैं। ये मौजूदा राज्यों और सरकार की सत्ता सिर्फ अपने दल के हाथ में कर लेना चाहते है। इनके शान्ति और धर्मवाद ने लोगों को कायर बना दिया है। ईश्वर और राजाओं की छत्रछाया में काम करने की नीति पर चलाई हुई प्रगतियाँ हमेशा जनता को गुलामी की ओर ले जाती हैं। यही फल इन दलों के काम का होगा। ये सब या तो ढोंगी हैं या पूँजीवादी। खादी आन्दोलन से एक दल विशेष पूँजीपति बन रहा है। मशीनों का उपयोग करके गरीबों को विशेष लाभ पहुँचाया जा सकता है। जो लोग इन दलों में काम करते हैं, वे जनता को धोखे में डाल रहे हैं।

[यह स्पष्ट है कि इन आक्षेपों में अत्युक्ति बहुत थी, पर सचाई का सर्वथा अभाव भी नहीं रहा। कार्यकर्ताओं को चाहिए कि दूसरों के दोषों को ढूँढने में न लगे रह कर, यथा-सम्भव दूसरे दल वालों से सहयोग करें। इसके अलावा हमें चाहिए, कि दूसरों की आलोचना या निन्दा से बुरा न मानते हुए, उस पर गम्भीरता से विचार करें, और उससे आत्म-सुधार की प्रेरणा प्राप्त करें।]

कांग्रेस की रियासती नीति सम्बन्धो विचार-धाराएँ—पहले बताया जा चुका है कि कांग्रेस रियासती जनता का विचार, विशेष तया सन् १९२० से, करने लगी। उसकी इस विषय की नीति स्पष्ट किए जाने का प्रश्न सन् १९३०-३१ में उपस्थित हुआ। उसके

कार्यकर्ताओं में विशेष रूप से दो विचार धाराएँ थी :—(१) अहस्तक्षेप नीति और (२) हस्तक्षेप नीति।

अहस्तक्षेप नीति के मूल में जो भावना काम कर रही थी, वह म० गांधी और श्री राजेन्द्र बाबू के विचारों से प्रकट हुई। वह इस प्रकार थी—

(क) राजा और उनकी प्रजा का स्वार्थ असल में एक ही है, उनमें संघर्ष उत्पन्न नहीं करना चाहिए।

(ख) भारतवर्ष को अंगरेजों की दासता से मुक्त करने में सारी शक्ति लगा देनी चाहिए, इसमें सफलता मिलने पर राजा लोग खुद ही सुधर जायँगे; अभी से उनका विरोध करके अंगरेजों का बल क्यों बढ़ाया जाय!

(ग) कांग्रेस के पास ऐसे साधन या शक्ति नहीं हैं कि वह देशी राज्यों के मामले प्रत्यक्ष रूप से अपने हाथ में ले। रियासतों में राष्ट्रीय झंडे का अपमान किया जाता है, कांग्रेस इसे सहन नहीं कर सकती, जब तक वह काफी समर्थ न हो, कांग्रेस को देशी राज्यों में हस्तक्षेप करना ठीक नहीं।

(घ) कांग्रेस तो सारे देश की संस्था है, सभी के लिए उसके द्वार खुले हैं। उसका ध्येय देश को स्वतंत्र करना है। वह किसी वर्ग-विशेष के विरुद्ध कैसे लड़ाई ठान सकती है!

यह था, कांग्रेस के दक्षिण पक्ष का तर्क और विचार-धारा। कांग्रेस का वाम पक्ष इससे संतुष्ट न था। फिर, समाजवादी दल कांग्रेस के भीतर भी प्रवेश कर गया था। इनके मत से कांग्रेस की अहस्तक्षेप नीति सम्बन्धी उपर्युक्त तर्क में कोई तत्व नहीं था—

(क) राजा और प्रजा का स्वार्थ एक होना केवल कल्पना या आदर्शवाद है। यों कहने को मनुष्य मात्र का स्वार्थ एक है, पर

व्यावहारिक जगत में वस्तुस्थिति को भुलाया नहीं जाना चाहिए, और अत्याचारियों और शोषकों का भरसक विरोध किया ही जाना चाहिए।

(ख) यह धारणा ठीक नहीं है कि अंगरेजों की दासता से मुक्त होने पर देश राजाओं के अत्याचारों से मुक्त हो जायगा। राजा लोग तो साम्राज्यवाद के प्रबल स्तम्भ हैं, इनकी शक्ति कम किए जाने पर साम्राज्यवाद से छुटकारा पाना और भी सरल हो जायगा। प्रजा संगठनों में इतना बल होना चाहिए कि राजाओं को देश का साथ देने पर विवश कर सकें।

(ग) कांग्रेस की असमर्थता की बात में भी कुछ दम नहीं। जो लोग राष्ट्रीय झंडे के सम्मान के लिए ब्रिटिश भारत में लाठियाँ और गोलियाँ खा चुके हैं, वे देशी राज्यों में भी अपनी दृढ़ता का परिचय दे सकते हैं। फिर, देशी राज्यों का सवाल हाथ में लेने से कांग्रेस की शक्ति और प्रभाव बढ़ने ही वाला है, कुछ घटनेवाला नहीं।

(घ) कांग्रेस देश की संस्था है, इसका अर्थ यह नहीं है कि उसे किसी वर्ग के लोकहित विरोधी या अनैतिक कार्य सहन करते रहना चाहिए। उस पर यहाँ की जनता को सभी कष्टों से रक्षा करने की जिम्मेदारी है, चाहे वे कष्ट विदेशियों द्वारा मिलें, और चाहे यहाँ वालों से ही मिलते हों।

वर्तमान विचार-धाराएँ—इस समय विचार-धाराएँ तो कई-एक प्रचलित है। पर उनमें से दो मुख्य हैं। एक विचार-धारा अ० भा० देशी राज्य लोक परिषद के इस आशय के प्रस्ताव से व्यक्त होती है कि भविष्य में प्रायः ऐसी ही रियासतें सङ्घ की इकाई बनें, जिनकी आबादी लगभग ५० लाख, और वार्षिक आय करीब तीन

करोड़ रुपये हो। इनके शासक प्रगतिशील उत्तरदाई शासन प्रबन्ध चलानेवाले हों। शेष सब राज्यों का उनके निकटवर्ती प्रान्तों में, अथवा कुछ खास दशाओं में दूसरी बड़ी रियासतों में मिला दिया जाय। लोक परिषद का सूत्र-संचालन कुछ समय से कांग्रेस के ही कर्णधार करते आ रहे हैं। इस प्रकार लोक परिषद की नीति और विचार-धारा का समर्थन कांग्रेस द्वारा भी हो रहा है।

दूसरी विचार-धारा समाजवादियों की है। यद्यपि पूर्वोक्त विचार-धारा के अनुसार यहाँ बनी रहने योग्य रियासतें या रियासती समूहों की संख्या १०-१५ से अधिक न होगी, और लगभग छः सौ रियासतों में से शेष सब समाप्त की जायँगी, समाजवादी दृष्टिकोण यह है कि देशी राज्यों का सर्वथा लोप हो जाय, राजाओं की छत्र-छाया में उत्तराई शासन स्थापित करने की कोई बात न रहे, पूर्ण सत्ता जनता की हो, राजतन्त्र को समाप्त कर दिया जाय। राजाओं को 'अल्टीमेटम' (अन्तिम सदेश) दे दिया जाय कि वे सारी सत्ता जनता को हस्तान्तरित कर दें। सब शासन-कार्य समाजवादी दृष्टिकोण से होगा।

विशेष वक्तव्य—अभी समाजवादी विचारधारा का ऐसा विकास और विस्तार नहीं हुआ है कि रियासती राजनीति का सूत्र-संचालन उसी के मतानुसार हो, तथापि पिछले वर्षों में उसने जो प्रगति की है, कोई आश्चर्य नहीं कि निकट भविष में उसी का बोलबाला हो जाय।

जनता की वेगवान और प्रगतिशील जागृति तथा उसकी नागरिक चेतनता के विकास ने सर्वसाधारण के सामने राजाओं के शासन का पूर्णतया नग्न स्वरूप रख दिया है, क्योंकि जितना अधिक जनता अपने अधिकारों तथा उत्तरदायित्व का ज्ञान प्राप्त करती है, उतना ही अधिक दमन का गम्भीरता पूर्वक व्यवहार होता है। बहुत से देशी राज्यों में रियासती जनता की संस्थाओं को काम नहीं करने दिया जाता। और, जहाँ-कहीं उन्हें काम करने भी दिया जाता है, उनका गाँवों में प्रचार समय-समय पर निरुत्साहित किया जाता है। उनके विधान में 'उत्तर-दायी शासन' से सम्बन्ध रखने की बात पर रोक लगाई जाती है। किसी बाहरी संगठन या अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद से सम्पर्क रखने का निषेध किया जाता है। बहुत से देशी राज्यों में सामयिक सभा सम्मेलन करने की अनुमति नहीं मिलती, और जनता को अपने आत्म-सम्मान की रक्षार्थ सविनय अवज्ञा करने के लिए मानों बाध्य किया जाता है।

—डा० पट्टाभि सीतारामैय्या



सोलहवाँ अध्याय

प्रस्तावना

'एक समय आता है, जब जनता में उबाल आता है, और लोग बेताब हो उठते हैं, गुलामी की ज़ंजीरें तोड़ फेंकने को। आज देशी राज्यों की जनता की नब्ज़ को टटोलें तो हम यही हालत पाते हैं।'

पुस्तक के पहले भाग पर एक नज़र—इस पुस्तक के पहले भाग में इस बात का विचार किया गया है कि भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना होने पर देशी राज्यों में राजाओं ने जनता के हितों की कैसी उपेक्षा की, और जनता का असंतोष बढ़ने पर कुछ लोकसेवी महानुभावों ने किस प्रकार तरह-तरह की मुसीबतों को झेलते हुए जनता-जनार्दन की सेवा की, और उसे सोते से जगाया; उनके कार्य में कैसे-कैसे विघ्न आए, किस प्रकार उन्हें जेल-यातना, और लाठियों की वर्षा सहनी पड़ी तथा गोलियों का शिकार होना पड़ा; परन्तु उसके बाद भी आजादी और जागरण का झंडा उठाने के लिए दूसरे युवक

और महिलाएँ आगे बढ़ीं। आरम्भ में अधिकारियों के विरुद्ध आवाज उठाना और जनता का पक्ष लेकर आन्दोलन करनेवाली संस्थाओं का संगठन करना वास्तव में आग से खेलना था। इसलिए जिन महानुभावों ने गरीबी और लोक-सेवा का व्रत लेकर काम किया, उनकी कठिनाइयों और बाधाओं की कल्पना ही की जा सकती है। ऐसे कुछ सज्जनों का परिचय पाठकों को मिल चुका है। प्रारम्भिक संस्थाओं के उदाहरण-स्वरूप हम ने राजपूताना मध्यभारत सभा और राजस्थान सेवा संघ के बारे में कुछ विस्तार से लिखा है।

उसी समय के लगभग और भी संस्थाओं का निर्माण हुआ, और उन्होंने अपने-अपने क्षेत्र में खूब काम किया। उन सब के बारे में विस्तार से लिखा जाना सम्भव नहीं था। इसलिए हमने उनका केवल संकेत करके यह बतलाया कि देश भर के रियासती संगठनों को एक सूत्र में बाँधने के लिए विविध प्रयत्न किए गए, और अन्त में अ० भा० दे० रा० लोक परिषद स्थापित हुई, जिसने गत बीस वर्षों में रियासती प्रश्नों पर प्रकाश डालते हुए जनता का अच्छा पथप्रदर्शन और नेतृत्व किया है। इस संस्था ने राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) की अधिकाधिक सहानुभूति और सहयोग प्राप्त किया। लोक परिषद और कांग्रेस के रियासती कार्यों और नीति के सम्बन्ध में लिखने के उपरान्त हम यह भी बता चुके हैं कि समय-समय पर रियासती नीति के सम्बन्ध में लोक-नेताओं में क्या-क्या विचार-धाराएँ रही हैं।

दूसरे भाग का विषय—उपर्युक्त विवेचन में हमने व्यापक और सामूहिक दृष्टि से ही काम लिया है। यद्यपि प्रसंग-वश किसी-किसी रियासत की किसी खास बात को कुछ अधिक ब्योरेवार बताया गया है, तथपि विविध रियासतों के विषय में कुछ सिलसिले-वार बातें कहने का अवसर नहीं मिला है। यह काम हमें पुस्तक के

इस दूसरे भाग में करना है। यहाँ हम कुछ अलग-अलग राज्यों के बारे में विचार करेंगे। हम देखेंगे कि एक राज्य में किस तरह जन-जागरण आरम्भ हुआ, कब तक उसमें प्रगति का क्रम चलता रहा, तथा किस समय उसे कुछ आघातों के कारण दब जाना पड़ा और अनुकूल अवसर आने पर, अथवा विशेष साहसी और पराक्रमी कार्य-कर्ताओं के मैदान में आ जाने पर, फिर किस प्रकार जनजागृति का कार्य सुचारु रूप से होने लगा। इससे हमें यह जानने का अवसर मिलेगा कि अब तक कौन-कौनसी मंजिल तय हुई और कौन-कौनसी अब बाकी है; अथवा कहीं कोई नई समस्या तो पैदा नहीं हो गई। इस प्रकार हम देखेंगे कि उस राज्य की जनता अब कैसी स्थिति में है, और नया वातावरण किस तरह का प्रयत्न और आन्दोलन चाहता है।

हमारी सीमाएँ—देशी राज्यों की संख्या और आबादी इतनी अधिक है कि रियासती जनता की जागृति का, एक साधारण आकार की पुस्तक में, कुछ विस्तार से वर्णन नहीं हो सकता। अलग-अलग हर एक राज्य के लिए संक्षेप में भी नहीं लिखा जा सकता। यहाँ तो सिर्फ नमूने के तौर से कुछ थोड़े से ही राज्यों का विचार किया जा सकता है। और, इसी से हमें सन्तोष करना है। हाँ, नमूने देश के सभी भागों के लेने का प्रयत्न किया जायगा; कुछ राज्यों की जन-जागृति का परिचय उस राज्य-समूह सम्बन्धी वर्णन से हो जायगा, जिसमें वे राज्य हैं। इस प्रकार स्थूल रूप से सभी राज्यों की जन-जागृति का कुछ आभास मिल जायगा।

विशेष वक्तव्य—यह स्पष्ट है कि जागृति की लहर रियासतों के कोने-कोने में पहुँच रही है; भले ही, अनेक स्थानों में उसका कार्य या फल देखने में न आए। हाँ, वह रियासत भी, जिसमें इस समय कट

कर दमन हो रहा है, और प्रजा बहुत कष्ट में है, वहाँ भी जागृति का अभाव नहीं है। अधिकारियों का दमन ही इस बात का सबूत है कि जनता अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध हो गई है और उसका यह कार्य शासकों को अरुचिकर प्रतीत हो रहा है। इसी लिए तो वे अधिकाधिक दमन करने पर उतर पड़े हैं। अधिकारी यह भूल गए हैं कि सिर्फ उन्हें अरुचिकर होने से जन-जागृति का काम रुक नहीं सकता; और दमन को चाहे कहीं कुछ क्षणिक सफलता मिल भी जाय, उसमें यह दम नहीं होता कि बहुत समय तक जनता को दबाए रखे। आजादी की चाह वाली जनता में जब एक बार जन-जागृति आरम्भ हो जाती है, तो वह सब विघ्न-बाधाओं को दूर करते हुए आगे ही बढ़ती रहती है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अधिकारियों के घोर दमन और निर्दयता से जागृति का प्रवाह रुक जाता है। अत्याचारी तानाशाह गर्व करने लगता है कि मैंने हमेशा के लिए नहीं, तो एक-दो पीढ़ियों के लिए तो जनता का जोश ठंडा कर ही डाला है। भोले-भाले नागरिक इसे सच समझने लगते हैं। परन्तु पहाड़ से उतरनेवाली नदियों के जल-प्रवाह को पत्थरों की शिलाएं या उखड़े हुए पेड़ों के तने आदि कब तक रोक सकते हैं! पानी इधर-उधर अपना रास्ता निकाल ही लेता है। जन-जागृति कभी-कभी स्थगित होती हुई मालूम होती है, परन्तु यह सम्भावना कभी निर्मूल नहीं होती कि वह कुछ समय बाद फिर गतिशील हो जाय, और सम्भव है, पहले से भी अधिक तेज या उग्र रूप धारण करे। आइए, अब हम कुछ अलग-अलग रियासतों की जन-जागृति का चिन्तन और मनन करें।

सतरहवाँ अध्याय

कशमीर

रियासतों का क्रम निश्चय करने में हम खासकर भौगोलिक स्थिति का लिहाज रखना चाहते हैं। इस प्रकार हमारे सामने पहले कशमीर का विषय आता है। यहाँ की जन-जागृति का विचार करने से पूर्व इस राज्य की कुछ विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

इस राज्य की कुछ विशेषताएँ—इस राज्य का पूरा नाम 'जम्मू और कशमीर' है। साधारण बोलचाल में कशमीर कहने से दोनों भागों का आशय ले लिया जाता है। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह भारतवर्ष की सब से बड़ी रियासत है। इसका क्षेत्रफल ८५ हजार वर्गमील है, परन्तु बहुत सी जमीन पहाड़ी होने के कारण, इसकी जन-संख्या केवल सैंतीस लाख है, जिसमें अठाईस लाख से अधिक मुसलमान हैं। राज्य की सालाना आमदनी पौने पाँच करोड़ रुपए से अधिक है। अधिकांश जनता बहुत गरीब है।

कशमीर की स्थिति अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है। यह राज्य भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर सिरे पर है। इसकी कई सौ मील की सीमा भारतीय संघ और पाकिस्तान के अलावा अफगानिस्तान, चीन और रूस की सीमाओं से मिली हुई है। इस प्रकार इस रियासत का, भौगोलिक दृष्टि से कई राज्यों से सम्बन्ध है।

यह रियासत अपने प्राकृतिक सौंदर्य के कारण बहुत ही प्रसिद्ध है, यहाँ तक इसे पृथ्वी का स्वर्ग माना जाता है। कहावत है—

स्वर्गलोक यदि भूमि पर, तौ है याही ठौर ।
जो नाहीं या भूमि पर, यातें सरिस न और ।।

सन् १८१९ में महाराजा रणजीतसिंह ने कशमीर पर अपना अधिकार जमाया । उनके सरदार गुलाबसिंहजी ने इसमें जम्मू और मिला लिया, और वे जम्मू के राजा बना दिए गए । सिक्खों से पंजाब ले लेने पर, सन् १८४६ में अंगरेजों ने गुलाबसिंह से ७५ लाख रुपये लेकर कशमीर का राज्य उन्हें दे दिया । इस प्रकार कशमीरी जनता हिन्दू-डोगरा राजवंश के हवाले कर दी गई । यही 'अमृतसर की संधि' कहलाती है । इसमें कशमीरी जनता का कोई हाथ नहीं था ।*

जन-आन्दोलन का प्रारम्भिक रूप ; बाहरी आदमियों का विरोध—इस राज्य के जन-आन्दोलन ने पहले पहल बाहरी आदमियों के विरोध का रूप लिया । बीसवीं सदी की दूसरी दशाब्दी तक इस राज्य की बहुत सी सरकारी नौकरियाँ बाहर वालों को मिली हुई थीं । आधुनिक शिक्षा प्रायः युवकों को नौकरी के ही योग्य बनाती है । ज्यों-ज्यों राज्य में शिक्षा का प्रचार हुआ, यहाँ के शिक्षित युवकों की यह माँग होने लगी कि सरकारी नौकरियाँ बाहर वालों को न मिल कर हमें मिला करें । सन् १९१८-२० में शिक्षित हिन्दू युवकों ने और सन् १९२७ के लगभग शिक्षित मुसलिम युवकों ने आवेदन-निवेदन किए । इन्हें समय-समय पर कुछ संतुष्ट किया गया । अन्त में सन् १९२७ में 'कशमीरी प्रजा' की परिभाषा की गई और स्थानीय लोगों के अधिकारों की रक्षा करने का कानून बनाया गया । परन्तु इससे मध्य श्रेणी के, और सो भी थोड़े से ही, आदमियों को सन्तोष हुआ । उन निर्धन किसानों आदि को इससे कुछ लाभ

* लेखक की 'देशी राज्य शासन' से ।

न पहुँचा, जिनसे विविध करों के अतिरिक्त बेगार भी ली जाती थी, और जो गुलामों का सा जीवन बिताते थे।

ब्रिटिश भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव; उग्र आन्दोलन और घोर दमन—शिक्षित व्यक्तियों का असन्तोष धीरे-धीरे गरीब किसानों तक पहुँचा। जनता पर कांग्रेस का भी प्रभाव पड़ा। बहुत से युवकों ने कांग्रेस के सन् १९२९ के लाहौर-अधिवेशन में भाग लिया, जिसकी एक विशेषता थी स्वाधीनता की घोषणा करना। सन् १९३० में ब्रिटिश भारत में सविनय अवज्ञा आन्दोलन हुआ, उसके अगले वर्ष कशमीर ने जन-आन्दोलन का अनुभव किया, जो संगठित न होते हुए भी काफी व्यापक था। यह साम्प्रदायिक कटुता लिए हुए भी था। पंजाब के बहुत से अहरार इसकी मदद के लिए चले आए राज्य ने संठगन पर बन्दिश लगाई। आन्दोलन ने उग्र रूप धारण किया। भयंकर दमन हुआ। नोटिफिकेशन '१९.एल' नाम का कानून जारी किया गया। गोलियों और कोड़ों से हजारों आदमी मरे और जख्मी हुए। पर आन्दोलन दबने में नहीं आया। अन्त में महाराजा ने आन्दोलन में भाग लेनेवाले सब आदमियों को माफ करके रिहा कर दिया और जनता की शिकायतों की अर्जी मांगी।

सुधारों की माँग—कई अर्जियाँ आईं। राजपूतों ने वैधानिक सुधारों का जिक्र भी नहीं किया। मुसलमानों ने बुनियादी नागरिक अधिकारों की माँग की, तथा वैधानिक सुधारों के सम्बन्ध में कहा कि व्यवस्थापक सभा में सत्तर फीसदी सदस्य बालिग मताधिकार से चुने जाया करें; जिस मंत्री के सम्बन्ध में सत्तर फीसदी सदस्य अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे, उसे त्यागपत्र देना चाहिए; कानून बनाने का अधिकार व्यवस्थापक सभा को ही हो; नौकरियों में मुसलमानों की

संख्या बढ़ाई जाय। ये माँगें साम्प्रदायिक कही गईं। वास्तव में इससे पहले प्रतिनिधिक व्यवस्थापक सभा और वैधानिक सरकार की माँग कशमीरी पंडितों ने की थी; उन्होंने साम्प्रदायिक राजनीति से दूर रहने की उत्सुकता दर्शाई थी।

इसी समय सन् १६३१ में, कशमीरी जनता की शिकायतों की जाँच करने के लिए ग्लेंसी कमीशन नियुक्त किया गया। इस कमीशन ने निर्वाचित बहुमत वाली व्यवस्थापक सभा स्थापित करने, जनता को भाषण लेखनादि के नागरिक अधिकार देने तथा राजकीय नौकरियों में सब जातियों को समान अधिकार देने की सिफारिश की।

मुसलिम कान्फ्रेन्स—कमीशन की रिपोर्ट छपने के बाद शीघ्र ही 'जम्मू और कशमीर मुसलिम कान्फ्रेन्स' की स्थापना हुई। अक्तूबर १६३२ में इसका प्रथम अधिवेशन शेख मोहम्मद अब्दुल्ला की अध्यक्षता में, श्रीनगर में हुआ। कशमीर की अधिकांश जनता मुसलिम होने के कारण इस संस्था का नाम 'मुसलिम कान्फ्रेन्स' रखा गया था। इससे कुछ लोगों को इसे साम्प्रदायिक कहने का मौका मिला, पर इस संस्था ने राष्ट्रीय दृष्टिकोण से ही काम किया। दूसरे अधिवेशन में इसके सभापति श्री० अब्दुल्ला ने अपनी व्यापक नीति की घोषणा की। इस सभा की कार्यसमिति की ओर से काम करनेवाले श्री० चौधरी गुलाम अब्बास ने फरवरी १६३४ में सरकार के पास अपनी माँगें भेजीं, जिनमें कहा गया कि मुसलमानों की माँग पूर्ण उत्तरदाई शासन के लिए है। सरकार के इस ओर ध्यान न देने पर सविनय अवज्ञा का कार्यक्रम बनाया गया। सभी विचार तथा जातियों के नेताओं का सम्मेलन बुलाया गया। सरकारी दमन-चक्र ज़ोर से चला। इस बीच आन्दोलन स्थगित कर दिया गया।

शासन-सुधार अपर्याप्त—ग्लैंसी कमीशन के बाद सरकार ने मताधिकार कमेटी नियुक्त की थी। इसके सभी सदस्य सरकारी थे। इसके कार्य में दो वर्ष लगे, फिर भी इसकी सिफारिशें बहुत ही अपर्याप्त और असंतोषप्रद रहीं। अप्रेल सन् १९३४ में यहाँ 'जम्मू-कशमीर प्रजा सभा' नाम की व्यवस्थापक सभा स्थापित की गई। उसमें ४ फीसदी जनता को मत देने का अधिकार मिला। प्रजा-सभा में कुल मिला कर ७५ सदस्य रखे गए, जिनमें से सिर्फ ३३ जनता द्वारा निर्वाचित थे। प्रजा-सभा के सदस्यों को, उसके अधिवेशन में प्रश्न पूछने, प्रस्ताव करने, और सरकारी बजट पर बहस करने का अधिकार दिया गया। यह स्पष्ट ही है कि राज्य ने ग्लैंसी वैधानिक सुधार समिति की सब सिफारिशों को स्वीकार नहीं किया, और प्रजा-सभा में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत नहीं रखा। लोकनेताओं ने उपर्युक्त सुधारों को नाकाफी समझा। सन् १९३५ के प्रारम्भ से श्री० अब्दुल्ला विविध जातियों का सङ्गठन करने के प्रयत्न में लग गए। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आपने पंडित प्रेमनाथ बजाज के सहयोग से 'हमदर्द' नाम का पत्र निकाला। १९३६ में जो उत्तरदायी शासन दिवस मनाया गया, उसमें सभी जातियों के आदमियों ने भाग लिया।

नेशनल कान्फ्रेंस का कार्य—जनवरी १९३८ में श्री अब्दुल्ला ने पंडित जवाहरलाल नेहरू से कशमीर की स्थिति पर विचार-विनिमय किया। इसके फल-स्वरूप मुसलिम कान्फ्रेंस का नाम बदल कर नेशनल कान्फ्रेंस (राष्ट्रीय सभा) रखा गया। तब से प्रगतिशील कशमीरी पंडित और सिक्ख आदि भी इसमें भाग लेने लगे। ५ अगस्त १९३८ को पुन: 'उत्तरदायी शासन दिवस' मनाया गया। इस दिन राज्य में करीब पाँच सौ सभाएँ की गईं। जन-आन्दोलन खूब बढ़ा हुआ था। फिर सरकारी दमन शुरू हुआ। 'हमदर्द' पत्र को जमानत जमा करने का आदेश हुआ, पीछे इसका प्रकाशन भी रोक दिया गया।

सन् १६३६ में महाराजा साहब ने नई घोषणा की, उसके अनुसार प्रजा-सभा के निर्वाचित सदस्यों की संख्या ३३ के बजाय ४० कर दी गई। अब नामजद सदस्य ३५ रहने लगे। नेशनल कान्फ्रेंस ने इसे भी असन्तोषजनक और प्रतिगामी बतलाया, तथापि उसने विधान को अमल में लाने में सहयोग प्रदान किया। परन्तु पीछे उसे अधिकारियों का व्यवहार निराशाजनक प्रतीत हुआ, और उसने विरोध-स्वरूप व्यवस्थापक सभा से अपने दल के सदस्यों के त्यागपत्र दिला दिए।

जनवरी सन् १६४२ में कान्फ्रेंस की वर्किंग कमेटी ने सरकार का ध्यान अन्न-संकट की ओर आकर्षित किया और उसे टालने के उपाय भी सुझाए। साथ ही जलाऊ लकड़ी के कन्ट्रोल और वितरण की माँग की। आखिर, सरकार ने कान्फ्रेंस का सहयोग लिया और कान्फ्रेंस ने पीपल्स-फूड-कमेटियों के द्वारा अनाज और लकड़ी के उचित वितरण का भरसक उद्योग किया। इससे जनता को बड़ी राहत मिली। शहर में कान्फ्रेंस की शाखाएँ फैलीं और वह जनता के निकट सम्पर्क में आई।

अगस्त १६४२ के आन्दोलन में ब्रिटिश भारत में नेताओं की गिरफ्तारी होने पर नेशनल कान्फ्रेंस ने देश के अन्य भागों की तरह राष्ट्रीय कार्यक्रम रखा। हड़ताल और आम सभाएँ हुईं। ब्रिटिश दमन की निन्दा की गई। कान्फ्रेंस के सभापति ने वायसराय को पत्र लिख कर स्वाधीनता की माँग मन्जूर करने और अस्थायी राष्ट्रीय सरकार बनाने को कहा।

राज्य के लिए प्रस्तावित विधान—सन् १६४३ में महाराजा ने कश्मीर की उन्नति के उपाय सुझाने के लिए एक कमीशन नियुक्त किया तो उसमें कान्फ्रन्स के प्रतिनिधि भी शामिल हुए। इस अवसर पर नेशनल कान्फ्रेंन्स ने कश्मीर राज्य के लिए एक विधान बनाया।

इसकी विशेषता यह है कि यद्यपि इसमें प्रजातंत्री उत्तरदायी शासन की व्यवस्था की गई है, यह स्पष्ट कर दिया गया है कि समाज के आर्थिक ढाँचे में मौलिक परिवर्तन किए बिना वास्तविक उन्नति नहीं हो सकती। शोषण और स्वाधीनता साथ-साथ नहीं चल सकते। इसलिए एक ओर तो राजनीतिक सिद्धान्त यह रखा गया कि स्थानीय पंचायत से लेकर ऊपर नेशनल असेम्बली (व्यवस्थापक सभा) तक चुनाव-पद्धति से काम लिया जाय, न्याय-विभाग स्वतंत्र रहे, और प्रबन्धकारिणी सभा जनता के प्रति उत्तरदायी हो। दूसरी ओर इसके साथ जनता का आर्थिक धरातल या रहनसहन का दर्जा ऊँचा करने की यथेष्ट योजना बनाई गई ; यहाँ तक कि इस बात का ब्योरेवार विचार किया गया कि एक नागरिक को भोजन, वस्त्र, मकान, चिकित्सा, यातायात, शिक्षा और विश्राम आदि की जितनी आवश्यकता हो, उसकी राज्य की ओर से यथेष्ट व्यवस्था रहे। नेशनल कान्फ्रेन्स ने अनुभव किया कि कमीशन के सदस्य प्रायः स्थिर स्वार्थ वाले हैं और उनकी कार्य-पद्धति भी असन्तोषजनक है। इसलिए उसने कमीशन में से अपने प्रतिनिधि हटा लिए, और उपर्युक्त वैधानिक सिफारिशें भी कमीशन के सामने न रख कर सीधे महाराज की सेवा में उपस्थित कीं।

सन् १९४४ में महाराजा ने दो लोकप्रिय मन्त्री लेने के लिए, व्यवस्थापक सभा से पाँच नाम माँगे। उन पाँच सज्जनों में से जो दो लोकप्रिय मंत्री नियुक्त किए गए उनमें से एक कान्फ्रेन्स के प्रतिनिधि श्री मिरजा अफजल बेग थे, जिन्हें १९३८ के आन्दोलन में भाग लेनेवाले अन्य व्यक्तियों के साथ गुंडा कहा गया था। विविध देशों की क्रान्तियों के इतिहास में यह बारबार अनुभव हुआ है कि कुछ समय पहले के बागी, विद्रोही और दंड प्राप्त व्यक्ति पीछे शासन-सूत्र संभालते हैं। अस्तु, कश्मीर सरकार ने श्री बेग को मंत्री

तो बना लिया, पर उसने इन्हें काम कम महत्त्व के दिए। फिर, कुछ समय बाद इन्हें अपने विचार प्रकट करने की भी स्वाधीनता न रही। इस पर इन्होंने मजबूर होकर अपने पद से त्यागपत्र दे दिया।

अगस्त १६४५ में कान्फ्रेन्स का अधिवेशन सोपुर में खूब धूम-धाम से हुआ। इस में अखिल भारतीय नेता श्री मौलाना आजाद, नेहरू जी और सीमाप्रान्त के गांधी खान अब्दुल गफ़्फ़ार खाँ तथा बलूच नेता खान अब्दुलसमद खाँ भी सम्मिलित थे। उपस्थिति पचीस हजार से अधिक थी। कशमीर की किसान और मजदूर जनता की, अपने नेता शेख मोहम्मद अब्दुल्ला के प्रति, अटूट श्रद्धा थी।

'कशमीर छोड़ो'-आन्दोलन; कुछ विचारणीय बातें—मई १६४६ में शेख मोहम्मद अब्दुल्ला के नेतृत्व में नेशनल कान्फ्रेंस ने कशमीर नरेश को ब्रिटिश सरकार से की हुई १८४६ की अमृतसर की सन्धि* के विरुद्ध आवाज़ उठाई और कशमीर के महाराजा से प्रार्थना की कि इस राज्य के शासन का अधिकार जनता को सौंप दें। 'कशमीर-छोड़ो' आन्दोलन का यही भाव था।

इस आन्दोलन के सम्बन्ध में कुछ बातें विचारणीय हैं। सन्धि समाप्त करने की बात श्री अब्दुल्ला ने ब्रिटिश मन्त्रिमिशन के सामने भी रखी थी। जब हम चाहते हैं कि राजा लोग पुरानी और अनुचित सन्धियों का आसरा न लें और नई परिस्थितियों का विचार करें तो हमें भी इन सन्धियों की बात न उठानी चाहिए, चाहे फिर वह इन्हें रद्द कराने की ही क्यों न हो। श्री शेख अब्दुल्ला अ० भा० दे०

---

* इस सन्धि के विषय में, इस अध्याय के आरम्भ में लिखा जा चुका है।

रा० लोकपरिषद के उपाध्यक्ष थे, और कश्मीर की नेशनल कान्फ्रेंस का उद्देश्य राजा की छत्रछाया में रहते हुए उत्तरदायी शासन प्राप्त करना था। ऐसी अवस्था में राजा तथा राजवंश विरोधी बातें साधारण रियासती आन्दोलन से मेल नहीं खातीं। श्री अब्दुल्ला ने कहा था कि हम राजा को बनाए रखना चाहते हैं, बशर्ते कि वह वैधानिक शासक हो। उन्होंने यह भी कहा था कि 'मैं राजाओं की निरंकुशता का विरोधी हूँ, इसलिए 'हैदराबाद छोड़ो'-आन्दोलन का भी समर्थक हूँ। हमारा आन्दोलन राष्ट्रीय है।' तथापि कितने ही लोगों को आन्दोलन में साम्प्रदायिकता की गन्ध आई; खासकर इसलिए कि कश्मीर का राजा हिन्दू है और आन्दोलन का नेतृत्व एक मुसलिम सज्जन कर रहे हैं, जो प्रारम्भ में एक मुसलिम संस्था के अध्यक्ष थे। कुछ हिन्दुओं ने 'हिन्दू राज्य खतरे में'—यह नारा लगाया।

आन्दोलन और राष्ट्रीय नेता—वास्तव में श्री अब्दुल्ला ने इस आन्दोलन को चलाने से पहले दूसरे प्रमुख नेताओं और कार्यकर्ताओं से विचार-विनिमय नहीं किया था। पीछे यह प्रतिक्रिया मालूम होने पर वे कश्मीर की परिस्थिति का परिचय श्री नेहरू जी (लोकपरिषद के तत्कालीन अध्यक्ष) को देने के वास्ते देहली के लिए रवाना हुए। पर वे रास्ते में गिरफ्तार कर लिए गए। इससे जनता में क्षोभ पैदा हुआ। राज्य ने दमन से काम लिया।

शेख अब्दुल्ला की गिरफ्तारी का समस्त भारत में विरोध हुआ। पंडित जवाहरलाल नेहरू वस्तु-स्थिति की जांच करने कश्मीर गए। आपके रियासत-प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया, किन्तु आपने उसका उल्लंघन किया। आपको कश्मीरी सेना के एक सैनिक की सङ्गीन से चोट भी लगी। उस समय कश्मीर का आन्दोलन अखिल

भारतीय आधार पर चलने का अवसर आ गया था; परन्तु दिल्ली में नए विधान सम्बन्धी जो वार्त्ता चल रही थी उसके लिए मौलाना अबुलकलाम आजाद ने श्री नेहरू जी को दिल्ली बुला लिया।

कश्मीर सरकार ने श्री शेख अब्दुल्ला पर मुकदमा चलाया। इस मुकदमे की पैरवी के लिए कांग्रेस तथा देशीराज्य लोक-परिषद की ओर से श्री आसफअली गए। अन्त में श्री अब्दुल्ला को तीन वर्ष की कड़ी कैद की सजा दी गई।

ज्यों ही कांग्रेस को अपनी समस्याओं से अवकाश मिला, त्योंही उसने कश्मीर पर ध्यान दिया। राष्ट्रपति आचार्य कृपलानी व्यक्तिगत रूप से कश्मीर गए, वहाँ आपने स्थिति की जाँच की तथा व्यक्तिगत रूप से कश्मीर के महाराजा हरीसिंह से भेंट की। यह आशा की जाती थी कि महाराजा कांग्रेस की सद्भावना की कद्र करेंगे तथा श्री शेख अब्दुल्ला और उनके साथियों को रिहा कर देंगे परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। महात्मा गांधी भी सद्भावना मिशन पर कश्मीर गए। महाराजा ने आपके वहाँ पहुँचने पर सभाओं आदि पर लगे प्रतिबन्ध ढीले कर दिए या उठा दिए। गांधी जी के प्रभाव से कश्मीर की स्थिति में सुधार भी हुआ, परन्तु महाराजा श्री शेख अब्दुल्ला के मामले में चुप हो रहे।

आन्दोलन पर लोकमत—यहाँ यह जान लेना उपयोगी होगा कि 'कश्मीर छोड़ो'-आन्दोलन के सम्बन्ध में लोकमत तथा राष्ट्रपति का विचार क्या रहा। इसमें सन्देह नहीं कि इस आन्दोलन के छेड़े जाने पर कश्मीर-सरकार ने जो दमन नीति इख्तयार की, उससे तथा श्री नेहरू जी के प्रवेश-निषेध आदि से लोकमत बहुत क्षुब्ध हो गया। तथापि यह स्पष्ट है कि आन्दोलन लोकमत का यथेष्ट समर्थन प्राप्त किए बिना छेड़ा गया था। जहाँ-तहाँ अनेक कार्यकर्त्ता इसे अविवेकता-

मूलक, दुर्भाग्यपूर्ण अथवा जल्दबाजी का काम समझते थे। कितने ही पत्र-पत्रिकाओं ने इसमें असहमति प्रकट की, और कुछ ने तो इसका स्पष्ट विरोध भी किया। सभी विरोधियों की, साम्प्रदायिकतावादी कह कर, उपेक्षा नहीं की जा सकती।

'कश्मीर छोड़ो' और 'भारत छोड़ो'-आन्दोलन— 'कश्मीर छोड़ो'-आन्दोलन को 'भारत छोड़ो'-आन्दोलन का प्रतीक या उसका अंग नहीं समझना चाहिए। दोनों में स्पष्ट अन्तर है। राष्ट्रपति आचार्य कृपलानी ने मई १६४७ में कश्मीर छात्र सङ्घ की ओर से पेश किए गए अभिनन्दन-पत्र का उत्तर देते हुए इन दोनों माँगों का अन्तर बतलाया। आपने कहा कि "कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो' की माँग विदेशी सत्ता ब्रिटेन के विरुद्ध की थी, और वह इसलिए कि भारत-वासी अपना विधान बनाकर अपनी सरकार को चला सकें। यह बात कश्मीर में लागू नहीं होती। महाराजा कश्मीर-विरोधी नहीं हैं, उन्हें कश्मीर में रहने का पूर्ण अधिकार है। इस प्रकार 'कश्मीर-छोड़ो' की माँग अनुचित और अनुपयुक्त है।" राष्ट्रपति ने कश्मीर की जनता को परामर्श दिया कि कश्मीर-छोड़ो' की माँग हटाकर पंचायत राज्य की माँग की जाय, जिसका अर्थ यह है कि महाराजा की देख-रेख में जनता की सरकार स्थापित हो। इससे राजा और प्रजा दोनों को सुख मिलेगा।

'प्रजा-सभा' के चुनाव ; कान्फ्रेन्स द्वारा बहिष्कार— इस बीच में प्रजा-सभा (व्यवस्थापक सभा) का चुनाव सामने आया। उस समय बर्फ पड़ने और बहुत सर्दी होने के कारण दूर दूर के मतदाताओं का निर्वाचन-स्थान पर पहुँचना बहुत कठिन था। इसके अतिरिक्त सारे जम्मू और कश्मीर में सभा करने और समाचारपत्रों पर प्रतिबन्ध लगा होने से कान्फ्रेंस जनता में अपने उद्देश्यों का प्रचार

नहीं कर सकती थी। फिर, कान्फ्रेंस के बहुत से नेता, जिनमें से कितने ही चुनाव के लिए उम्मेदवार थे, इस समय जेलों में बन्द थे। ऐसी दशा में चुनाव निष्पक्ष और स्वतन्त्र होने की आशा न रहने से नेशनल कान्फ्रेन्स ने चुनाव का बहिष्कार कर दिया। इससे प्रजा-सभा में प्रायः अधिकारियों के समर्थकों और जी-हजूरों का ही बोलबाला रहा।

नया वातावरण; शेख अब्दुल्ला और उनके साथियों की रिहाई—३ जून १९४७ की घोषणा के अनुसार भारतवर्ष में भारतीय संघ और पाकिस्तान दो राज्य हो गए। पीछे दोनों राज्यों के कितने ही शरणार्थी एक राज्य से दूसरे में गए। सीमाप्रान्त और पश्चिमी पंजाब के शरणार्थियों ने कशमीर में आश्रय ग्रहण किया। इस पर पाकिस्तानी अधिकारियों ने आपत्ति की और कबीले वालों को कशमीर के विरुद्ध भड़काया। इसके अलावा हजारा जिले में अल्पसंख्यकों के चले आने से और खुदाई खिदमदगारों का प्रभाव न रहने से वहाँ मुसलिम लीगियों का ही बोलबाला हो गया; और यह जिला कशमीर की सीमा से मिला है। स्थिति चिन्तनीय थी। आन्तरिक शान्ति की दृष्टि से महाराजा ने शेख अब्दुल्ला तथा उनके साथी कार्यकर्ताओं को सितम्बर १९४७ के अन्त में रिहा कर दिया, और 'कशमीर छोड़ो'-आन्दोलन के सिलसिले में जो मुकदमे चल रहे थे, या वारंट जारी थे, वे सब हटा लिए। अपनी रिहाई के बाद पहिला आम बयान देते हुए शेरे कश्मीर शेख अब्दुल्ला ने कहा कि कशमीर हिन्द में शामिल हो या पाकिस्तान में इसका निर्णय स्वतंत्र रूप से राज्य की चालीस लाख प्रजा के हित की दृष्टि से होना चाहिए। यदि कशमीर पाकिस्तान में चला भी जाय तो भी कशमीर नेशनल कान्फ्रेंस 'दो राष्ट्र-सिद्धांत' को ग्रहण न करेगी। वे कशमीर

में जनता के राज्य की स्थापना चाहते हैं जो किसी एक सम्प्रदाय की न होकर हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान आदि सभी कौमों की समान रूप से होगी।

नेताओं की रिहाई करके कशमीर नरेश ने न केवल जम्मू-कशमीर नेशनल कान्फ्रेन्स या अ० भा० दे० रा० लोक परिषद् की ही वरन् भारतीय संघ की भी सद्भावना प्राप्त की। पीछे कशमीर राज्य अस्थायी रूप से भारतीय सङ्घ में शामिल हो गया और शेख मोहम्मद अब्दुल्ला के प्रधान मन्त्रित्व में अन्तःकालीन सरकार बन गई।

विशेष वक्तव्य—कशमीर के भारतीय सङ्घ में सम्मिलित हो जाने से पाकिस्तान के अधिकारी आग-बबूला हो गए। उन्होंने इन दोनों के विरुद्ध तरह-तरह की साज़िश की। उनकी सहायता से मशीनगन, तोपखाने, ब्रेनगन, और बम आदि आधुनिक शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित अफ्रीदी कबाइलियों ने सीमाप्रान्त के रास्ते कशमीर पर अचानक हमला कर दिया। शेख अब्दुल्ला इसके लिए तैयार न थे, तो भी उन्होंने कशमीरी सेना द्वारा आक्रमणकारियों का डट कर मुकाबला किया और भारतीय सङ्घ की सैनिक सहायता प्राप्त की, जिसका कि कशमीर राज्य अब एक अङ्ग है। विश्वास किया जाता है, कशमीर की रक्षा में यथेष्ट सफलता मिलेगी, और विरोधियों तथा उनके हिमायतियों को समुचित शिक्षा दी जायगी।

शान्ति स्थापित हो जाने पर कशमीर में जनता की इच्छानुसार यह निश्चय किया जायगा कि यह राज्य स्थायी रूप से भारतीय सङ्घ में सम्मिलित हो या पाकिस्तान में। आशा है कि आर्थिक, राजनीतिक तथा अन्य लाभों की दृष्टि से इन दोनों राज्यों की तुलना करने पर कशमीर भारतीय सङ्घ में ही बना रहना पसन्द करेगा।

नेशनल कान्फ्रेन्स का जनता पर गहरा प्रभाव है। इसका दैनिक

मुखपत्र 'खिदमत' है। इसके कार्यकर्ताओं में सर्वश्री सरदार बुद्धसिंह, कश्यप बंधु, राजमोहम्मद, गुलाममोहम्मद अकबर मीरपुर, बख्शी गुलाम-मोहम्मद, मिरजा अफ़जल बेग, श्यामलाल कौल, गुलाममोहम्मद सादिक जैसे महानुभाव हैं। कान्फ्रेन्स के ५० हजार सदस्य और ३०० शाखाएँ हैं। आशा है, अधिकाधिक सज्जन राष्ट्रीय दृष्टि से कार्य करेंगे, और कशमीर की जन-जागृति और उन्नति में यथेष्ट भाग लेंगे।

—:•:—

अठारहवाँ अध्याय

पंजाब के राज्य

[शिमला पहाड़ी राज्य; दूसरे राज्य—पटियाला, नाभा, झींद]

इस समय पंजाब दो भागों में बँटा हुआ है, पूर्वी पंजाब भारतीय संघ में है, और पश्चिमी पंजाब पाकिस्तान में है। पर यह तो जून १६४७ से ही हुआ है। पञ्जाब के राज्यों की जन-जागृति के लिए इस विभाजन का विचार करना अनावश्यक है। पञ्जाब में छोटे-बड़े ३६ राज्य हैं। इन में से २२ 'शिमला पहाड़ी राज्य' कहलाते हैं, पहले इनके ही बारे में लिखा जाता है।

शिमला पहाड़ी राज्य—इन राज्यों में से अधिकांश बहुत छोटे-छोटे हैं। इनमें से मुख्य ये हैं—बशहर, भज्जी, बिलासपुर (कहलूर), सिरमौर (नाहन)। भारत-सरकार ने प्रबन्ध की दृष्टि से टेहरी को भी इनमें ही शामिल रखा, परन्तु वैसे यह राज्य संयुक्तप्रान्त में है, और इसके बारे में विस्तार से संयुक्तप्रान्त के राज्यों के प्रसंग में

ही लिखा जायगा। शिमला पहाड़ी राज्यों में से प्रायः सभी के विषय में यह कहा जा सकता है कि यहाँ न्याय और कानून दकियानूसी ढङ्ग का है। जनता के जान-माल की रक्षा का उचित प्रबन्ध नहीं है। बेगार की प्रथा जोर से प्रचलित है; किसी के इनकार करने पर जेल की सजा दी जाती है। इन रियासतों में नागरिक स्वतन्त्रता नहीं है। कोई व्यवस्थापक सभा नहीं है। बजट प्रकाशित नहीं किये जाते। जनता पर मनमाने करों का भार लाद दिया गया है। भूमि पर लगान बहुत अधिक है। शासकों के परिवार में कोई उत्सव होता है तो उस अवसर पर प्रजा को अतिरिक्त कर देने के लिए बाध्य किया जाता है। राजनीतिक कार्यों को बुरी तरह दबाया जाता है।

धामी गोलीकांड—अन्यान्य राज्यों में धामी राज्य ने दमन की पराकाष्ठा का उदाहरण उपस्थित किया। घटना १६ जुलाई १६३६ की है। जैसा कि श्री० जवाहरलाल जी नेहरू ने अपने ८ मार्च १६४० के वक्तव्य में कहा था, इस छोटी सी पहाड़ी रियासत के प्रजा-जनों का प्रतिनिधि-मंडल वहाँ के शासकों को अपनी कष्ट-कथा सुनाने तथा वहाँ के शासन-सुधार के निमित्त प्रार्थना करने गया था, जिस पर रियासत के अधिकारियों ने निर्ममता से गोली चलाई। कितने ही व्यक्ति मरे और घायल हुए। इसकी जाँच करने की प्रार्थना हुई, जो अस्वीकार कर दी गई। बाद में अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद की ओर से शिमला की पहाड़ी रियासतों की प्रजा के कष्टों की जाँच कराई गई। जाँच करनेवाली समिति के अध्यक्ष श्री० दुनीचन्द जी एडवोकेट, एम० एल० ए० (पञ्जाब) थे, और मंत्री थे श्री सुमन जी। जाँच रिपोर्ट से शिमला की पहाड़ी रियासतों, खासकर धामी राज्य, में होनेवाली मनमानी धांधली का पता लगता है, और यह साफ जाहिर हो जाता है कि इन रियासतों की दशा असाधारण रूप से गिरी हुई है, और इसका उत्तरदायित्व इनके शासकों तथा पोलिटिकल एजन्ट

दोनों पर है। हिमालय प्रान्तीय देशी राज्य लोक-परिषद अपने क्षेत्र के प्रत्येक राज्य तथा राज्य-समूह में जनता का संगठन और शिक्षा-प्रचार, ग्रामसुधार आदि रचनात्मक कार्य करने में लगी हुई है। इस संगठन में टेहरी (संयुक्त प्रान्त) के कार्यकर्ताओं का खास भाग रहा है, इसलिए इसके कार्य के सम्बन्ध में आगे संयुक्तप्रान्त के राज्यों का वर्णन करते हुए लिखा जायगा।

पंजाब के दूसरे राज्य

शिमला पहाड़ी राज्यों को छोड़कर, पंजाब के दूसरे राज्यों में पटियाला, नाभा, झींद, कपूरथला, मलेरकोटला, बहावलपुर, खैरपुर, चम्बा और सुकेत हैं। इनमें से पहले तीन अर्थात् पटियाला, नाभा, और झींद फुलकियाँ रियासतें कहलाती हैं। इन तीनों के शासकों का पूर्वज फूल नामक एक सिद्ध-जाट था। इनके वर्तमान शासक सिक्ख धर्मानुयायी हैं। पिछले योरपीय महायुद्ध के बाद भारतवर्ष में राष्ट्रीय जागृति के रूप में जो सत्याग्रह और असहयोग आन्दोलन हुआ, उसमें वीरभूमि पंजाब ने भी खूब भाग लिया। इसका यहाँ की रियासती जनता पर भी बड़ा प्रभाव पड़ा। भिन्न-भिन्न राज्यों में विविध महानुभावों ने जनता के कष्टों को दूर करने के प्रयत्न में तरह-तरह के कष्ट उठाए; कितने ही सज्जनों ने तो इसमें अपने प्राणों तक की आहुति चढ़ादी, और कितने ही जीते-जी शहीद हुए। धीरे-धीरे रियासतों में पृथक्-पृथक् शासन-सुधारक संस्थाएँ स्थापित हुईं।

सिक्ख 'दीवान'—१७ जुलाई १९२८ को पटियाला राज्य में मनसा स्थान पर एक महत्वपूर्ण सिक्ख 'दीवान' (जलसा) हुआ। उसमें आठ हजार से अधिक सज्जन एकत्र हुए थे। उपस्थित सज्जनों में सुप्रसिद्ध सिक्ख नेता सरदार खड़गसिंह भी थे; 'तरुण राजस्थान'

(अजमेर) के सम्पादक श्री शंकरलाल जी वर्मा अ० भा० देशी राज्य लोक-परिषद् के संगठन विभाग की ओर से उपस्थित थे। इस 'दीवान' में स्वीकृत प्रस्तावों में मुख्य ये थे—

(१) महाराजा पटियाला ने युद्ध-ऋण को ब्याज सहित सन् १६२२ में वापिस करने का वादा किया था, वह वादा अभी तक पूरा नहीं किया। ब्याज सहित ऋण जल्दी चुकाया जाय।

(२) महाराजा पटियाला द्वारा लोकप्रिय नेता सर्वश्री सेवासिंह हरनामसिंह, शमशेरसिंह, हरिसिंह, अर्जुनसिंह, चन्दनसिंह, और उजागरसिंह जी को बिना मुकदमा चलाए कैद किए जाने पर क्षोभ प्रकट किया गया और इन सरदारों को वीरोचित बधाई दी गई।

(३) शिक्षा और सड़कें लोकप्रिय अधिकारियों के नियंत्रण में रहें।

(४) सन् १६२६ से जनता पर १६ प्रतिशत लगान जबरदस्ती बढ़ाया गया है, यह हटाया जाय। और, इस मद में जो रुपया अब तक इकट्ठा किया गया है, वह लौटाया जाय।

(५) पटियाला राज्य के गुरुद्वारे पंथ को सौंपे जायँ।

(६) नाभे के जिन नागरिकों ने ब्रिटिश शासन की ज्यादतियों का विरोध किया था, उनके माल की जप्ती पर क्षोभ प्रकट किया गया।

(७) भारत सरकार द्वारा महाराजा नाभा के देशनिकाले, तथा नजरबन्दी और उनका भत्ता कम किए जाने की निन्दा की गई।

(८) देशी राज्यों के शासकों की अंगरेजी ताज से सीधा सम्बन्ध रखने की माँग का विरोध किया गया।

(६) शिरोमणी अकाली दल के बारडोली सत्याग्रह सम्बन्धी निर्णय का समर्थन किया गया, और उसे सब प्रकार की सहायता का आश्वासन दिया गया।

पंजाब रियासती प्रजा-मंडल—उपर्युक्त 'दीवान' के अवसर पर पंजाब रियासती प्रजामंडल (पंजाब स्टेट्स पीपल्स असोसियेशन) की स्थापना की गई। इसमें पटियाला, नाभा, झींद, कपूरथला और बहावलपुर राज्यों के प्रतिनिधि उपस्थित थे। श्री सरदार जसवन्तसिंह इसके सभापति और सरदार भगवानसिंह (पटियाला राज्य के अकाली जत्थे के सेक्रेटरी) इसके मंत्री चुने गए। इस संस्था का प्रथम अधिवेशन सन् १६२६ में, लाहौर में हुआ, जिसका उद्देश्य इस प्रान्त के सब राज्यों में उत्तरदायी शासनपद्धति स्थापित करना है। पंजाब की रियासती जनता के उपर्युक्त स्थानीय तथा केन्द्रीय संस्थाओं के अधिवेशन समय-समय पर होते रहे। प्रायः ये अधिवेशन किसी देशी राज्य की सीमा में न होकर ब्रिटिश भारत के किसी नगर में किए गए।

कोई देशी राज्य इन 'विद्रोही' संस्थाओं के अधिवेशन अपने यहाँ नहीं होने देता था। यहाँ तक कि इनके कार्यालय भी देशी राज्यों से बाहर ही रखने पड़े। ऐसा करते हुए भी इन संस्थाओं के मुख्य कार्यकर्त्ता तथा पदाधिकारी अपने-अपने राज्य के अधिकारियों के कोपभाजन हुए बिना न रहे। कोपभाजन बन कर उन्होंने क्या-क्या मुसीबतें सहीं, इसकी कहानी बड़ी लम्बी और करुणाजनक है।

पंजाब रियासती प्रजामंडल के निमंत्रण पर, सन् १६३६ में अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद का अधिवेशन लुधियाना में हुआ। इससे पंजाब भर में, रियासतों के सुधार के सम्बन्ध में खूब आन्दोलन तथा प्रचार हुआ। पंजाब के कई राज्यों में नागरिक अधिकारों को कुचलनेवाली 'हिदायत १६८८' घातक रूप से अमल में आती रही है। जनता के त्याग और बलिदान से इस हिदायत का अन्त किये जाने के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे थे कि दूसरा विश्वव्यापी युद्ध आ पहुँचा, और अधिकारियों को अपने दमन-अस्त्र सुरक्षित रखने का

बहाना मिल गया। अस्तु, पंजाब का केन्द्रीय रियासती प्रजामंडल तथा विविध स्थानीय प्रजामंडल अनेक कठिनाइयाँ सहते हुए उत्तरदायी शासन प्राप्त करने के उद्देश्य से अपने कार्य में लगे हुए हैं।

पटियाला

प्रजामंडल की स्थापना और दमन—यद्यपि यहाँ कुशासन और दमन-नीति बहुत समय से चल रही थी; सन् १९२८ से पहले खासकर सिक्खों ने ही जन-आन्दोलन में भाग लिया। इन्होंने गुरुद्वारा के आन्दोलन में यथेष्ट वीरता और सहिष्णुता का परिचय दिया था। सन् १९२८ में सर्वश्री सरदार सेवासिंह, भगवानसिंह, जञ्जीरसिंह जोग, तथा हरनामसिंह जी आदि ने 'रियासती प्रजा-मंडल पटियाला' की नींव डाली। इस संस्था का उद्देश्य राज्य में उत्तरदायी शासन प्राप्त करना ठहराया गया। पीछे राज्य भर में सङ्गठन करने का प्रयत्न किया गया, सभाएँ की गईं और जलूस निकाले गए। अधिकारियों के लिए ये बातें नई थीं। उन्होंने खूब लाठीचार्ज किया, प्रमुख कार्यकर्त्ताओं को गिरफ़्तार किया और उन्हें लम्बी कैद की सजाएँ दीं; उदाहरणवत् सरदार भगवानसिंह को ४४ वर्ष, जंगीरसिंह को १८॥ वर्ष और हरनामसिंह को ६ वर्ष, इत्यादि। बहुत से व्यक्तियों के विरुद्ध कृत्रिम फौजदारी मामले चलाए गए, कुछ को राज्य से निकाल दिया गया और कुछ का माल जब्त कर लिया गया। इससे स्पष्ट है कि प्रजा-मंडल के कार्यकर्त्ताओं को कैसी-कैसी मुसीबतें सहनी पड़ी हैं। कुछ तो बेचारे, जेल में ही मर गए। तो भी प्रजामंडल अपने कर्तव्य-पथ पर डटा रहा।

महाराजा के विरुद्ध खुले अभियोग; जन-जागृति का सूचना—सन् १९२८-२९ में महाराजा भूपेन्द्रसिंह जी के विरुद्ध खुले-

आम अनेक अभियोग लगाए गए, जिनमें स्त्री-अपहरण आदि के कुछ अभियोग तो बहुत ही गम्भीर थे ; और एक राजा तो क्या, साधारण भले आदमी के लिए भी लज्जाजनक थे। ऐसे अभियोगों का खुले-आम लगना यह जाहिर करता है कि जनता अब पहले की तरह राजाओं के चरित्र और व्यवहार की चर्चा और आलोचना करना अपने क्षेत्र से बाहर नहीं समझती थी। वह यह सहन नहीं करती थी कि एक सन्दिग्ध चरित्र वाला व्यक्ति उसका भाग्य-विधाता हो, यह बात निश्चय ही जन-जागृति की सूचक है; हाँ, जनता में अभी इतना बल नहीं था कि वह ऐसे व्यक्ति से छुटकारा पा सके, खासकर जब कि उसे ब्रिटिश साम्राज्यशाही का सहारा हो।

अभियोगों के उदाहरण—इन अभियोगों की सूची बहुत बड़ी है; हम ६७ में से सिर्फ २८ का, और वह भी संक्षेप में, परिचय देते हैं। इससे पाठकों को इनकी गम्भीरता का विचार करने का अवसर मिलेगा। यह विषय पटियाला राज्य की ही दृष्टि से महत्व का नहीं है, बल्कि सभी रियासतों के विचार से उपयोगी है; कारण, दुर्भाग्य से पटियाला महाराज के छोटे-बड़े नमूने अन्य राज्यों में भी रहे हैं, चाहे उनके कारनामे जनता के सामने इतने नग्न रूप से न आए हों। अस्तु; महाराजा पटियाला के विरुद्ध लगाए हुए अभियोगों में से, जिनके सम्बन्ध में वायसराय लार्ड इरविन को भी लिखा गया था, कुछ ये हैं—

(१) महाराज ने सोलन में श्री सत्यानन्द अग्निहोत्री पर उनके मकान में ही गोली चलाई। श्री अग्निहोत्री जी देव समाज के संस्थापक तथा वयोवृद्ध और बहुत प्रतिष्ठित सज्जन थे; और, सोलन पटियाला की सीमा से बाहर है।

(२) महाराजा ने एक सिक्ख पुजारी को जान-बूझ कर मोटर से कुचल दिया, और वह बेचारा जल्दी ही राज्य के अस्पताल में मर

गया। जब इस बात की खबर चारों ओर फैली तो महाराजा ने पञ्जाब के पत्रों में यह प्रकाशित कराया कि पुजारी को इसलिए मारा गया कि वह महाराजा पर हमला करना चाहता था।

(३) इलेक्ट्रिकल इंजिनियर श्री० उजागरसिंह जी ने किसी अपराध के कारण पटियाला राज्य छोड़ दिया था, उनकी स्त्री और बच्चों को बहुत सताया गया और उनका माल ज़ब्त कर लिया गया।

(४) रुड़की के श्री० अमरसिंह जी की स्त्री को महाराजा ने जबरदस्ती महल में ले लिया, और अमरसिंह जी को, एक झूठा आरोप लगा कर, जेल में डाल दिया।

(५) महाराजा पटियाला सैर-सपाटे के लिए कश्मीर गए, तब वहाँ उनके आदमी दिन-दहाड़े पंडित हरिमोहन की स्त्री को महाराजा की किश्ती पर ले गए। जो आदमी वहाँ इकट्ठे हो गए थे, वे इसका विरोध करते ही रह गए। पीछे महाराजा उस ब्राह्मण को दस हजार रुपए देने के लिए बाध्य हुए।

(६) महाराजा ने अपने एक श्वसुर गुरनामसिंह के छोटे भाई सरदार लालसिंह से बहुत आग्रह किया कि वह अपनी स्त्री से सम्बन्ध विच्छेद करके उसे महाराजा को दे दें। जब उन्होंने ऐसा करने से अन्तिम बार साफ इन्कार कर दिया तो उसके कुछ ही दिन बाद उन्हें कत्ल कर दिया गया और उनकी विधवा स्त्री महाराजा को ब्याह दी गई।

(७) महाराजा के श्वसुर गुरनामसिंह जी के मित्र सरदार बखशीश सिंह पटियाला के कमांडरनचीफ थे, उन्होंने सरदार लालसिंह के कत्ल किये जाने तथा उनकी विधवा स्त्री का महाराजा से ब्याहे जाने का विरोध किया था। उन पर सौ रुपए से कम के माल की चोरी का अपराध लगाया जाकर उन्हें कैद कर दिया गया।

(८) महाराजा ने अपने श्वसुर श्री गुरनाम सिंह के खिलाफ ब्रिटिश अधिकारियों के पास शिकायत की, पर भारत-सरकार द्वारा गुप्त जाँच की जाने पर शिकायत झूठी साबित हुई।

(९) महाराजा के अंग-रक्षक (ए० डी० सी०) कर्नल सेवासिंह और मेजर गुरदयाल सिंह का महाराजा से एक नर्तिका के सम्बन्ध में झगड़ा था, और वे दोनों संदिग्ध अवस्था में मरे।

(१०) महाराजा चैल पहाड़ियों के सुपरिटेन्डेन्ट सरदार नारायणसिंह जी से नाराज थे, क्योंकि उन्होंने महाराजा के आचारहीन इरादों के लिए पहाड़ी लड़कियाँ लाने से इन्कार किया था। महाराजा ने निर्दोष नारायणसिंह को अपमानित किया और बिना मुकदमा चलाए जेल में डाल दिया।

(११) महाराजा ने अपने चचा कुंवर रणवीरसिंह के मरने पर उनके घर की स्त्रियों को उनकी इच्छा के विरुद्ध अपने नियंत्रण में रखा और उनकी सारी सम्पत्ति जप्त कर ली।

(१२) भूतपूर्व महाराजा की एक युवा रानी ने पोलिटिकल एजन्ट को शिकायत की कि महाराजा मेरा लड़का होने पर भी मुझसे बदनीयती का व्यवहार करता है। इस पर पोलिटिकल एजन्ट ने रानी के ब्रिटिश इलाके में रहने की व्यवस्था कराई, तो भी महाराजा के आदमी उसे परेशान करते रहे; अन्त में उसके लिए एक अंगरेज रक्षक नियत किया गया।

(१३) कुछ प्रतिष्ठित मुसलमानों का शिष्ट मंडल फुलकियाँ रियासतों के पोलिटिकल एजन्ट से मिला और उससे निवेदन किया कि वह महाराजा पटियाला से अनुरोध करे कि वे मुसलिम लड़कियों को अपने महल से मुक्त कर दें, क्योंकि यह बात इसलाम तथा सिक्ख दोनों धर्मों के नियमों के विरुद्ध है कि एक धर्म का अनुयायी दूसरे धर्म की स्त्रियों से अनुचित सम्बन्ध रखे।

(१४) महाराजा की सबसे प्यारी रखेल केसर पटियाले के एक गरीब किसान की स्त्री है। महाराजा ने केसर के पति को इस मामले में चुप करने के लिए १०, ०००) रु० दे दिए, और ब्रिटिश सरकार से यह प्रार्थना की कि वह केसर की संतान को महाराजा की वैध सन्तान स्वीकार करे।

(१५) चार राजपूत लड़कियाँ, महाराजा के महल से निकलते हुए पुलिस द्वारा गिरफ़्तार की गईं। अभागी लड़कियों ने एकत्रित लोगों से कहा कि महाराजा हमें पापपूर्ण जीवन बिताने को मजबूर करता है; हम महल में जाना नहीं चाहतीं। परन्तु पुलिस ने उन्हें महल में ही रखा। उसी दिन पोलिटिकल एजंट को खबर मिली कि लड़कियाँ महल के अन्दर जिन्दा जला दी गईं; और उनका कोई नामोनिशान बाकी न रहा।

(१६) बुशायर के राजा को महाराजा पटियाला का बहुत सा कर्ज चुकाना है; उससे महाराजा को उसके सूद के रूप में अठारह पहाड़ी लड़कियाँ मिलती हैं।

(१७) जब महाराजा भारतीय क्रिकेट टीम के सम्बन्ध में लन्दन गए तो स्काटलैंड यार्ड की खुफिया पुलिस ने आपकी हरकतों पर कड़ी निगाह रखी। उसकी रिपोर्ट है कि महाराजा वहाँ बहुत बदनाम मोहल्लों में और दुश्चरित्र आदमियों में रहे।

(१८) जब पटियाला और नाभा दरबार का झगड़ा चल रहा था, महाराजा पटियाला ने नाभा के पाँच अधिकारियों को अनुचित उपायों से अपनी ओर मिला लिया—वली मोहम्मद, रफीक मोहम्मद, चरणसिंह, आसासिंह, और मोहद्दीन। इन्हें महाराजा ने ऊँची जगहें दीं।

(१९) चेटर्जी नाम का एक आदमी कपूरथला से मक्कारी और दुराचार के कारण बर्खास्त किया गया, तो महाराजा पटियाला ने उसे जल्दी ही अपने यहाँ नौकरी दे दी।

(२०) पञ्जाब पुलिस के जीवनलाल को पञ्जाब सरकार ने बेईमानी और रिश्वतखोरी के कारण बर्खास्त किया था, उसे महाराजा ने जल्दी ही एक उत्तरदायी पद प्रदान कर दिया।

(२१) पञ्जाब पुलिस का माधोराम कोकेन और दूसरे निषिद्ध पदार्थों का रोजगार करता था। वहाँ से बर्खास्त होने पर महाराजा पटियाला ने उसे अपने राज्य में नौकरी दे दी। अब वह यहाँ से ब्रिटिश जिले में कोकेन की बिक्री की व्यवस्था करता है।

(२२) महाराजा ने डाक्टर बखशीश सिंह को अपने यहाँ बम के गोले बनाने और उन्हें प्रिंस-आफ-वेल्ज पर फेंकने के लिए रखा, जिससे महाराजा नाभा को इस सम्बन्ध में फंसाया जा सके। पर डाक्टर साहब ने अन्तिम समय में इस दुष्कार्य को करने से इन्कार कर दिया और इसका भंडाफोड़ कर डाला।

(१३) जब महाराजा साहब को शासन-अधिकार मिले थे तो राज्य में प्रारम्भिक, माध्यमिक और कालिज की भी शिक्षा निश्शुल्क थी; अब सभी प्रकार की शिक्षा के लिए फीस ली जाती है।

(२४) महाराजा को अधिकार मिलने से पहले राज्य में फी आदमी जितना कर-भार था, उससे अब दूना हो गया है, तो भी राज्य पर अब पहले से सौ गुना कर्ज लदा हुआ है।

(२५) पिछले चौदह वर्ष में सार्वजनिक निर्माण कार्य में खर्च पहले से दस गुना हुआ है, जब कि शाही महलों और इमारतों में होनेवाला खर्च पचास गुना बढ़ गया है।

(२६) पटियाला राज्य दूसरे किसी भी देशी राज्य की अपेक्षा विदेशी शराब, सिगार और सिगरेट अधिक मंगाता है, और इस आयात का तीन-चौथाई से अधिक सामान अकेले महाराजा के गृहस्थ विभाग (हाउसहोल्ड डिपार्टमेंट) के उपयोग के लिए होता है।

(१७) पटियाला के विदेश-मंत्री कर्नल अब्दुलमजीद खाँ ने महाराजा के दुश्चरित्र, द्वेष-भाव, फजूलखर्ची और ऐयाशी के बारे में शिकायत की थी; उन्हें अपने पद से त्यागपत्र देने के लिए बाध्य किया गया।

(२८) महाराजा पहले योरपीय महायुद्ध में ब्रिटिश सरकार के लिए बहुत सहायक हुए थे, और वे भारत-सरकार के आदमियों को अपने यहाँ रखने में बहुत उदार हैं। इसलिए वह महाराजा के सब दोषों को देखती रहती है, और उन्हें कुछ नहीं कहती। एक बार उसने विचार किया था कि महाराजा को पटियाला छोड़ने के लिए कहे और उनकी जगह एक कौंसिल नियत करे, जिसके अध्यक्ष पंडित दयाकिशन कौल हों। परन्तु पीछे राजनीतिक कारणों से यह विचार स्थगित ही रखा गया।

अभियोगों की गम्भीरता—ये अभियोग कितने गम्भीर हैं, यह लिखने की आवश्यकता नहीं; साधारण बुद्धि वाला और तटस्थ पाठक भी यह अच्छी तरह समझ सकता है। इंगलैंड का 'लन्दन टाइम्स' पत्र ब्रिटिश साम्राज्यशाही का समर्थक रहा है, उसने भारतीय या रियासती जनता की हित-चिन्तना करना अपना कर्तव्य नहीं समझा। पर इन अभियोगों के प्रसंग में उसे भी राजाओं के दूषित शासन, और ब्रिटिश सरकार द्वारा उनके संरक्षण की कड़ी आलोचना करनी पड़ी थी; यह पहले (बारहवें अध्याय में) कहा जा चुका है।

लोक-परिषद, और सरकार की कार्रवाई—जैसा कि बारहवें अध्याय में बताया जा चुका है, लोकपरिषद ने इन अभियोगों के सम्बन्ध में खुली जाँच की माँग की। पर सरकार अपने ऐसे लाडले सम्राट्-भक्त के विरुद्ध जाँच क्यों करने लगी! आखिर, परिषद ने इस

काम के लिए अपनी कमेटी नियत की, जिसने सविस्तर अंग्रेजी रिपोर्ट* प्रकाशित की। परिषद् ने सरकार को चुनौती दी कि या तो वह उस रिपोर्ट के आधार पर अपराधियों के विरुद्ध कार्रवाई करे या परिषद् पर ही मुकदमा चलाए। आखिर, सरकार ने महाराज के मित्र मि० फिट्ज़-पैट्रिक को जाँच के लिए नियत किया। इन पर जनता को कुछ विश्वास न था, उसने जाँच का वहिष्कार किया। सरकार ने रिपोर्ट प्रकाशित न करके महाराज को निर्दोष ठहरा दिया। उससे और आशा ही क्या थी!

हिदायत १९८८—सन् १९३१-३२ के राष्ट्रीय आन्दोलन के समय यहाँ (तथा नाभा और झींध में) 'हिदायत १९८८' नाम का दमनकारी कानून जारी किया गया। इसके अनुसार धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक या राजनीतिक हर प्रकार की सभा समिति की स्थापना गैर-कानूनी ठहरा दी गई, जब तक उसकी संस्था की रजिस्टरी न हो जाय। रजिस्टरी सिर्फ उसी संस्था की की जाती, जिसके लिए स्थानीय पुलिस-सबइन्स्पेक्टर की सिफारिश होती। इस हिदायत को भंग करनेवालों के लिए पाँच से दस वर्ष तक की सख्त कैद की सजा निर्धारित की गई। इसी प्रकार यहाँ प्रेस और पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन पर कड़ा प्रतिबन्ध लगाया गया। आरम्भ में यह कानून संकट-काल का सामना करने के लिए जारी किया गया था; पीछे इसे स्थायी कर दिया गया।

नये महाराजा का प्रजा-मंडल के प्रति शत्रुता का भाव—सन् १९३८ में महाराजा भूपेन्द्रसिंह का देहान्त होने पर उनके पुत्र यादवेन्द्रसिंह जी गद्दी पर बैठे। प्रजामंडल का एक डेप्यूटेशन

---

* 'पटियाला पर अभियोग।'

जुलाई १९३९ में नये महाराजा साहब से मिला। उससे महाराजा ने जो बातें कहीं, वे बहुत ही चुभनेवाली हैं, उनके वक्तव्य का महात्मा गांधी ने 'हरिजन' में उल्लेख किया, और दूसरे भी अनेक पत्र-पत्रिकाओं में वह चर्चा और आलोचना का विषय रहा। उससे जनतंत्र-विरोधी शासकों की लड़ाकू मनोवृत्ति का अच्छा परिचय मिलता है, महाराजा साहब ने कहा था—

'मेरे पूर्वजों ने राज्य को तलवार से जीता है, और मेरा इरादा इसे तलवार से रखने का है। मैं अपनी प्रजा के प्रतिनिधित्व के लिए या उसकी तरफ से बोलने के वास्ते किसी संस्था को मान्य नहीं करता। मैं ही उसका एकमात्र प्रतिनिधि हूँ। राज्य के अन्दर प्रजामंडल जैसी कोई संस्था रहने नहीं दी जा सकती। अगर तुम कांग्रेस का कार्य करना चाहते हो तो राज्य से बाहर निकल जाओ। कांग्रेस ब्रिटिश सरकार को डरा सकती है, पर अगर वह कभी मेरे राज्य में दखल देने की कोशिश करेगी तो वह मुझे एक भयानक विरोधी पाएगी। मैं अपने राज्य की सीमाओं में अपने झंडे के सिवाय, और कोई झंडा सहन नहीं कर सकता। तुम प्रजामंडल का कार्य बन्द कर दो, वर्ना मैं ऐसे दमन को काम में लाऊंगा कि तुम्हारी आनेवाली पीढ़ियाँ भी उसे भूल न पाएगी। जब मैं अपनी 'प्यारी प्रजा' के कुछ आदमियों को दूसरे पक्ष में जाते देखता हूँ तो मेरे दिल पर बड़ी चोट लगती है। मैं तुम्हें नसीहत करता हूँ कि प्रजामंडल से सम्बन्ध-विच्छेद कर दो और सब आन्दोलन को बन्द कर दो, वर्ना याद रखो मैं एक सैनिक व्यक्ति हूँ। मेरी बात खरी होती है, और मेरी गोलियाँ सीधी जाती है।" ऐसे भाषणों ने जनता का अथवा स्वयं राजाओं का कितना हित किया है!

सन् १९३९ के बाद—सन् १९३९ में लुधियाना में अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद का अधिवेशन हुआ, उसे सफल बनाने

के लिए प्रजामंडल ने खूब उद्योग किया। अधिकारियों ने फिर प्रमुख कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया; इनमें अन्य सज्जनों के अतिरिक्त सुनाम के प्लीडर कामरेड वृषभान भी थे। ये गिरफ्तारियाँ हिदायत १६८८ के अनुसार की गई थीं। इस हिदायत को रद्द कराने के लिए सत्याग्रह हुआ। जत्था निकाला गया। उसे जिला-अधिकारियों ने यह आश्वासन दे दिया कि महाराज इसे रद्द या संशोधन करने का विचार कर रहे हैं, परन्तु यह कुछ न हुआ। महायुद्ध आरम्भ हो जाने से तो अधिकारियों को यह दमन, अस्त्र सुरक्षित रखने का और भी अधिक बहाना मिल गया। प्रजामंडल पर प्रतिबन्ध लगा रहा, उसका रोजमर्रा का साधारण कार्य भी न हो सका। इन कठिनाइयों तथा ऐसी परिस्थिति के होते हुए भी वह जनता में जीवन-ज्योति बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील रहा।

प्रजामंडल के दबाव के कारण, और इस बात का दिखावा करने के लिए भी कि नरेन्द्रमंडल की जनवरी १६४६ की घोषणा पर अमल किया जा रहा है, राज्य ने २० मार्च को 'हिदायत १६८८' उठा ली, परन्तु इसके उठानेवाली आज्ञा से ही दो नये कानून जारी कर दिए—(१) 'अप्रीति-विरोधक पटियाला राज्य रक्षा कानून २००२' और (२) 'राजद्रोही सभा निवारक कानून २००२'। हिदायत को उठाने से पहले 'सन् १८१८ का रेग्यूलेशन ३' लागू कर दिया गया था, जो बहुत ही दमनकारी है। इस प्रकार हिदायत को उठा कर नागरिकों को जो अधिकार दिया गया, उससे अधिक उपर्युक्त तीन कानूनों को जारी करके उनसे छीन लिया गया। ऐसे कानूनों के होते हुए नागरिकों की कोई स्वाधीनता नहीं रह सकती।

राज्य की नीति नागरिकों को स्वाधीनता की वायु में सांस न लेने देकर उन्हें हर प्रकार दबाना है, यह बात भटिंडा में फौजदारी दंड विधान की धारा १४४ के लगाए जाने से, और नारनौल और भटिंडा

में सामूहिक गिरफ्तारियाँ किए जाने से भी अच्छी तरह जाहिर हो जाती है। भटिंडा में १० मार्च को प्रजामंडल की सभा होनेवाली थी, हर प्रकार से शान्ति थी, पर सभा और जलूस को रोकने के लिए दस दिन के वास्ते उपर्युक्त दफा १४४ लगा दी गई। पीछे ४६ गिरफ्तारियाँ की गईं, और जहाँ-कहीं लोगों ने इसके विरोध में हड़ताल की, वहाँ उन्हें निर्दयता-पूर्वक पीटा गया। २५ मार्च को नारनौल में दो कार्यकर्ता गिरफ्तार किए गए।

प्रजा-मंडल की माँग—प्रजामंडल अपनी स्थापना के समय से पटियाला राज्य की जनता की भावनाओं और आकांक्षाओं को प्रकट करता रहा है, यद्यपि उसे अपने जीवन में तरह-तरह के बहुत से कष्ट उठाने पड़े हैं। वह जनता के विविध वर्गों का एक जोरदार संगठन है। १६ दिसम्बर १९४८ को उसकी स्थायी समिति ने पटियाला के प्रधान मंत्री की सेवा में एक विस्तृत मेमोरेंडम (याददाश्त) भेजा, उसमें ये माँगें उपस्थित की गई थीं—

१—वर्तमान साम्प्रदायिक नीति का अन्त हो।

२—वर्तमान स्वेच्छाचारी शासन को समाप्त करके उसकी जगह अन्तर्कालीन लोकप्रिय सरकार स्थापित की जाय।

३—बालिग मताधिकार, संयुक्त निर्वाचक संघ, और प्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर पटियाला-राज्य-विधान-सभा बनाई जाय।

४—भारतीय विधान-सभा में रियासती जनता के प्रतिनिधि हों।

५—पूर्णतया निर्वाचित म्युनिसिपल और छोटे कस्बों की कमेटियों का संगठन हो, और निर्वाचित जिला-बोर्डों की स्थापना हो।

६—बिस्वेदारी प्रथा को उठाने की कार्रवाई तुरन्त की जाय।

७—रसद (सप्लाई) विभाग की व्यवस्था में लोकतंत्रात्मक सुधार

हो; स्पेशल 'परमिट' (अनुमति-पत्र) और राशन की चीजों के विषम वितरण की पद्धति का अन्त किया जाय।

८—उचित ढंग का औद्योगीकरण, और मजदूरों सम्बन्धी कानूनों को ब्रिटिश भारत के ढंग पर निर्माण किया जाय।

९—भारतीय राष्ट्रीय सेना (आई० एन० ए०) के सिपाहियों को नौकरी दी जाय।

१०—लोकहित की युद्धोत्तर योजनाएँ जनता के सहयोग से काम में लाई जायँ।

११—आय-कर और चुंगी के कानूनों का संशोधन हो।

१२—जेल-सुधार किया जाय।

विशेष वक्तव्य—यद्यपि महाराजा पटियाला ने इस वर्ष (१९४७) नवाब भोपाल की प्रतिक्रियावादी बातों में न आकर, भारतीय विधान-सभा में राज्य के प्रतिनिधि भेजकर तथा भारतीय सङ्घ में शामिल होकर बुद्धिमानी का परिचय दिया, वे लोकतन्त्री शासन की भावना की दृष्टि से बहुत पिछड़े हुए हैं। आप ने चार मन्त्रियों में से सिर्फ दो गैर-सरकारी होने की घोषणा की है, और उनका भी लोकप्रिय होना आवश्यक नहीं ठहराया। महाराज ने अपने तत्वावधान में उत्तरदायी शासन के आधार पर राज्य के लिए जो विधान बनाने का निश्चय प्रकट किया है, वह अप्रेल १९५२ तक पूरा होगा। इससे स्पष्ट है कि या तो जनता में अभी यथेष्ट जागृति नहीं है, या महाराजा उसका ठीक मूल्यांकन नहीं कर रहे हैं। उत्तरदायी शासन के लिए सन् १९५२ तक ठहरना राजा या प्रजा किसी के लिए भी शोभनीय नहीं।

नाभा

झंडा सत्याग्रह—यह राज्य जनता की नागरिक स्वतन्त्रता अपहरण करनेवाले प्रमुख राज्यों में से है। लोगों को बराबर यह डर

लगा रहा कि न-मालूम कब किसकी तलाशी ले ली जाय या किसी पर झूठा मुकदमा चला दिया जाय। पुलिस द्वारा मार-पीट होना और लोगों को बेइज्जत किया जाना साधारण बात रही है। राष्ट्रीय साहित्य की तो बात दूर, सार्वजनिक सभाओं की रिपोर्टें आदि रखना भी खतरे से खाली नहीं रहा। कुछ वर्ष हुए यहाँ राष्ट्रीय झंडा लगाया गया था, पुलिस ने उसे उतार दिया। सत्याग्रह शुरू हुआ। उस समय प्रतिष्ठित नागरिकों तक से पुलिस ने दुर्व्यवहार किया। प्रजामंडल नाभा के अध्यक्ष श्री सन्तराम जी वकील, स्वयं भुक्तभोगी सज्जन हैं। यहाँ कार्यकर्ताओं ने अपने जीवन में, सार्वजनिक सेवा के उपलक्ष्य में कैसी कैसी यातनाएँ उठाई हैं!

रोमांचकारी दमन—श्री सन्तराम जी द्वारा प्रकाशित एक विज्ञप्ति का कुछ अंश इस प्रकार है—'जत्थे को खास मारपीट की जगह ले जाया गया। वालंटियरों (स्वयंसेवकों) को दिन भर कड़कती धूप में बैठाए रखा। रात के वक्त उनको अलग-अलग कोठरियों में बन्द करके उनके चूतड़ों पर जूतों से मारपीट की गई। वालंटियरों के पाखाने के रास्ते खून जारी हो गया। बाद में उनके जख्मों पर बारीक नमक पीस कर डाला गया। वालंटियरों के चिल्लाने पर फिर जख्मों की जगह पर सख्त मारपीट की गई। दो दिन और दो रात इसी तरह तङ्ग किया गया। इस बीच में किसी वालंटियर को खुराक या पानी नहीं दिया गया। अन्त में नीम-बेहोशी (अर्द्ध मूर्च्छा) की हालत में उन्हें रियासती हद से बाहर लेजाकर छोड़ दिया गया। रिहाई के बाद भी उनके पाखाने के रास्ते खून जारी था। डाक्टरी मुआयना कराया गया।'

निरंकुश शासन में ऐसी घटनाओं का होना कुछ आश्चर्यजनक नहीं। अस्तु, ऐसी दारुण परिस्थितियों में श्री० सन्तराम जी वकील जैसे

जिन त्यागवीरों ने तरह-तरह की मुसीबतें उठाकर कांग्रेस और प्रजा-मंडल का स्वाभिमान और स्वतन्त्रता सूचक झंडा ऊँचा रखने का प्रयत्न किया, और नागरिक स्वाधीनता का मार्ग प्रशस्त किया, उन्हें भावी नागरिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करेंगे, और इतिहासकार उनकी स्मृति बनाए रखेंगे। निदान, प्रजामंडल अनेक बाधाएँ होते हुए भी उत्तरदायी शासनपद्धति प्रचलित कराने का प्रयत्न करता रहा है।

नागरिकों की माँगें—इस राज्य के नागरिकों ने मन्डीफूल में एक विराट् सभा करके अपनी माँगें निश्चित की थीं, उनका विस्तृत ब्योरा एक पुस्तिका ('मतालबात रियासत नाभा') में दिया गया है, जो प्रजामंडल के अध्यक्ष श्री० सन्तराम जी वकील ने उर्दू में प्रकाशित की है। इन माँगों से पञ्जाब की अन्य रियासतों की शासन सम्बन्धी स्थिति पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है; ये संक्षेप में नीचे दी जाती हैं :—

१—नागरिक स्वतन्त्रता को कुचलनेवाली हिदायत १९८८ रद्द की जाय। २—राष्ट्रीय झंडा फहराने की स्वतन्त्रता हो। ३—शिक्षा प्रचार हो, एक कालिज स्थापित किया जाय, प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य हो, गाँवों में, तथा लड़कियों के लिए यथेष्ट व्यवस्था रहे। ४—सङ्घ शासन में सम्मिलित होने के लिए जरूरी शर्त यह है कि केन्द्रीय व्यवस्थापक मंडल में नाभा राज्य की जनता के चुने हुए प्रतिनिधि लिये जायँ। ५—राज्य में उत्तरदायी शासन स्थापित किया जाय। व्यवस्थापक सभा और म्युनिसपेलटियाँ, निर्वाचित प्रतिनिधियों की, स्थापित की जायँ। ६—जत्थाबन्दी, सभा, सम्मेलन, भाषण, लेखन और प्रकाशन की स्वतन्त्रता हो। ७—लगान में कमी की जाय, वह आय-कर के सिद्धान्त पर निर्धारित हो। ८—अनुचित कर हटाये जायँ; आबयाना (सिंचाई

या आबपाशी का महसूल) कम किया जाय। ९—पुराने ऋण रद्द किये जायँ। १०—आलीशान इमारतें बनवाने के बजाय दस्तकारी के स्कूल और कालिज खोले जायँ, जिससे बेकारी की समस्या हल हो। ११—विस्वेदारी प्रथा उठा दी जाय। १२—किसानों को विरासत का अधिकार हो। १३—'सीगा लावारसी' की व्यवस्था न्यायानुकूल होनी चाहिए। १४—कानून का शासन होना चाहिए, कानून मनमाना न हो, शासन और न्याय पृथक्-पृथक् हों। १५—पुलिस के व्यवहार में सुधार हो, वह वास्तव में नागरिकों के जान-माल की रक्षक हो। १६—निम्न श्रेणी के व्यक्तियों, मेहनत-मजदूरी करनेवाले मजदूरों और किसानों पर लगानेवाला कर, एवं विधवा स्त्रियों से 'चक्की चूल्हे' के नाम से लिया जानेवाला कर बन्द किया जाय। १७—राजकीय आय व्यय की रिपोर्ट सर्वसाधारण की जानकारी के लिए प्रकाशित की जाय। १८—पुलिस और फौज के खर्च में कमी की जाय। १९—न्याय बहुत मँहगा है, स्टाम्प तथा नकल-फीस अधिक है, इसमें सुधार किया जाय, जिससे ग़रीबों को भी न्याय मिल सके। २०—राज्य से निकाले हुए व्यक्तियों को वापिस आने दिया जाय, और उनकी जब्त की हुई जायदाद उन्हें दे दी जायँ २१—चुङ्गी, हाउस-टेक्स, तथा रूई की गाँठों का कर कम किया जाय, जिससे आदमी मण्डियों की दुकानें छोड़ कर चले जाने को बाध्य न हों। २२—स्थान-स्थान पर सार्वजनिक पुस्तकालयों की स्थापना की जाय। २३—रियासत में सत्तर-सत्तर वर्ष के बूढ़े पदाधिकारी बने हुए हैं, उन्हें पेन्शन देकर अन्य व्यक्तियों को अवसर दिया जाय; ५५ सालवालों को पेन्शन देने का नियम रहे। २४—रिश्वत का बाजार गर्म है, उसे बन्द किया जाय। २५—नागरिकों के स्वास्थ्य और चिकित्सा की समुचित व्यवस्था की जाय। २६—प्रेसीडेन्ट को २५००) रु० के बजाय ५००) रु० माहवार दिये जायँ; ऊँचे अफसरों का वेतन कम करके, नीचे के

कर्मचारियों का वेतन बढ़ाया जाय। राजकीय नौकरियाँ स्थानीय व्यक्तियों को दी जायँ। २७—अनावश्यक पद हटा दिये जायँ। २८—प्रेसीडेन्ट आठ-दस साल से है, उसका चुनाव प्रति पाँचवें वर्ष होना चाहिए। २९—सड़कों का निर्माण और सफाई का प्रबन्ध होना चाहिए। ३०—मवेशियों के लिए चरागाह की व्यवस्था होनी चाहिए। ३१—पिछले सरकारी हिसाब की जाँच होकर जनता का समाधान किया जाना चाहिए। ३२—किसानों को नहरी पानी मिलने का उचित प्रबन्ध होना चाहिए, इस समय रिश्वत बहुत चलती है। ३३—बेगार-प्रथा बन्द कर दी जानी चाहिए।

विशेष वक्तव्य—इनमें से कुछ माँगें अब पूरी हो गई हैं; पर जो बाकी हैं, वे ही क्या कम हैं। कई माँगें तो किसी भी सभ्य राज्य के लिए कलंक हैं। जनता अपनी वर्तमान दशा से बहुत असन्तुष्ट है, यह दशा उसके लिए असहनीय है। पिछले दिनों यहाँ जोर का सत्याग्रह हुआ था; खेद है कि उस सत्याग्रह सम्बन्धी आवश्यक सामग्री, अब पुस्तक छपने के समय, हमारे सामने न होने से उसके बारे में खुलासा नहीं लिखा जा सकता। अस्तु, अब जनता पूर्ण उत्तरदायी शासन प्राप्त किए बिना संतुष्ट न होगी।

झींद

फुलकियाँ एक्ट और दमन—जनता के सार्वजनिक कार्यों पर यहाँ भी बड़ा प्रतिबन्ध रहा है, हाँ; पटियाला और नाभा की अपेक्षा कुछ कम। सन् १९३१-३२ के राष्ट्रीय आन्दोलन के समय यहाँ 'फुलकियाँ एक्ट' नामक दमनकारी कानून बनाया गया, जिसके कारण कोई भी संस्था सरकारी मंजूरी के बिना नहीं बन सकती थी, यहाँ तक कि धार्मिक संस्थाओं की भी रजिस्टरी करानी पड़ती थी। राजनीतिक संस्थाओं के लिए तो इजाजत ही नहीं दी जाती थी। राजनीतिक प्रचार

अथवा भाषण करनेवालों को बड़ी-बड़ी सजाएँ दी जाती रही हैं। जाब रियासती प्रजामंडल के सेक्रेटरी सरदार भगवानसिंहजी का अंग्रेजी में प्रकाशित पुस्तक* में यहाँ के, डाक्टर बिहारीलाल डोग्रा के मंत्रित्व-काल के, कुशासन का जोरदार वर्णन किया गया है। उस समय लगभग दो हजार सत्याग्रही कैद किए गए थे।

पबलिक यूनियन की स्थापना—सन् १६३८ में श्री० हंसराज जी बी० ए० 'रहबर' आदि महानुभावों ने बड़ी मुश्किल से 'पबलिक यूनियन' नामक संस्था इस राज्य को राजधानी संगरूर में स्थापित की। इसके नियम बहुत सीधेसादे और नर्म थे। इसे 'फुलकियाँ कानून' के अनुसार मंजूर कराया गया। इससे पहले देहातों में कुछ कार्यकर्त्ता लुक-छिपकर रहते थे; न तो उनकी कोई संगठित संस्था ही थी, और न वे कुछ नियमित कार्य ही कर सकते थे। अब पबलिक यूनियन द्वारा वे एक-दूसरे के सम्पर्क में आने लगे

प्रजामंडल—सन् १६३६ में अ० भा० देशी राज्य लोक-परिषद का अधिवेशन हुआ, उससे पंजाब के अन्यान्य स्थानों में, इस राज्य पर भी अच्छा प्रभाव पड़ा। 'पबलिक यूनियन' का नाम बदलकर 'प्रजा मंडल' कर दिया गया; अनुदार सदस्यों को इससे अलग होना पड़ा। राज्य भर में प्रजामंडलों की स्थापना की गई। राजनीतिक व्याख्यानों के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया। पटियाला के प्रजा मंडल की मीटिंग भी प्रायः संगरूर (झींद) में होने लगीं। झींद का प्रजामंडल दिनोंदिन उन्नति करने लगा। परन्तु सन् १६४० में राज्य ने कुछ कार्यकर्त्ताओं को भारत-रक्षा-कानून के अनुसार नजरबन्द कर दिया। इससे जनता का रोष बढ़ा, सत्याग्रह आरम्भ होने की सम्भावना हो गई। इस पर

*Mal-Administration in the Jind State.

अधिकारियों ने कुछ कार्यकर्त्ताओं को प्रलोभन में फँसा लिया और कुछ को जेल में डाल दिया। राज्य में राजनीतिक बन्दियों से अच्छा व्यवहार करने का जो कानून बना था, वह रद्द कर दिया गया। कई कार्यकर्त्ता जेलों की सख्तियों को सहन न कर सके। निदान, आन्दोलन बाहरी रूप से दब गया। तथापि जनता के मन से राजनीतिक सुधार की भावना नष्ट नहीं हुई। कार्यकर्त्ता परिस्थिति के अनुसार कार्य करते रहे। वे उत्तरदायी शासन और नागरिक अधिकारों की बड़े जोर से माँग कर रहे हैं, और उसे लेकर रहेंगे।



उन्नीसवाँ अध्याय

काठियावाड़ और गुजरात के राज्य

[भावनगर, राजकोट, बड़ोदा]

[१]

काठियावाड़ प्रायःद्वीप में छोटे-बड़े लगभग तीन सौ राज्य हैं। कुछ खासे बड़े हैं, तो अधिकांश बहुत छोटे-छोटे हैं। सब में प्रायः एकतंत्री शासन है।

काठियावाड़ की जन-जागृति का महत्त्व—काठियावाड़ में जन-जागृति का कार्य काफी समय से हो रहा है। यहाँ राजनीतिक कान्फ्रेंस सन् १९१९ से काम कर रही है। इसके सभापतियों में श्री० वहलभाई पटेल, अब्बासतैयब जी, म० गांधी, ए० वी० ठक्कर, वल्लभ-भाई पटेल, जी० आर० अभ्यंकर आदि महानुभाव रहे हैं। काठियावाड़

के आन्दोलनों और संगठनों का सम्बन्ध म० गांधी तथा अखिल भारतीय ख्याति वाले दूसरे नेताओं से रहा है और यहाँ की संस्थाओं के निश्चयों का प्रभाव देश में व्यापक रूप से पड़ा है। म० गांधी का जन्म पोरबन्दर रियासत में हुआ है, जो काठियावाड़ में ही है।

राजनीतिक कान्फ्रेंस ; म० गांधी का सभापतित्व— काठियावाड़ राजनीतिक कान्फ्रेंस का तीसरा अधिवेशन भावनगर में ८ जनवरी १९२५ को म० गांधी के सभापतित्व में हुआ। म० गांधी इस वर्ष कांग्रेस के सभापति थे। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि मेरे विचार कांग्रेस के विचार न समझे जायँ। आपने अपने भाषण में राजाओं की योरप-यात्राओं और पश्चिमी रंग-ढंग के अनुकरण तथा अंधाधुंध अपव्यय की निन्दा की, और उनसे मालगुजारी तथा आबकारी नीति में सुधार करने की अपील की। आपने जनता से सत्याग्रह, खादी-प्रचार, हिन्दू मुसलिम एकता, और अस्पृश्यता-निवारण आदि का अनुरोध किया।

चौथा अधिवेशन— अगला अधिवेशन तीन वर्ष बाद प्रो० अमृतलाल ठक्कर के सभापतित्व में, पोरबन्दर में हुआ। पोरबन्दर में राजा और प्रजा के आपसी सम्बन्ध बहुत अच्छे थे। महाराजा साहब ने सभापति और प्रसिद्ध अतिथियों का राज्य की ओर से स्वागत-सत्कार करके परिषद् की स्वागतकारिणी की सहायता की थी। आपने दीवान के साथ महाराजा साहब कुछ समय के लिए परिषद् के अधिवेशन में भी पधारे थे। यह बात अब भी बहुत से राजाओं के लिए शिक्षाप्रद है।

सभापति जी ने अपने विचारपूर्ण भाषण में राजाओं से युग की भावना को समझने और जनता को भाषण, लेखन और सम्मेलन की स्वतंत्रता, जान-माल की रक्षा आदि के प्रारम्भिक अधिकार देने की अपील की। आपने रियासती शासन के दोषों को बतलाते हुए उचित

मालगुजारी-पद्धति प्रचलित करने और बेगार बन्द करने के लिए कहा। काठियावाड़ के छोटे-छोटे क्षेत्रों में रेलवे की व्यवस्था अलग-अलग होने से यात्रियों को बहुत असुविधा और कष्ट होते हैं, सभापति जी ने इसकी ओर राजाओं का ध्यान दिला कर उन्हें सम्मिलित व्यवस्था करने का परामर्श दिया। जनता से आपने रचनात्मक कार्य करते रहने की अपील की। अन्त में आपने यह आकांक्षा प्रकट की कि काठियावाड़ के सब राज्यों का एक ही ढंग से उत्तरदायी शासन हो, और सब का मिल कर एक संघ स्थापित हो।

परिषद् के प्रस्ताव; अपने ऊपर अंकुश—परिषद के प्रस्ताव बहुत कुछ इस भाषण में प्रकट किये हुए विचारों के ही विषयों के थे। उसका मुख्य प्रस्ताव, जिसे म० गांधी ने उपस्थित किया, और जिससे परिषद ने स्वयं अपने ऊपर एक अंकुश लगाकर अपनी मर्यादा स्थिर की, यह था—

"राजा प्रजा के बीच किसी प्रकार की गलतफहमी पैदा न होने पावे, और अपनी मर्यादित शक्ति को स्वीकार करने के लिए, तथा कुछ समय से व्यवहार में लाई जाने वाली प्रथा के अनुकूल यह परिषद निश्चित करती है कि यह किसी राज्य के बारे में उसकी व्यक्तिगत निन्दा या टीका रूप कोई प्रस्ताव पास नहीं करेगी।"

महात्मा जी ने अपने गम्भीर भाषण में इस प्रस्ताव के विविध पहलुओं को स्पष्ट करते हुए इसकी उपयोगिता, समझाई थी। पीछे आपका, इस विषय पर 'हिन्दी नवजीवन' में एक सविस्तर लेख छपा। कुछ समय बाद, २१ जुलाई १६३१ के 'हिन्दी नवजीवन' में आप का लेख फिर प्रकाशित हुआ।

कार्यकर्ताओं का अनुशासन—यद्यपि महात्मा जी की विचार-धारा सब कार्यकर्ताओं को पसन्द न थी, तो भी उसे एक बार स्वीकार

कर लेने के बाद उन्होंने उसके अनुसार ही कार्य किया। महात्मा जी के पिछले लेख के ढाई वर्ष बाद 'काठियावाड़ स्टेट्स पीपल्स कान्फ्रेंस' का अधिवेशन ५ नवम्बर १९३१ को अमरेली में हुआ। उसके सभापति श्री प्रोफेसर जी० आर० अभ्यंकर थे। कान्फ्रेंस के संयोजकों ने उनके सामने यह स्पष्ट कर दिया था कि उन्होंने ऐसी ही समस्याओं पर विचार करने का निश्चय किया है, जिनका सम्बन्ध न सिर्फ काठियावाड़ी राज्यों से हो, वरन भारतवर्ष के सभी राज्यों से समान रूप से हो, तथा जो इस समय अत्यन्त महत्व की हों, जैसे संघ विधान, देशी राज्य रक्षा कानून, बीकानेर राजद्रोह और षड्यन्त्र का मुकद्दमा। सभापति जी ने अपने भाषण में ऐसे ही विषयों पर प्रकाश डाला था।

खासकर काठियावाड़ के विविध राज्यों में होनेवाली परिषदों या सम्मेलनों में बहुत समय तक यही नीति बर्ती गई।

राजाओं का व्यवहार—खेद है कि कार्यकर्ताओं के इस अनुशासन और संयम की राजाओं ने कुछ कद्र न की। बल्कि यह कहा जा सकता है कि उन्होंने इसका दुरुपयोग किया या इससे अनुचित लाभ उठाया। श्री० डाक्टर पट्टाभि सीतारामैया को अ० भा० देशीराज्य लोकपरिषद के कराची अधिवेशन (जुलाई १९३९) में सभापति-पद से भाषण देते हुए यह कहना पड़ा था कि म० गांधी की बात मानकर काठियावाड़ राजनीतिक कान्फ्रेंस ने किसी राज्य की व्यक्तिगत निन्दा या आलोचना न करने का प्रस्ताव पास किया तो भी जब धारंगध्रा राज्य के निवासियों ने कान्फ्रेंस को धारंगध्रा में आमंत्रित किया तो यह स्थान एक महत्वपूर्ण सत्याग्रह का केन्द्र बन गया। राज्य ने कान्फ्रेंस पर प्रतिबन्ध लगा कर उसका होना रोक दिया। गिरफ्तारियाँ और लाठी-वर्षा खुलकर की गई; लाठियों की मार से वे स्त्रियाँ भी न बचीं, जो इस आन्दोलन का समर्थन करने के लिए आई। पीछे

अधिकारियों से समझौता हुआ, पर राज्य ने उसकी उपेक्षा की। एक निष्पक्ष जाँच-समिति नियुक्त की गई, तो राज्य ने उस पर भी रोक लगा दी। तथापि जाँच-समिति ने गवाहियाँ लीं, और अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की, जिससे पुलिस और उच्च अधिकारियों की ज्यादतियाँ सर्वसाधारण के सामने आईं। स्थानीय नेताओं को राज्य से बाहर निकाला गया था। लोगों ने लम्बी हड़ताल की। जनता ने सत्याग्रह किया। इस बीच में देश भर में व्यापक आन्दोलन छिड़ गया। अन्त में अधिकारियों द्वारा कैदियों को बिना शर्त रिहा करने पर कार्यकर्ताओं ने सत्याग्रह आन्दोलन बन्द कर दिया। यद्यपि आन्दोलन उन अधिकारियों को निकलवा देने में सफल हुआ, जिन्होंने अपने कार्यकाल में दमन नीति को खूब प्रोत्साहन दिया था, जनता की प्रमुख शिकायतें बनी रहीं।

विशेष वक्तव्य—राजाओं की ऐसी उपेक्षा से लोकमत उनके विरुद्ध बढ़ता जाता है। यदि राजा यह समझते हैं कि हमने कार्यकर्ताओं की अहिंसक नीति को असफल करके विजय प्राप्त कर ली है, तो यह विजय स्वयं उन राजाओं के लिए हानिकारक और घातक है। क्या राजा लोग चाहते हैं कि जनता में हिंसा और विद्रोह की भावना इतनी प्रबल हो जाय कि वह कार्यकर्ताओं के नियंत्रण में न रह कर राजाओं का अस्तित्व मिटाने के लिए कटिबद्ध हो जाय।

काठी राज्यों में सन बयालीस के आन्दोलन का रूप यद्यपि व्यापक था, पर वह लम्बे अर्से तक न चल सका। कितनी ही जगह लाठी-चार्ज हुए और दमन करने में विभिन्न रियासतों में प्रतियोगिता रही। यह स्पष्ट है कि अभी इन राज्यों में जनता की जागृति ऐसी नहीं हुई है कि राजा लोग उसका लोहा मानें; पर इसमें सन्देह नहीं कि राजाओं का दमन और दुर्व्यवहार भी जन-जागृति बढ़ाने में सहायक ही हो रहा है।

काठी राज्यों के विषय में सामूहिक रूप से इतना लिख कर अब नमूने के तौर से कुछ राज्यों के बारे में अलग-अलग विचार किया जाता है।

भावनगर

इस राज्य का क्षेत्रफल २९६१ वर्गमील, जनसंख्या पाँच लाख से अधिक, और वार्षिक आय लगभग दो करोड़ रुपए है। इस राज्य की प्रधानता इसके बन्दरगाहों के कारण है।

प्रजा-परिषद् से पहले—यद्यपि यहाँ के दीवान सर प्रभाशङ्कर पट्टनी ने किसानों को ऋण-मुक्त करने के लिए अपने ढङ्ग का आदर्श काम किया, राज्य ने शासन-सुधारों में प्रगति का विशेष परिचय नहीं दिया। महाराजा साहब दीवान की सहायता से ही शासन-कार्य चलाते रहे हैं। प्रजा-परिषद की स्थापना (सन् १९२३) से पहले यहाँ एक सलाहकार संस्था थी, इसके सब सदस्य नामजद होते थे। इसे 'प्रजा-प्रतिनिधि' कहा जाता था। इसे स्व-महाराजा भवसिंह जी ने १९१८ में स्थापित किया था। इसे साल भर में केवल पाँच प्रश्न पूछने का अधिकार था। यह किसी प्रकार लगभग दस वर्ष का जीवन बिता कर अपने आप समाप्त हो गई।

प्रजा-परिषद का आन्दोलन; असन्तोषजनक सुधार—सन् १९२३ से भावनगर प्रजा-परिषद का आन्दोलन चलता रहा। यह आन्दोलन इस बात के लिए था कि पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित किया जाय, और राज्य का विधान बनाने के लिए गैर-सरकारी सदस्यों की समिति नियुक्त की जाय। परिषद की बढ़ी हुई शक्ति और जनता के आग्रह के फल-स्वरूप मई १९३९ में महाराजा श्रीकृष्ण कुमारसिंह जी ने सुधारों की घोषणा की। ये सुधार नाममात्र के थे। एक साल से

अधिक समय बीतने के बाद सुधारों की रूपरेखा प्रकाशित की गई। इसके अनुसार धारा सभा स्थापित करने और उसके ५५ सदस्यों में ३३ सदस्य निर्वाचित रखने और कुछ विभाग एक मन्त्री को सौंपे जाने का निश्चय किया गया। इसके बाद सवा साल और गुजर जाने पर अक्तूबर १६४१ में दूसरी सूचना प्रकाशित की गई कि राज्य में धारासभा स्थापित की जाती है। परिस्थिति अनुकूल न होने से सदस्यों के निर्वाचन की व्यवस्था न कर उन्हें नामजद ही कर दिया गया।

महायुद्ध का बहाना—उत्तरदायी शासन की माँग करनेवाली जनता के लिए ये सुधार बिल्कुल नाकाफी थे। फिर, युद्ध की आड़ में चुनाव स्थगित करने और नामजदगी से काम चलाने की बात और भी असन्तोषजनक रही। सरदार वल्लभभाई पटेल, अध्यक्ष, भावनगर प्रजा-परिषद, ने प्रजा के मताधिकार का उपयोग न होने देने के विरोध में बड़ा जोरदार वक्तव्य प्रकाशित कराया।

[युद्ध-काल में प्राय: राजाओं ने यही कहा कि इस समय हम युद्ध-प्रयत्नों में फँसे हैं, इसलिए शासन-सुधारों की किसी योजना को अमल में लाने के लिए यह अवसर अनुकूल नहीं है। परन्तु, असल में जब खतरा सिर पर हो तो इस बात की और भी अधिक आवश्यकता है कि जनता को सन्तुष्ट किया जाय और उसका सहयोग प्राप्त किया जाय।]

सन् १६४२ में कुछ विभाग एक मन्त्री को सौंपना स्वीकार किया गया। व्यवस्थापक सभा के ५५ सदस्यों में से २२ का नामजद होना कितना अनुचित है, खासकर जब भावनगर के महाराजा और दीवान इस राज्य के काठियावाड़ भर में आदर्श राज्य होने का दावा करते हैं।

सन् १९४२ का आन्दोलन—अब अगस्त १६४२ के आन्दोलन की बात लें! भावनगर युद्ध-सामग्री बनाने का केन्द्र था, आन्दोलन

होने पर जनता ने हड़तालें कीं और जलूस निकाले, विद्यार्थियों ने भी इनमें खूब भाग लिया। नेताओं को गिरफ्तार किया गया और उन्हें नजरबन्द किया गया। जनता द्वारा प्रदर्शन किए जाने पर कितने ही लाठी-चार्ज हुए। जनता अपनी करुण कहानी सुनाने के लिए अपना डेप्यूटेशन महारानी के पास ले गई, उस पर भी लाठी-चार्ज हुआ। लोगों पर सतरह हजार रुपए के सामूहिक जुर्माने हुए, जो मजदूरों और मध्यश्रेणी वालों से जबरदस्ती वसूल किए गए। इस राज्य में ३६१ आदमी गिरफ्तार किए गए और ६१ को सजा दी गई। इनके अलावा पाँच सौ दूसरे आदमी भी गिरफ्तार किए गए थे, जो पीछे छोड़ दिए गए। जन-जागृति का यह खासा प्रमाण है।

राजकोट

काठियावाड़ के राज्यों में राजकोट का कितना महत्व है, यह इससे मालूम हो जाता है कि म० गांधी के शब्दों में 'यह काठियावाड़ का केन्द्र है। यदि यहाँ उत्तरदायी शासन दे दिया गया तो काठियावाड़ की अन्य रियासतें भी स्वयं राजकोट की पंक्ति में आ जायँगी।' इस राज्य का क्षेत्रफल २८३ वर्गमील, जनसंख्या एक लाख तीन हजार, और वार्षिक आय चौबीस लाख रुपए है।

दीवान साहब कर्ता-धर्ता—दूसरे काठी राज्यों की तरह यह राज्य भी एकतन्त्री रहा। पिछली दशाब्दी में यहाँ मुख्य कर्ता धर्ता प्रधान शासक (ठाकुर साहब) न होकर दीवान साहब रहे हैं। ता० १५-२-३४ को श्री मणिभाई कोठारी ने उस समय के दीवान वीरवाला को जो पत्र लिखा था, उससे स्पष्ट है कि भूतपूर्व ठाकुर साहब धर्मेन्द्रसिंह जी (१९३१-४०) शासन-कार्य की ओर ध्यान नहीं देते थे। उन्होंने सब कुछ दीवान साहब के हाथ में छोड़ रखा था, और

दीवान वीरवाला आदि को प्रसन्न करने के लिए राज्य से बड़ी-बड़ी रकमें, वेतन के अतिरिक्त, इनाम के रूप मे दी जाती थीं।

सन् १९३९ का आन्दोलन—सरदार पटेल के नेतृत्व में शासन-सुधार का आन्दोलन चला। इसमें इस राज्य के अतिरिक्त ब्रिटिश भारत के भी कितने ही कार्यकर्ता गिरफ्तार हुए। मई १९३९ में तत्कालीन ठाकुर साहब ने दस आदमियों की एक कमेटी शासन-सुधार सम्बन्धी प्रस्ताव करने के लिए नियुक्त की। इस कमेटी के सभापति राज्य के दीवान श्री वीरवाला बनाए गए। इस कमेटी के सङ्गठन के सम्बन्ध में ठाकुर साहब का सार्वजनिक नेताओ से काफी मतभेद और सङ्घर्ष रहा। पीछे ठाकुर साहब ने एक उपसमिति द्वारा सिफारिश की हुई नई सुधार-योजना स्वीकार कर ली। इस आन्दोलन को कुचलनेवाले अंगरेज दीवान सर पेट्रिक कैडल बरखास्त किए गए। यह रियासती जनता की बड़ी विजय थी। परन्तु ठाकुर साहब ने सुधारों को अमल में लाने में उपेक्षा की, इसलिए कुछ ही समय बाद यहाँ फिर रणभेरी बज उठी।

म० गांधी द्वारा जाँच और उनका अनशन—म० गांधी ने राजकोट दरबार के अतिरिक्त, रेजीडेंट पर भी सत्याग्रहियों के साथ भयंकर ज्यादती करने के आरोप लगाए थे। रेजीडेंट ने पुलिस तथा अपने ऊपर लगाए गए आरोपों को असत्य बताया। महात्मा जी इन आरोपों की जाँच करने के लिए फरवरी १९३९ में स्वयं राजकोट गए। आपने सत्याग्रह स्थगित कराके पुलिस के अत्याचारों की जाँच की। ठाकुर साहब ने २६ दिसम्बर १९३८ को सुधार-समिति बैठाने की घोषणा की थी, उसकी दृष्टि से महात्मा जी ने उनके व्यवहार की जाँच की और ठाकुर साहब को पत्र लिखकर अपनी माँगें पेश कीं।

३ मार्च को ठाकुर साहब का उत्तर मिला, जिसमें उन्होंने गांधी जी

के समिति सम्बन्धी परामर्श को, २६ दिसम्बर की घोषणा के अनुकूल न समझते हुए, मानने से इन्कार किया, और रियासत के शासन को सारी जिम्मेदारी अपनी मानते हुए किसी दूसरे के हस्तक्षेप की इजाजत देने में भी अपनी असमर्थता प्रकट की। महात्माजी ने उत्तर के लिए जो अवधि निर्धारित की थी, वह पहले ही पूरी हो चुकी थी। उस समय तक प्रतीक्षा करने पर उन्होंने आमरण अनशन आरंभ कर दिया था; और, यह उत्तर तो आग में घी डालने के समान था। अस्तु, महात्मा जी के अनशन से सारे देश में चिन्ता और व्याकुलता छा गई। सरकार से हस्तक्षेप करने का अनुरोध किया गया। अन्त में वायसराय ने इस मामले को उच्च-न्यायालय के चीफ जस्टिस के पास भेजने का सुझाव पेश किया, जिसे सबने मान लिया। महात्मा जी ने अनशन समाप्त कर दिया।

चीफ-जस्टिस का फैसला— ३ अप्रेल को चीफजस्टिस ने अपना फैसला दिया, उसका सारांश यह था—कमेटी के सदस्यों की नियुक्ति का अधिकार सिर्फ ठाकुर साहब को है। सभापति के लिए ठाकुर साहब दस सदस्यों में से ही किसी को चुन सकेंगे, न कि इनके अलावा किसी ग्यारहवें आदमी को, जैसा कि वे पीछे कहने लगे थे। इस फैसले के अनुसार राजकोट में जो सुधार-कमेटी बनेगी, उसके सात सदस्य तो सरदार पटेल के सिफारिशी नामों में से रखे जायँगे (बशर्ते कि वे नाम रियासत से बाहर के लोगों के न हों), और तीन सदस्य ठाकुर साहब खुद नियुक्त कर सकेंगे।

आन्दोलन का अन्त—सुधार-समिति के निर्माण में साम्प्रदायिकता से भयंकर बाधा पैदा हुई। मुसलमान, भय्यात और गिरासिया न प्रजा-परिषद का साथ देते थे, और न मार्ग से अलग ही होते थे। राजकोट के अधिकारी भी साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहित ही कर रहे थे।

दरबार वीरवाला ने गांधीजी के प्रत्येक समझौते को ठुकरा दिया। अन्त में महात्मा जी ने सभी उसके हाथ में छोड़ दिया और चीफ-जस्टिस के निर्णय का भी उपयोग नहीं किया।

जहाँ तक राजकोट का तात्कालिक प्रश्न था, महात्मा जी का प्रयत्न असफल कहा जा सकता है; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि राजकोट ने सारे देश का ध्यान देशी राज्यों की ओर आकर्षित करने में सहायता दी।

सन् १९४२ का आन्दोलन—काठी राज्यों में से राजकोट में भी सन् १९४२ का आन्दोलन विशेष रूप से हुआ। राष्ट्रीय नेताओं की गिरफ़ारी पर अपना विरोध जाहिर करने के लिए जनता ने कई सभाएँ कीं, और जलूस निकाले। पर अधिकारियों ने भयंकर दमन से किाम लेकर आन्दोलन को जल्दी दबा दिया। यह स्पष्ट है कि अभी यहाँ ऐसी जागृति और संगठन नहीं हुआ कि शासक और अधिकारी उससे यथेष्ट प्रभावित हों; और, राजा लोग 'भय बिन होय न प्रीति'—सद्धान्त मानते दिखाई देते हैं।

[२]

गुजरात के राज्य

गुजरात में ८२ राज्य है। क्षेत्रफल जनसंख्या और आय के विचार से इनमें से बारह ही कुछ महत्व के हैं; इनमें बड़ौदा प्रमुख है। शेष सत्तर राज्य बहुत छोटे-छोटे हैं, यहाँ तक कि कितने ही राज्य ऐसे हैं, जिनमें से एक-एक का क्षेत्रफल एक एक वर्गमील और जनसंख्या सौ से भी कम है। गुजरात के राज्यों के से, यहाँ उदाहरण-स्वरूप बड़ौदा की ही जन-जागृति का विचार किया जाता है।

बड़ौदा

इस राज्य का क्षेत्रफल आठ हजार वर्गमील, और जन-संख्या

२५ लाख से अधिक है। यहाँ औद्योगिक और व्यावसायिक उन्नति का यथेष्ट क्षेत्र है। वार्षिक आय लगभग साढ़े चार करोड़ रुपए है।

एक सुधार-प्रेमी राज्य—शिक्षा और समाज सुधार में यह राज्य ब्रिटिश भारत में आगे रहा है। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य और निश्शुल्क करने का श्रीगणेश यहाँ पहले पहल सन् १८६३ में एक जिले में किया गया था। सन् १६०६ में यह कार्य बढ़ाया गया। बड़ौदा अपनी व्यायामशालाओं के लिए देश भर में प्रसिद्ध है। अन्त्यजों (दलितों) और जंगली जातियों के लिए शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित करने, देहातों में साधारण तथा गश्ती पुस्तकालयों का व्यवस्था करने और सहकारी समितियों तथा कृषि-बैंकों की स्थापना करने आदि में इस राज्य का कार्य प्रशंसनीय रहा है। यहाँ २३ फीसदी आदमी पढ़े-लिखे हैं। बालिगों को भी पढ़ाने की कोशिश की जाती है। समाज-सुधार के कई कानून—बाल-विवाह-निषेध कानून, जातीय-अत्याचार-निवारण कानून आदि—बनाए गए हैं। इससे स्पष्ट है कि यह राज्य अच्छा प्रगतिशील है।

नागरिक स्थिति असन्तोषजनक—यह होते हुए भी जनता की नागरिक तथा आर्थिक स्थिति यहाँ असंतोषप्रद ही रही है। बड़ौदा राज्य प्रजामंडल पिछले तीस वर्ष से उत्तरदायी शासन प्राप्ति के लिए आन्दोलन कर रहा है। परन्तु यह संस्था अधिकारियों को प्रायः खटकती ही रही है। समय समय पर इसके कार्यकर्ताओं पर भाषण, लेखन और सम्मेलन सम्बन्धी विविध प्रतिबन्ध लगाये गए। प्रजामंडल के पंद्रहवें अधिवेशन (सन् १६३८) के अध्यक्ष सरदार बल्लभभाई के भाषण के आगे दिए हुए अंश से यहाँ, की उस समय की स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है:—

'बड़ौदा राज्य प्रजामंडल ने किसानों पर जबरदस्ती से लादे गए

कर का विरोध करना चाहा था, पर राज्य के अधिकारियों ने इस प्रयत्न को सफल नहीं होने दिया। जनता ने जब अधिकारियों के दुर्व्यवहार का विरोध करने के लिए सभाएं करने की योजना की तो इसमें भी बाधाएं डाली गईं। प्रजामंडल के प्रधान को नोटिस मिली कि वह इस सभा में भाषण न दे। मंडल के एक कार्यकर्ता को मंडल छोड़ने के लिए मजबूर किया गया और एक कार्यकर्ता को पीटा भी गया। मंडल तथा उसके कार्यकर्ताओं ने रियासती अधिकारियों के इन सभी अत्याचारों को सहन किया। उसका परिणाम यह हुआ कि बड़ौदा रियासत में प्रजामंडल पूरी तरह निर्जीव कर दिया गया है।' यह है बड़ौदा जैसे उन्नत माने जानेवाले राज्य की सन् १६३८ की झाँकी।

१९४२ का आन्दोलन - सन बयालीस का आन्दोलन यहाँ शहर के बाद गाँवों में भी फैला। कांग्रेसी नेताओं की गिरफ्तारी के विरोध में यहाँ कोरंदा गाँव में श्री अम्बालाल गांधी के नेतृत्व में जुलूस निकाले गए और सभाएँ हुईं। रेल द्वारा फौज की टुकड़ी को कोरन्दा न पहुँचने देने के लिए उन्हीं के नेतृत्व में जनता ने लगभग ढाई मील तक रेल की पटरी बिलकुल उखाड़ दी। यह देखकर फौजी सिपाहियों ने श्री अम्बालाल को पकड़ लिया और उन्हें बड़ी निर्दयता से मारा। गाँव में सिपाहियों ने घोर आतंक फैलाया। एक खास तरीके से नाकाबन्दी कर दी, इसलिए कोई भी आदमी घर से बाहर नहीं जा सकता था। गाँवों पर ४५,००० सामूहिक जुर्माना किया गया। यह बड़ी निर्दयता से वसूल किया गया। सौ आदमियों से अधिक गिरफ्तार किए गए, और बिना किसी सबूत के कितने ही लोगों को घोर यातनाएँ दी गईं।

विशेष वक्तव्य; उत्तरदायी शासन की माँग—नागरिक स्थिति की दृष्टि से १९४२ का बड़ौदा १९३८ की अपेक्षा विशेष सुधरा

हुआ नज़र नहीं आता। तथापि जन-जागृति धीरे-धीरे बढ़ रही है। अक्तूबर १६४७ में बड़ौदा राज्यप्रजामंडल की ओर से महाराजा बड़ौदा को एक स्मृति-पत्र दिया गया। उसमें कहा गया कि "बड़ौदा ने सर्व-प्रथम भारतीय सङ्घ में मिलने का अनुकरणीय कदम उठाया था। बड़ौदा ही ऐसी रियासत थी जिसने विधान-परिषद् के लिए अपने सब प्रतिनिधि जनता द्वारा निर्वाचित भेजे। बड़ौदा में शिक्षा का अच्छा प्रचार है। आपने यह घोषणा की थी कि १० जनवरी १६४७ को राज्य में उत्तरदायी शासन की स्थापना कर दी जायगी। जनता ने उस घोषणा को स्वीकार किया था। परन्तु इस दिशा में अभी कुछ भी नहीं किया गया।

"जनता अब उत्तरदायी शासन की प्रतीक्षा करते हुए अपना धैर्य खो बैठी है। यह बात सर्वसम्मत रूप से स्वीकार कर ली गई है कि जब तक रियासतों में उत्तरदायी शासन की स्थापना नहीं हो जाती, तब तक राजा या प्रजा किसी की भी उन्नति नहीं हो सकती। प्रजातन्त्रात्मक शासन में ही जनता अधिक उन्नति और विकास कर सकती है; उत्तम सरकार उत्तरदायी शासन का स्थान नहीं ले सकती।

"जब तक अंग्रेज भारत में थे तब तक रियासतों में उत्तरदायी शासन की स्थापना संभव नहीं थी। किन्तु अब जब अंग्रेजी राज भारत से उठ गया है तब देशी राज्यों की भलाई के लिए उत्तरदायी शासन की अविलम्ब स्थापना होनी चाहिए। यह निश्चित है कि राजा प्रजा के सङ्घर्ष में विजय सदा प्रजा की ही होगी।

"इसलिए हम चाहते हैं राज्य के ३० लाख प्रजाजनों के हित के लिए, बड़ौदा के हित के लिए उत्तरदायी शासन की स्थापना की जाय।"

आशा है, महाराजा हवा का रुख समझने में अब देर न करेंगे



बीसवाँ अध्याय

राजपूताने के राज्य

[बीकानेर, अलवर, भरतपुर, जोधपुर, मेवाड़, जयपुर, जैसलमेर, कोटा, डूंगरपुर]

प्रस्तावना

राजपूताने की संस्थाएँ—भारतवर्ष के दूसरे बहुत से देशी राज्यों की अपेक्षा, राजपूताने के राज्यों में जन-आन्दोलन बहुत पहले शुरू हुआ। यहाँ की पुरानी संस्थाओं में विशेष उल्लेखनीय राजपूताना मध्यभारत (देशी राज्य) सभा, और राजस्थान सेवा-संघ है। इनकी स्थापना क्रमशः सन् १६१८ और १६१६ में हुई थी। इनके सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है। रचनात्मक कार्य करने के लिए यहाँ राजस्थान चर्खा संघ, राजपूताना हरिजन सेवक सङ्घ, राजस्थान वनिता आश्रम, महिला मंडल, राजस्थान सेवक मंडल, राजस्थान बालिका विद्यालय बनस्थली, राजपूताना सेवक सङ्घ आदि विविध-संस्थाएँ रही हैं। उन सब के बारे में यहाँ नहीं लिखा जा सकता। सिर्फ राजस्थान सेवक मंडल के विषय में ही कुछ मुख्य-मुख्य बातें दी जाती हैं।*

राजस्थान सेवक मंडल—सन् १६३५ में सर्वश्री रामनारायण जी चौधरी, माणिकलाल जी वर्मा और शोभालाल जी गुप्त आदि सज्जनों ने एक ऐसी संस्था बनाने का निश्चय किया, जिसका मुख्य

*श्री रामनारायण जी चौधरी की, 'राजस्थान का सार्वजनिक जीवन' पुस्तक की हस्तलिखित प्रति के आधार पर।

कार्य रचनात्मक हो, और जिसमें राजनीतिक प्रवृत्तियों की गुंजायश हो। म० गांधी ने सन् १९३९ में 'राजा-प्रजा सेवक सङ्घ' नाम की एक अखिल भारतीय संस्था का विधान बनाया था।* उसी को आधार माना गया; सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों के अलावा यह मर्यादा भी स्वीकार की गई कि किसी राज्य में वहाँ के राजा को आपत्ति न हो तो प्रजा के कष्टों को दूर करने की कोशिश की जाय, एक राज्य में बैठकर दूसरे राज्य की टीका न की जाय, और राज्यों में ब्रिटिश सरकार का हस्तक्षेप न चाहा जाय। सार यह कि राजाओं को आश्वासन देने के लिए अधिक-से-अधिक सावधानी रखी गई।

मंडल में सब पुराने और कुछ नए कार्यकर्ता एकत्र हो गए, और खासकर हरिजन कार्य में जुट गए। सन् १९३५ में अजमेर के पास नारेली गाँव में एक मकान बनवा लिया गया। अजमेर में 'आदर्श प्रेस' नाम का एक खासा बड़ा छापाखाना खरीद लिया गया और उससे 'नवज्योति' नाम का हिन्दी साप्ताहिक प्रकाशित किया जाने लगा। डूंगरपुर राज्य के सागवाड़ा स्थान पर एक भील-सेवा-आश्रम स्थापित कर दिया गया। पीछे, १९३८ में श्री० पंड्या जी आदि के तैयार होने पर वहाँ का काम उन लोगों को सौंप दिया गया।

इस बीच में, श्री० हरिभाऊ जी उपाध्याय, हीरालाल जी शास्त्री और रामनारायण जी चौधरी ने यह विचार किया कि राजस्थान में सारा समय लगा कर काम करनेवाले सभी सेवकों को एक झंडे के नीचे लाया जाय और उसके लिए 'राजस्थान-सङ्घ' नाम की संस्था बनाई जाय। श्री० शास्त्री जी बनस्थली (जयपुर) में चुपचाप बहुत महत्वपूर्ण रचनात्मक कार्य कर रहे थे, और अब प्रजामंडल के प्रमुख सेवक के रूप में राजनीतिक क्षेत्र में आ गए थे।

---

*देखो, तेरहवाँ अध्याय।

धीरे-धीरे हरिजन कार्य प्रगति कर रहा था। राजस्थान सेवक मंडल अधिकाधिक शक्तिशाली हो रहा था, और एक प्रान्त-व्यापी विशाल संगठन कायम होने को ही था, कि इसमें घुन लगना शुरू हो गया। कुछ कार्यकर्ताओं में ईर्ष्या और द्वेष की भावना जागृत हो गई। वातावरण बिगड़ गया। इस पर श्री० चौधरी जी सभी सार्वजनिक जिम्मेदारियों से अलग हो गए, उनके स्थान पर मास्टर ओंकारनाथ जी मंडल के अध्यक्ष बने। हरिजन कार्य का सञ्चालन कलकत्ते के सज्जन करने लगे। इस प्रकार राजस्थान सङ्घ श्री चौधरी जी के बिना ही बना। हरिजन सेवक सङ्घ और राजस्थान सेवक मंडल फिर न पनप सके। सन् १९३८ में स्थानीय कांग्रेस-संगठन में तीव्र झगड़े हुए। चुनाव के अवसर पर एक ही विचार और उद्देश्य रखनेवाले कार्यकर्ता परस्पर विरोधी दलों में खड़े होकर एक-दूसरे पर बुरे-बुरे लांछन लगाने लगे। व्यक्तिगत आक्षेप दुखदायी सीमा तक पहुँच गए; यहाँ तक कि अ० भा० कांग्रेस वर्किंग कमेटी की ओर से उसके सदस्य श्री शंकरराव देव को यहाँ आकर यह निन्दनीय कार्य रोकने का प्रयत्न करना पड़ा। अस्तु, म० गांधी की सलाह के अनुसार श्री० हरिभाऊ जी और उनके साथी कांग्रेस से अलग हो गए। राजस्थान-सङ्घ टूट गया।

राजस्थान में जन-जागृति के बड़े-बड़े काम अपेक्षाकृत बहुत पहले शुरू हुए और उनकी अच्छी प्रगति भी हुई, पर दुर्भाग्य से यह प्रान्त, खासकर इसका केन्द्र अजमेर, पार्टीबाजी या दलबन्दी से अपना पिंड न छुड़ा सका।

राजनीतिक कार्य—राजपूताने में राजनीतिक कार्य पहले 'राजस्थान प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी' ही करती थी। परन्तु हरिपुरा, कांग्रेस के प्रस्ताव के बाद देशी राज्यों में कांग्रेस का कार्यक्षेत्र सीमित हो गया और रियासती जनता को अपने ही प्रयत्नों पर निर्भर होना

पड़ा। राजपूताने में पहले सब कार्यों का केन्द्र प्रायः अजमेर या ब्यावर ही बनाया जाता था। यद्यपि ये स्थान भी चीफ-कमिश्नर के प्रान्त में होने के कारण नागरिक स्वतंत्रता में, ब्रिटिश भारत के गवर्नरों के प्रान्तों की अपेक्षा तो पिछड़े हुए ही थे, तथापि इनमें इतनी निरंकुशता नहीं थी, जितनी राजपूताने के राज्य में। इसलिए कार्यकर्ताओं को यहाँ अधिक सुविधाएँ थीं; और वे यहाँ ही अपना संगठन करते और संस्था बनाते थे। अब तो राजपूताने के प्रायः हरेक राज्य में प्रजामंडल है, जिसका उद्देश्य अपने राजा की छत्रछाया में उत्तरदायी शासनपद्धति स्थापित करना है।

सारे राजपूताने के कार्यकर्ताओं का संगठन— राजपूताने के सब राज्यों के कार्यकर्ताओं का एक सूत्र में संगठन हो, और सब एक ही ध्येय तथा समान नीति को रख कर काम करें—इसके लिए समय-समय पर कई प्रयत्न किए गए। हरिपुरा कांग्रेस के बाद अ० भा० देशी राज्य लोक परिषद का लुधियाना अधिवेशन (सन् १९३९) रियासती जनता की जन-जागृति के इतिहास में विशेष महत्व रखता है। इससे देशी राज्यों में उत्साह और आशा की भावना बहुत बढ़ गई। अब संगठन की ओर अधिकाधिक ध्यान दिया जाने लगा। तथापि सन् १९४० तक राजपूताना के संगठन सम्बन्धी ब्योरेवार बातों का कोई स्थायी निश्चय न हुआ। उसके बाद के प्रयत्नों का संक्षिप्त परिचय आगे दिया जाता है*—

'प्रांतीय संगठन का बाकायदा स्वरूप मेवाड़ प्रजा मंडल (१९४१) के अधिवेशन के समय सामने आया, जिसे कुछ सज्जनों ने कमेटी का रूप देकर मारवाड़ लोक-परिषद के लाडनू अधिवेशन पर और भी वृहत स्वरूप दिया। इसके बाद जयपुर प्रजामंडल के श्रीमाधोपुर

---

* श्री मास्टर भोलानाथ जी के, 'वीर अर्जुन' में प्रकाशित लेख से।

अधिवेशन में विचारधारा परिपक्व हुई, और उसके कुछ दिन बाद जयपुर में केवल प्रान्तीय संगठन को मजबूत बनाने के उद्देश्य से सम्भवतः पहली ही बार समस्त प्रान्त के कार्यकर्ता इकट्ठे हुए। एक प्रान्तीय संगठन का विधान भी तैयार हुआ, परन्तु रचनात्मक प्रवृत्तियों को मुख्य माना गया।

अगस्त (१६४२) आन्दोलन में जेल गए नेताओं और कार्यकर्ताओं की रिहाई ने फिर इस बात की आवश्यकता महसूस कराई कि राजपूताना की शक्तियों को इकट्ठा किया जाय। इस समय राजस्थान चर्खा सङ्घ के मन्त्री श्री देशपांडे, श्री माणिकलाल जी वर्मा सभापति मेवाड़ राज्य प्रजामंडल के साथ, राजगढ़ (अलवर) में अपने साथी निर्वासित कार्यकर्ताओं से मिलने आए। यहाँ विचार-विमर्श होने पर गोविन्दगढ़ में राजस्थान तथा मध्यभारत के प्रमुख कार्यकर्ताओं का एक छोटा सा सम्मेलन हुआ। इसका वृहत् रूप मेवाड़ प्रजामंडल द्वारा आयोजित बड़ा सम्मेलन था, जिसमें लगभग ३०० कार्यकर्ता सम्मिलित हुए। इस अवसर पर दोनों प्रदेशों के सङ्गठन के लिए एक कमेटी बनाई गई। अन्त में आबादी के हिसाब से प्रतिनिधित्व देकर एक सम्मेलन अलवर में बुलाने का निश्चय किया गया। यह सम्मेलन दिसम्बर १६४४ में हुआ। 'राजपूताना रियासती कार्यकर्ता सङ्घ' के इस सम्मेलन ने प्रान्त में समान राजनीति निर्धारित करके स्पष्ट नेतृत्व किया।

राजपूताना प्रादेशिक समिति का सङ्गठन—इस संस्था की स्थापना अ० भा० दे० रा० लोकपरिषद के उदयपुर अधिवेशन के समय हुई। इसमें राजपूताने के विविध २६ राज्यों के १३२ चुने हुए, और ३३ नामजद, इस प्रकार कुल मिला कर १६५ सदस्य हैं। इसका कार्य चलाने के लिए १५ सदस्यों की एक कार्य-समिति है। विविध

राज्यों की व्यवस्थापक सभाओं के सम्बन्ध में नीति निर्धारित करने के लिए एक पार्लिमेंटरी उपसमिति है, उसमें ५ सदस्य हैं।

प्रादेशिक समिति का कार्य—यह समिति राजपूताना के सामूहिक प्रश्नों पर विचार करती है तथा यहाँ के जुदा-जुदा राज्यों का पथ-प्रदर्शन करती है। इसके द्वारा समय-समय पर आवश्यक आन्दोलन का सञ्चालन तथा रचनात्मक कार्य और, जहाँ प्रजामंडल नहीं थे, वहाँ उनकी स्थापना का कार्य होता रहा है। इसकी कार्य-समिति ने यह माँग की, और इसके लिए लोकमत तैयार किया कि राजपूताना एक प्रान्त बनाया जाय और इसकी प्रत्येक रियासत में उत्तरदायी शासन के आधार पर विधान बनाने के लिए बालिग मताधिकार पर शीघ्र-से-शीघ्र एक विधान निर्मात्री परिषद कायम होनी चाहिए; साथ ही अंतःकालीन समय के लिए अविलम्ब ऐसी सरकार की स्थापना की जाय, जिसे रियासत की जनता का पूरा-पूरा विश्वास प्राप्त हो।

बीकानेर

इस राज्य का क्षेत्रफल २३,३१७ वर्गमील, जनसंख्या लगभग तेरह लाख, और वार्षिक आय तीन करोड़ रु० से अधिक है।

जन-जागृति का सूत्रपात और दमन—यहाँ के भूतपूर्व महाराजा श्री गंगासिंह जी (सन् १८८७-१९४१) बहुत ही कूटनीतिज्ञ थे। आपने बड़ी चतुराई से ऐसा वातावरण बना लिया कि उन्हें प्रगतिशील शासक माना जाय। आपने म्युनिसपेल्टी, व्यवस्थापक सभा और हाईकोर्ट आदि स्थापित करके अपने आपको बड़ा 'सुधारक' दिखाया। पर ये संस्थाएँ नाममात्र की रहीं; इन्हें वास्तविक अधिकार नहीं दिए गए। आपके सुन्दर भाषणों के कारण बाहर के आदमियों की इस राज्य के विषय में प्रायः बहुत अच्छी धारणा रही। परन्तु सचाई कुछ

और ही थी। जब कभी जनता ने संगठित होने का प्रयत्न किया और जागृति के कुछ लक्षण दिखाई दिए तो महाराजा साहब ने साम दाम दंड भेद से, जैसे भी बना, उसे दबा दिया। सन् १६३१ ई० में यहाँ के कुछ सज्जन अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद के कार्य में दिलचस्पी लेने लगे। इन्हीं दिनों पत्र-पत्रिकाओं में बीकानेर सम्बन्धी कुछ लेख प्रकाशित हुए। इधर चूरू में, एक सभा में राज्य की लगान-वृद्धि आदि की आलोचना की गई। बस, अधिकारियों ने निश्चय कर लिया कि राष्ट्रीय भावनाओं वाले व्यक्तियों का ऐसा दमन किया जाय कि सर्वसाधारण को हमेशा के लिए शिक्षा मिल जाय।

'राजद्रोह' और 'षड्यंत्र' का मुकदमा—सन् १६३२ के आरम्भ में आठ सज्जन सन्देह के आधार पर गिरफ्तार किए गए। तीन माह से अधिक के बाद मुकदमा चला। अभियुक्तों के साथ कैदियों से भी बुरा व्यवहार किया गया। अदालत में पेश किए गए कागजों से कई बातें ऐसी प्रकट होती हैं, जो किसी भी राज्य के अधिकारियों के लिए चिन्तनीय होनी चाहिएँ। पर महाराजा के शासन ने उनकी ओर ध्यान देने और उचित कार्यवाही करने का कष्ट नहीं उठाया। मुकदमा दो साल तक चला। आठ अभियुक्तों में से एक तो मुखबिर या सरकारी गवाह बन गया था। शेष सात को छः माह से लेकर तीन-तीन साल की कैद की सजा हुई। जेल में इनके साथ भयंकर मारपीट आदि का अमानुषिक व्यवहार किया गया।

सन् १६३६ के अन्त में जब श्री० सत्यनारायण सर्राफ वकील उपर्युक्त मामले में तीन साल की सजा पा चुके थे, उन पर यह आरोप लगाया गया कि उन्होंने श्री० मघाराम जी वैद्य और लक्ष्मीदास जी के साथ मिल कर प्रजामंडल की स्थापना की है। इन तीनों सज्जनों को और श्री० मुक्ताप्रसाद जी वकील को, जिन्होंने पहले श्री सर्राफ जी आदि की पैरवी की थी, राज्य से बाहर निकाल दिया गया।

बीकानेर का 'काला कानून'—जुलाई १९३२ ई० से राज्य में 'पब्लिक सेफ़्टी एक्ट' (सार्वजनिक सुरक्षा कानून) प्रचलित किया गया। इसमें पीछे समय-समय पर कुछ परिवर्तन हुआ है। यह जनता में 'बीकानेर का काला कानून' कहा जाता है। इसका प्रयोग कई बार जनता की जागृति का दमन करने, कार्यकर्त्ताओं को कैद या निर्वासित करने, और समाचारपत्रों को जब्त करने आदि के लिए किया गया। संस्थाओं पर रजिस्टरी कराने की पाबन्दी लगाई गई। अधिकारियों ने अपने घोर दमन के द्वारा जनता पर आतंक बैठाने में 'सफलता' प्राप्त की। श्री सारंगधरदास जी ने अ० भा० दे० रा० लोकपरिषद की ओर से इस राज्य में दौरा करके अपनी रिपोर्ट दी, जो 'बीकानेर' नाम से अंग्रेजी में छपी है। उसमें सन् १९४० तक के कितने ही देश-निकालों और ज़ब्तियों का ब्योरा दिया गया है।

सभाओं पर पाबन्दी—सन् १९४३ से महाराजा शार्दूलसिंह जी गद्दी पर हैं। आप भी अपने पिता की तरह उदारतासूचक विज्ञप्तियाँ प्रकाशित करते और भाषण देते हैं। इनके समय में, मई १९४४ को श्री रघुवरदयाल जी गोयल ने श्री कस्तूरबा स्मारक कोष का धन संग्रह करने के लिए एक सार्वजनिक सभा करने का निश्चय किया तो सरकार ने उस पर पाबन्दी लगा दी कि (१) कोई नारा न लगाया जाय, (२) कोई झंडा न फहराया जाय, (३) बीकानेर और दूसरी रियासत तथा ब्रिटिश सरकार के सम्बन्ध में कुछ न कहा जाय, (४) सभापति की सूचना २४ घंटे पहले दी जाय। यह है बीकानेरी-छाप की नागरिक स्वतन्त्रता का नमूना!

बीकानेर दमन-विरोधी दिवस—२६ अगस्त १९४४ को श्री रघुवरदयाल जी गोयल तथा उनके दो साथियों, श्री गंगादास जी कौशिक और दाउदयाल जी आचार्य, को गिरफ़्तार करके नजरबन्द

कर दिया गया। बीकानेर सरकार के इस दमन को राजपूताने की तमाम रियासतों ने महसूस किया। फल-स्वरूप २६ अक्तूबर १९४४ को सारे राजपूताने में 'बीकानेर दमन-विरोधी दिवस' मनाया गया। इससे लोगों में चेतना आई। प्रजा-परिषद का कार्य शुरू हुआ। पं० मघाराम जी वैद्य के सभापतित्व में परिषद की शक्ति बढ़ने लगी।

किसान-सत्याग्रह—इसी समय दूधवाखारा के जागीरदार और बीकानेर सरकार के सेक्रेटरी ठा० सूरजपालसिंह के अत्याचारों से तंग आकर किसानों ने प्रजापरिषद की छत्रछाया में सत्याग्रह किया। बीकानेरी जनता बूढ़े, जवान, बालक, स्त्री और पुरुषों को तिरंगा झंडा हाथ में लिए सत्याग्रह करते और शान्तिपूर्वक जत्थों के जत्थों को जेल जाते देख कर दंग रह गई, और लोगों में सरकार का विरोध करने की भावना बढ़ी। हाँ, सरकार ने श्री वैद्य जी, परिषद की कार्यसमिति के सदस्यों, किसान-नेता चौधरी हनुमान सिंह जी तथा दूसरे सैकड़ों किसानों को कैद और नजरबन्द किया। श्री० गोयल जी और श्री माधोसिंह जी को राज्य से निर्वासित किया गया।

बीकानेर का प्रेस एक्ट—महाराजा शार्दूलसिंह जी ने जनवरी १९४६ में नरेन्द्रमंडल की शासन-सुधार सम्बन्धी घोषणा का 'हृदय से' समर्थन किया था जिसमें यह माना गया है कि हर व्यक्ति को आजादी के साथ अपनी राय जाहिर करने का हक होगा। इन्हीं महाराज ने उसके दो माह बाद राज्य में एक प्रेस एक्ट जारी किया, जिसमें समाचारपत्रों पर तरह-तरह के प्रतिबन्ध लगा दिए। पत्र निकालने से पहले भारी जमानत देना आवश्यक है! कोई गैर-बीकानेरी बीकानेर के किसी पत्र का सम्पादक नहीं हो सकता और यदि कोई बीकानेरी बाहर जाकर सम्पादकीय कार्य करे तो राज्य में आने पर उस पर कड़ी निगाह रहती है। ऐसी नीति का यह परिणाम स्वाभाविक

ही है कि बीकानेर राज्य स्वतंत्र सार्वजनिक पत्र-पत्रिकाओं के लिए पूर्ण रूप से मरुभूमि साबित हो। कुछ वर्ष हुए श्री० विश्वनाथ जी शर्मा पत्रकार ने हस्तलिखित मासिक पत्र में 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है'—टिप्पणी लिखी तो उन्हें थाने में बुलाकर खूब धमकाया गया था।

इनकमटेक्स-बिल और हड़ताल—राजपूताना में सम्भवतः बीकानेर ही वह राज्य है जिसने सबसे पहले (१६४१ में) इनकमटेक्स या आय-कर लगाने का विचार किया। इस बिल के अनुसार ऐसा व्यक्ति किसी वर्ष में बीकानेर निवासी समझा जायगा, जो उस वर्ष में कुल मिला कर कम-से-कम १२० दिन बीकानेर राज्य में रहा हो। इसका बीकानेरियों ने जगह-जगह विरोध किया।

बीकानेर नागरिक सभा ने निश्चय किया कि ता० २२-३-४६ को इस बिल के विरोध में समस्त बीकानेर रियासत में हड़ताल मनाई जाय। इस निश्चय की सूचना सब जगह भेज दी गई थी, परन्तु पन्द्रह मार्च को सिलेक्ट कमेटी के अनिश्चित काल के लिए बिल पर विचार स्थगित कर देने के कारण, कार्यकारिणी ने उक्त हड़ताल न करने का निश्चय किया। इसकी सूचना १६, २० मार्च को तार द्वारा सब जगह भेज दी गई। परन्तु नोहर और भादरा में तार ठीक समय पर नहीं पहुँच सके। इसलिए दोनों जगह बड़े जोरों की हड़ताल मनाई गई। हड़ताल के दिन एक बजे नोहर में और शाम के समय भादरा में तार पहुँचा। तब वहाँ बाजार खुल गए। यदि हड़ताल स्थगित नहीं की गई होती तो और-और स्थानों में भी ऐसे ही जोर की होती।

राष्ट्रीय झंडे के लिए कुर्बानी—मई १६४६ को बीकानेर में किसानों का जलूस निकला। इनके झंडे छीन कर उसके डंडे से लोगों को पीटा गया। १० मई को राजगढ़ में पुलिस ने बहुत अत्याचार

किया। उसने घेरा डालकर किसानों को लाठियों से पीटा। किसान 'जागीरदारी जुल्मों का नाश हो' के नारे लगाते हुए राष्ट्रीय झंडा लेकर घूमे थे। स्वामी कर्मानन्द जी प्रजा परिषद का काम करते थे, उन्हें जेल में भेज दिया गया। लगभग ५० किसान शीतला मंदिर पर आराम कर रहे थे, पुलिस ने उनके झंडे छीने और खूब पीटा। दस-पन्द्रह आदमी खून में लथपथ हो गए।

इन घटनाओं की रिपोर्ट पत्रों में प्रकाशित हुई। राज्य ने उनका खंडन किया, पर पीछे एक पुलिस-अफसर को बर्खास्त कर श्री० नेहरू जी को तार से अपनी सफाई दी। किन्तु इसी समय राज्य का एक गुप्त सरक्यूलर किसी के हाथ लग गया और पत्रों में प्रकाशित हो गया, जिसमें म० गांधी की जय बोलनेवालों तथा परिषद के कार्यकर्ताओं को परेशान करने आदि की हिदायतें थी। इससे राज्य का झूठ स्पष्ट हो गया। ये घटनाएँ जून ४६ की हैं।

इसके कुछ ही दिन बाद, १ जुलाई १९४६ को रामसिंह नगर में एक राजनीतिक कान्फ्रेन्स हुई, जिसमें हजारों आदमी आए थे। सरकार ने वहाँ तिरंगे झंडे पर पाबन्दी लगा दी, और जनता के उसे न मानने पर पुलिस ने बिना चेतावनी दिए गोलियाँ चलाईं। कई आदमी घायल हुए, और श्री० बीरबलसिंह जी तो तिरंगे झंडे को हाथ में लिए ही वीर गति को ही प्राप्त हो गए। उनके बलिदान पर वहाँ तिरंगा झंडा फह-राया गया। उन्हीं के प्रताप से रियासत में यह आजादी मिली कि परिषद के दफ्तर और सभाओं में तिरंगा झंडा फहराया जा सकता है; हाँ, और कहीं जलूस आदि में नहीं निकाला जा सकता।

बीकानेर राज्य ने इस गोलीकांड की कोई खुली जाँच न की, और यह गलत बयान देकर कि एक हजार आदमियों ने गवर्मेंट हाउस पर तिरंगा झंडा फहराने की नीयत से हमला किया, असलियत पर पर्दा डालने की कोशिश की। अ० भा० दे० रा० लोकपरिषद ने श्री

गोकुलभाई भट्ट और हीरालाल जी शास्त्री का एक जाँच-कमीशन नियुक्त किया। अन्त में ३१ अगस्त को महाराजा ने उत्तरदायी शासन की घोषणा करके विधान-समिति और मताधिकार-समिति की स्थापना की। परन्तु इस कार्य में सरकार की ओर से बहुत ढील और चालबाजी की गई।

पहली राजनीतिक सभा—मई १९४६ तक यहाँ कोई राजनीतिक सभा नहीं हुई। बीकानेर और राजगढ़ की घटनाओं के बाद अलवर के मास्टर भोलानाथ जी यहाँ आए तो एक आम सभा करने का निश्चय किया गया। दो पार्टियाँ राष्ट्रीय झंडा लेकर सभा का एलान करने के लिए गईं। एक का तो झंडा छिन गया, पर दूसरी पार्टी ने, जिसमें श्री गंगादास कौशिक (मंत्री, बीकानेर राज्य प्रजा-परिषद) आदि सज्जन थे, झंडा देने से इनकार किया। पुलिस उनको जबरदस्ती उठाकर घसीटते हुए कोतवाली में ले गई, पीछे आई॰ जी॰ पी॰ (इन्सपेक्टर जनरल, पुलिस) का फोन आने पर इन सब को छोड़ दिया गया, पर झंडा और भोंपू पुलिस ने अपने कब्जे में रखा।

अस्तु, शाम को रतनबिहारी पार्क (आजाद पार्क) में पहली राजनीतिक सभा बीकानेर राज्य प्रजा-परिषद के तत्वावधान में और श्री॰ रावतमल जी के सभापतित्व में हुई। चीनी, तेल, और कपड़े की स्थानीय समस्याओं पर सारगर्भित भाषण हुए। श्री॰ भोलानाथ जी ने अपने राजनीतिक भाषण में उत्तरदायी शासन की स्थापना पर जोर दिया। जनता में खूब उत्साह था। बीकानेर के आधुनिक इतिहास में यह पहली ही राजनीतिक सभा थी।

राजकर्मचारियों की सामूहिक हड़ताल—राजकर्मचारियों ने अपना संघ बनाया था; राज्य को यह सहन न हुआ और उसने उसे भंग कर दिया। उसके कई कार्यकर्ता बर्खास्त कर दिए गए और कुछ

को माफी माँगने के नोटिस दिए गए। इसके विरोध में कर्मचारियों ने सामूहिक हड़ताल कर दी। खाद्य वस्तुओं के दाम बढ़ने से कर्मचारियों को मिलनेवाली तनख्वाहों से उनका निर्वाह नहीं होता था। इसलिए कर्मचारियों के मँहगाई-भत्ते की माँग पर सहानुभूति-पूर्वक विचार करने के बदले उनके संघ को कुचल देना सर्वथा अनुचित था।

बीकानेर राज्य प्रजा-परिषद्—इस सम्बन्ध में स्मरण रहे कि जुलाई सन् १९४१ से ही प्रजा-परिषद नागरिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए आन्दोलन चलाती रही है। सन् १९४४ में उसके अध्यक्ष श्री० रघुवरदयाल जी तथा उनके साथी नजरबन्द कर दिए गए थे। जून १९४५ में गोयल जी को बीकानेर से निर्वासित कर दिया गया और वे जहाँ-तहाँ रहते रहे। कुछ दिन वे जयपुर में भी रहे; पर इस राज्य ने भी उन्हें अपनी सीमा से निकाल दिया, जिसका जयपुर राज्य-प्रजामंडल ने कड़ा विरोध किया था। कुछ दिन श्री० गोयल जी अलवर रहे। बहुत समय तक बीकानेर सरकार के रुख में कोई परिवर्तन होते न देख कर उन्होंने महाराजा को एक लम्बा पत्र लिखा, जिसमें राज्य की विविध घटनाओं पर प्रकाश डाला, और बीकानेर की अंधाधुंधी की ओर लोगों का ध्यान खींचने के लिए राज्य की निषेधाज्ञा तोड़कर २५ जून को बीकानेर में दाखिल होने का निश्चय जाहिर किया। तदनुसार वे ता० २५ को पंजाब की तरफ से बीकानेर की सरहद में रेल द्वारा दाखिल हो रहे थे कि उन्हें उनके साथियों सहित गिरफ्तार कर लिया गया। पुलिस के पास गिरफ्तारी के लिए कोई वारंट नहीं था।

राज्य ने प्रजा-परिषद को साफ तौर से गैर-कानूनी नहीं ठहराया, परन्तु प्रायः जिन अफसरों ने प्रजा-परिषद का दमन किया, उन्हें तरक्की दी, परिषद में शामिल होनेवाले लोगों को हतोत्साह किया, और उसके प्रमुख कार्यकर्ताओं पर तो बहुत ही कोपदृष्टि रखी। प्रजा-

परिषद को समाप्त करने के लिए राज्य ने साम्प्रदायिक संस्थाएं खड़ी करने या उन्हें उत्साहित करने में भी निन्दनीय भाग लिया। उदाहरण के लिए यहाँ प्रजा-सेवक संघ, मुसलिम लीग, हिन्दू सभा, प्रजामंडल और जाट-सभा की स्थापना की गई।

विशेष वक्तव्य—बीकानेर राज्य में नागरिक अधिकार अपहरण उस समय हो रहा है, जब कि तुरन्त शासन सुधार करने और दो वर्ष में उत्तरदाई शासन स्थापित करने की घोषणा की जा चुकी है। ऐसी दशा में जनता को राजकीय घोषणाओं पर विश्वास न हो तो क्या आश्चर्य! उत्तरदायी शासन की स्थापना से पहले जनता का नागरिक अधिकारों के उपभोग की पूरी स्वतंत्रता होनी आवश्यक है। बीकानेर महाराजा ने भारतीय विधान सभा में शामिल होकर तथा दूसरे राजाओं को भी उसमें शामिल होने का परामर्श देकर बहुत बुद्धिमानी और दूरदर्शिता का परिचय दिया है; आशा है, वे प्रजा को उत्तरदायी शासन देने में देर न करेंगे।

अलवर

इस राज्य का क्षेत्रफल ३१५८ वर्गमील, जनसंख्या ८, २३,०५५ और वार्षिक आय लगभग साठ लाख रुपए है।

सन् १९२५ से पहले; जनता के कष्ट—इस राज्य की हलचलों का समाचार बाहरवालों को विशेष रूप से मई १९२५ में मिला, पर जनता पहले से ही कष्ट पा रही थी, और उसे निवारण करने के लिए यथा-सम्भव प्रयत्न भी कर रही थी; हाँ, वह प्रयत्न संगठित न था। जनता के मुख्य कष्ट ये थे :—

(१) भाषण, लेखन और प्रकाशन की स्वतंत्रता का अभाव। यहाँ राजद्रोहात्मक सभा और प्रकाशनों का कानून था, जिससे सभाएँ करने तथा पत्र-पत्रिकाएँ आदि छपाने पर कठोर प्रतिबन्ध था।

(२) वैयक्तिक स्वतंत्रता का अभाव। लोगों को बिना मुकदमा चलाए राज्य से बाहर निकाला गया था।

(३) सम्पत्ति की रक्षा का अभाव। महाराजा की लिखित ही नहीं, जबानी आज्ञा भी किसी आदमी को उसको ज़मीन-जायदाद आदि से वंचित करने के लिए काफी होती थी।

(४) म्युनिसपेलटियों की कमी, और देहाती क्षेत्रों में प्रतिनिधि-मूलक पंचायतों और लोकल बोर्डों का अभाव।

(५) व्यवस्थापक सभा का अभाव, और महाराजा सम्बन्धी मन-माना और अनियंत्रित व्यय।

(६) मादक पदार्थों के अतिरिक्त सिग्रेट, बीड़ी, खनिज पदार्थ, और शहद आदि का एकाधिकार।

(७) टेक्सों की भरमार।

(८) बेगार और गुलामी।

(९) न्यायकर्ताओं की परतंत्रता, और पुलिस के प्रबन्ध की कमी।

(१०) शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यापार और यातायात के साधन आदि की कमी।

नया बन्दोबस्त और राजपूत—राज्य की प्रतिगामी नीति और स्वेच्छाचार के कारण जनता में असन्तोष व्यापक रूप से फैला हुआ था। इस पर सन् १९२५ के बन्दोबस्त ने बिस्वेदारों को अपने बिस्वेदारी अधिकारों से वंचित कर दिया। इस बन्दोबस्त से मालगुजारी पचास फी सदी बढ़ाई गई थी। इसका असर देहाती जनता के सभी वर्गों पर पड़ता था। परन्तु राजपूतों (बिस्वेदारों) के लिए यह खास तौर से हानिकर था। इसलिए उनमें असन्तोष सब से अधिक हुआ। उन्होंने अपना कष्ट निवारण करने के लिए संगठित होकर 'राजपूत कमेटी' बनाई। इस कमेटी की हरेक मीटिंग के बाद राजपूत अलवर

गए और उन्होंने अपनी शिकायतें उपस्थित करने के लिए महाराजा तथा ब्रिटिश अधिकारियों को तार दिए। पर उनके प्रयत्नों का कोई फल न निकला।

नीमूचाणा हत्याकांड—इसके विपरीत, महाराजा इस बात से क्रोधित हो गए कि राजपूतों ने इस विषय के सम्बन्ध में ब्रिटिश अधिकारियों को लिखा। उन्होंने सैनिक कार्रवाई की जाने को आज्ञा दे दी। १४ मई १६२५ को पुलिस के सौ सिपाही, इतने ही घुड़सवार और दो सौ प्यादे, चार मशीनगनों और दो तोपों सहित बानसूर तहसील के नीमूचाणा गाँव में भेज दिए गए, जहाँ राजपूतों की सभा हो रही थी। सारा गाँव घेर लिया गया। सभा गैर-कानूनी घोषित की गई; विशेषता यह कि न तो मजिस्ट्रेट की ओर से लोगों को वहाँ से चले जाने की कोई सूचना दी गई, और न यह चेतावनी ही दी गई कि अगर आदमी वहाँ से न हटेंगे तो गोली चलाई जायगी। इस बात की भी कोई सावधानी नहीं बर्ती गई कि लोगों की जानें कम-से-कम जायँ। शुरू से ही सिपाहियों ने गोलियाँ घातक रूप से चलाईं और मशीनगनों को इस्तेमाल किया। गोलियाँ लगभग दो घंटे चलीं। गाँव पर ४२ मिनिट तक 'लूईगन' का प्रयोग हुआ। जनता के कष्टों की कहानी यहीं समाप्त नहीं होती। पुलिस ने लूटमार भी मचादी। जख्मी हो जानेवाले ग्रामीणों को कोई राहत नहीं पहुँचाई गई। गाँव में आग लगा दी गई। स्त्रियों और पशुओं तक को बेआई मौत मरना पड़ा।

'प्रताप' और 'तरुण राजस्थान' आदि पत्रों के लेख—इस हत्याकाँड का विवरण प्रकाशित नहीं किया गया। 'प्रताप' (कानपुर) ऐसे विषयों की जानकारी प्रकाशित करने में प्रसिद्ध था। उसके प्रतिनिधि ने खास मौके पर (नीमूचाणा) जाकर इस मामले की जाँच

करनी चाही, पर उसे इसके लिए इजाज़त नहीं दी गई। आखिर, उसने अस्पताल में पड़े हुए जख्मी आदमियों के बयान लिए। 'प्रताप' और 'तरुण राजस्थान' में इस विषय पर खूब लिखा गया। दूसरे पत्रों में भी अच्छी चर्चा हुई। अलवर राज्य ने इस घटना का विवरण शीघ्र प्रकाशित करने की जरूरत नहीं समझी, अथवा यह कहा जा सकता है कि वह जानबूझ कर खामोश रहा; भारत-सरकार या राजनीतिक विभाग भी चुप्पी साधे रहा।

सरकारी लोपापोती और जाँच-कमीशन—धीरे-धीरे बाहरी दुनिया को इस हत्याकांड की खबर मिली; चारों ओर इसकी चर्चा होने लगी। आखिर, अलवर दरबार ने घटना के २७ दिन बाद १० जून को एक विज्ञप्ति प्रकाशित कराई; यह १२ जून के 'टाइम्स आफ इंडिया' में छपी। इसमें इस घटना की लीपापोती करते हुए कहा गया कि दो आदमी मरे, और, चार जख्मी हुए, जिनमें से एक पीछे मर गया। ऐसी बातों पर सर्वसाधारण को विश्वास नहीं हुआ। जगह-जगह सभाएँ हुईं और यह निश्चय किया गया कि जाँच-कमीशन बैठाया जाय और पीड़ितों को राहत दी जाय। ऐसी एक विराट सभा ११ जून को बम्बई में हुई। राज्य ने दो राज्याधिकारियों और दो सरदारों का एक जाँच-कमीशन नियुक्त किया। महाराजा ने २३ जुलाई को अपनी वर्षगाँठ के अवसर पर दरबार में इस घटना का उल्लेख करते हुए कहा कि 'इसमें १३ आदमी मरे, १२ जख्मी हुए, जिनमें दो औरतें भी थीं, और तीन आदमी लापता हुए। आग से ११,००० रु० का नुकसान हुआ, और ६० पशु मर गए।' राज्य ने अपने जाँच-कमीशन की रिपोर्ट दो बार लौटा दी, क्योंकि वह 'सन्तोषजनक' न थी। पीछे भी वह प्रकाशित नहीं की गई। अलवर दरबार ने ११,००० रु० की क्षति पूरी की जाने की आज्ञा दी, इससे स्पष्ट है कि आग लगाने की जिम्मेदारी जनता पर न होकर अधिकारियों पर थी।

गैर-सरकारी जाँच—अलवर सरकार की इस विषय की जाँच सम्बन्धी उपेक्षा तथा शिथिलता और लीपापोती-नीति का विचार करके सार्वजनिक कार्यकर्ताओं ने गैर-सरकारी जाँच कमेटी नियत की। इसकी रिपोर्ट में, जो प्रकाशित नहीं होने पाई, कहा गया था कि इस अवसर पर ३५३ झोपड़ियाँ नष्ट की गईं और ७१ पशु जला दिए गए। इनकी तथा अन्य सम्पत्ति मिला कर, पचास हजार से लेकर एक लाख रुपए तक का नुकसान होने का अनुमान किया गया। मनुष्यों की प्राण-हानि के बारे में बताया गया कि कम-से-कम १६ आदमी और औरतें अपने घरों में गोलियों से मारे गए, १८ जख्मी हुए, और ८ का पता नहीं लगा। ये अंक उन्हीं व्यक्तियों के हैं, जिनके नाम मालूम हो सके। वास्तव में संख्या कहीं अधिक थी। जाँच-कमेटी के सभापति श्री मणिलाल जी कोठरी ने अगस्त १६२८ में लखनऊ के सर्वदल सम्मेलन के सामने बताया था कि इस कांड में ६५ आदमी गोली से भूने गए, २५० से अधिक घायल हुए और अनेक घर जलाए गए।

विशेष चिन्ता की बात—इस कांड के बाद राजपूतों को सब से अधिक चिन्ता उन व्यक्तियों की थी, जो इस दुर्घटना के पश्चात् गिरफ़्तार कर लिए गए थे। अभियुक्तों के साथ व्यवहार करने में कानून की उपेक्षा की गई, उन्हें अपनी सफाई के लिए यथेष्ट सुविधाएँ नहीं दी गईं, जेल में उनसे बुरा बर्ताव किया गया, तथा उन पर इस बात के लिए भला-बुरा सब तरह का दबाव डाला गया कि वे माफी माँग लें और नीमूचाणा-कांड के विषय में समझौता करलें। अभियुक्तों में से पाँच आदमी कैद किए गए। इनमें से दो को बीस-बीस साल की सख्त सजा दी गई, एक को दस साल की, और दो को पाँच-पाँच साल की। दो कैदी सख्तियों के कारण जेल में ही मर गए।*

*श्री अभ्यंकर जी की 'प्राबलेम्स ऑफ नेटिव स्टेट्स' पुस्तक, और राजस्थान सेवा-संघ की फाइलों के आधार पर।

अलवर राज्य और ब्रिटिश अधिकारी—सब से दर्दनाक बात यह है कि यद्यपि ब्रिटिश अधिकारियों को इस कांड के बारे में बारबार लिखा गया, उन्होंने महाराजा आदि के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की, और न पीडित लोगों का कष्ट कम करने की ओर ही कुछ ध्यान दिया। अलवर राज्य की जनता को यह विश्वास हो गया कि महाराजा की सत्ता असीम है, और रियासत की ओर से उन्हें जो न्याय मिला है, उसमें कोई हेरफेर नहीं हो सकता, चाहे इङ्गलैंड के भूतपूर्व न्यायाधीश ही भारतवर्ष के वायसराय क्यों न हों। अस्तु, इस कांड से जनता पर कुछ समय तक आतंक रहा, पर इससे असंतोष मिटनेवाला न था; राज्य ने किसी तरह उसे दमन करने का प्रयत्न किया। पीछे कुछ शासन-सुधार भी हुए। सन् १९३२-३३ में मेवों का आन्दोलन न होने पर नई शासन-व्यवस्था स्थापित हुई।

प्रजामंडल का कार्य—राज्य में पहिले कांग्रेस कमेटी स्थापित की गई थी, परन्तु हरिपुरा कांग्रेस के प्रस्ताव के बाद प्रजामंडल की स्थापना हुई। राज्य ने दमन किया, कुछ कार्यकर्त्ताओं को जेल भी भेजा, पर प्रजामंडल अपनी परीक्षा में सफल रहा। राज्य द्वारा सन् १९४० में इसकी रजिस्टरी हुई। परन्तु इस समय उसका उद्देश्य 'उत्तरदायी शासन' के बजाय 'राज्य के शासन-कार्य में जनता का उत्तरोत्तर सहयोग' करना पड़ा। इसी उद्देश्य के अन्तर्गत प्रजामंडल राज्य में सुधारों की माँग करता रहा। इसका संगठन दृढ़ होता गया, और इसकी शाखाएँ राज्य भर में खुल गईं। हरिजन-उद्धार, खादी प्रचार आदि रचनात्मक कार्य भी किए गए। प्रजामंडल मीणों की उन तकलीफों को दूर करने का भी प्रयत्न कर रहा है, जो उन्हें 'जरायमपेशा' समझे जाने से, पुलिस द्वारा दी जाती हैं।

राज्य में नागरिक अधिकारों की बहुत कमी रही है। सार्वजनिक

सभाएँ करने या सामयिक पत्र-पत्रिकाएँ निकालने के सम्बन्ध में बहुत प्रतिबन्ध रहे हैं। कानून-विरुद्ध होने पर भी बेगार प्रचलित रही है, और राजकर्मचारी देहातों में भोजनादि आवश्यक पदार्थ बाजार-भाव से सस्ते दामों पर लेते रहे हैं। इन बातों का प्रजामंडल ने समय-समय पर घोर विरोध किया। उसके सदस्य बारबार सरकार के कोप-भाजन बनते हुए भी लोकसेवा और जनता की राजनीतिक प्रगति करते रहे हैं।

राज्य में खालसे की अपेक्षा जागीर-माफी प्रजा की दशा और भी अधिक शोचनीय है, कारण जागीरों ने इस प्रजा के विस्वेदारी और मौरूसी अधिकार जप्त कर लिए हैं। स्व० महाराज के राज्य-त्याग के बाद उनके समय में दी हुई जागीर-माफ़ियों में तो यह अधिकार वापिस कर दिए गए, परन्तु पुरानी जागीर-माफियों में ऐसा नहीं किया गया। प्रजामंडल ने इस सवाल को अपने हाथ में लिया; जून १९४१ में उसने 'जागीर-माफी कान्फ्रेंस' नामक एक बहुत बड़ी सभा करके सरकार से इस विषय की माँग की थी। लाग-बाग कानूनन बन्द होने पर भी जागीरी इलाकों में जबरदस्ती ली जाती हैं। जागीरदार राज्य में पदाधिकारी हैं। वे अपना सङ्गठन करते हैं, और जागीरी जनता पर मनमानी हुकूमत करते हैं। प्रजामंडल को इनसे सङ्घर्ष लेना स्वाभाविक ही है।

ता० ६ मार्च १९४६ को प्रजामंडल का प्रतिनिधि-मंडल प्रधान-मन्त्री सर बापना से मिला। सर बापना ने कहा कि ब्रिटिश भारत में केन्द्रीय सरकार बन जाती है तो अलवर में भी उत्तरदायी शासन कायम हो जायगा, वरना स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार शासन-सुधार होगा। इससे देशी राज्यों के अधिकारियों की मनोवृत्ति का सहज ही अनुमान हो जाता है।

भ्रममूलक घोषणा; उत्तरदायी शासन की माँग— अक्तूबर १९४७ में, दशहरे के अवसर पर महाराजा ने शासन में लोकप्रिय तत्व दाखिल करने की घोषणा की। इसके अनुसार कौंसिल में तीन लोकप्रिय मंत्री लिए जायँगे। असल में तीन लोकप्रिय मंत्रियों की बात भ्रममूलक है; कारण, इनमें से एक तो जागीरदारों का प्रतिनिधि होगा; दूसरा हिन्दू सभा का लिया जायगा और तीसरा लोकप्रिय मंत्री प्रजामंडल वालों में से लिया जायगा, और इसके लिए तीन नामों की सूची माँगी गई है।

इस घोषणा का बहिष्कार करने के लिए आम सभा बुलाई गई। इस सभा में मास्टर भोलानाथ जी ने कहा कि 'महाराजा साहब ने वर्तमान होम मिनिस्टर को लोकप्रिय मन्त्री मानकर, व हिन्दू सभा को प्रजामण्डल के बराबर एक लोकप्रिय मन्त्री देने की बातें कह कर, तथा नई नई जागीरें देकर प्रतिक्रियावादी शक्तियों को प्रोत्साहित किया है। इस प्रकार की कार्यवाही करके सरकार 'फूट डालो और राज्य करो' वाली अंग्रेज़ों की नीति पर हकूमत चला रही है।' इससे अलवर राज्य की वर्तमान स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है, और यह मालूम हो जाता है कि सार्वजनिक कार्यकर्ता उदासीन नहीं हैं, सजग हैं।

प्रजामंडल का स्पष्ट मत है कि जब तक महाराजा साहब निश्चित तिथि के अन्दर उत्तरदायी शासन कायम करने की घोषणा नहीं करेंगे और अन्तःकालीन व्यवस्था में प्रजामण्डल को यथेष्ट प्रतिनिधित्व नहीं देंगे, तब तक वह ऐसी घोषणा में साथ नहीं देगा।

भरतपुर

यह राज्य 'राजस्थान का सिंहद्वार' कहा जाता है। इसका क्षेत्रफल १९७८ वर्गमील, और आबादी (सन् १९४१ की गणना के अनुसार) ५,७५,६२५, है। वार्षिक आय लगभग पचास लाख रुपए है।

'शासन समिति विधान' की आशा पूरी न हुई— भरतपुर राज्य आगरा और मथुरा से मिला हुआ होने के कारण यहाँ ब्रिटिश भारत के आन्दोलन का प्रभाव बराबर पड़ता रहा, और यहाँ की जनता कांग्रेस के कार्य में बहुत रुचि रखती रही। पिछले महाराज किशनसिंह जी, जो सन् १९०० में गद्दी पर बैठे और जिन्हें बालिग होने पर सन् १९१८ में शासनाधिकार मिले, बुद्धिमान और चतुर व्यक्ति थे। पर उनका संग-साथ बुरे आदमियों का होने के कारण वातावरण बहुत खराब रहा। राज्य में कोई व्यवस्था न रही और वह दीवालिया हो गया। हाँ, उनके द्वारा एक काम अच्छा हुआ। २ मार्च १९२७ को उन्होंने जनता को राजकाज में सहयोग करने का अधिकार देने की घोषणा की, और १५ सितम्बर को 'शासन समिति विधान, १९२७' के अमल में आने की स्वीकृति दे दी थी। पर महाराजा साहब गद्दी से उतारे गए और १९२९ में मर गए। निदान, जब इस शासन समिति का चुनाव होनेवाला था, तो मिस्टर मेकेन्जी ने (जो महाराजा किशनसिंह जी के गद्दी से उतारे जाने पर राज्य के एडमिनिस्ट्रेटर नियुक्त हुए थे) उसका काम रोक दिया। इस प्रकार शासन समिति, जो कभी उत्तरदायी शासन की आशा पूरी करती, समाप्त हो गई।

नाबालगी शासन—महाराजा बृजेन्द्रसिंह के नाबालगी शासन (१९२९-३९) में यहाँ जनता की नागरिक स्वाधीनता का का बुरी तरह अपहरण किया गया। कोई सभा आदि करना कठिन था। राष्ट्रीय नेताओं के चित्र रखना तक अपराध माना जाता था। सूरजमल-जयन्ती मनाना बन्द कर दिया गया था, और कई कार्यकर्ताओं को कारावास दिया गया था। तथापि सन् १९३० में कुछ विद्यार्थियों ने हिम्मत करके प्रथम 'स्वाधीनता-दिवस' मनाया। सन् १९३२ तक कुछ राजनीतिक कार्य होता रहा। इस वर्ष कई कार्यकर्ताओं के घरों

को तलाशी ली गई, दो कार्यकर्ताओं पर सिर्फ कुछ चित्र और पुस्तकें रखने के कारण मुकदमा चलाया गया और मास्टर आदित्येन्द्र जी को सरकारी नौकरी से त्यागपत्र देने के लिए मजबूर किया गया। सन् १९३७ में यहाँ नया दमनकारी कानून 'क्रिमिनल ला अमेंडमेंट एक्ट' (फौजदारी कानून संशोधन विधान) बना दिया गया।

प्रजा-परिषद् की स्थापना और सत्याग्रह—सन् १९३९ तक यहाँ सार्वजनिक कार्यकर्ता राष्ट्रीय कार्यक्रम यथासम्भव चलाते रहे। इस वर्ष उन्होंने प्रजामंडल स्थापित किया। राज्य के नियम के अनुसार उसकी रजिस्टरी कराना आवश्यक था, पर जब रजिस्टरी के लिए दर्खास्त दी गई तो नाबालगी शासन के प्रधान अधिकारी सर रिचर्ड टाटनहम ने (जो पीछे दीवान बनाए गए) उसे अस्वीकार कर दिया। इस पर सत्याग्रह हुआ, जो नौ महीने खूब जोर से चला। सरकारी आंकड़ों के अनुसार इसमें ४७३ आदमियों ने भाग लिया, जिनमें ३२ महिलाएँ भी थीं। उनमें से २०२ पर अभियोग चल कर उन्हें सज़ा भी मिली थी, इनमें से अधिकांश अर्थात् १२५ व्यक्ति २५ दिसम्बर को समझौता होने पर ही छूटे थे। सरकारी शासन रिपोर्ट में भी यह स्वीकार किया गया था कि इस आन्दोलन में पुलिस, न्याय और जेल विभागों पर बहुत जोर पड़ा, और इस युद्ध का मुकाबला करने के लिए सरकार का लगभग ७,५०० रुपए अतिरिक्त व्यय हुआ। अन्ततः दिसम्बर १९३९ में प्रजामंडल का, दीवान के साथ समझौता हुआ और इस संस्था की रजिस्टरी 'प्रजा परिषद' के नाम से की गई।

प्रतिक्रियावादी अधिकारियों और गुटबन्दियों से संघर्ष—जनवरी (१९४०) से राज्य के दीवान सर रिचर्ड टाटनहम राष्ट्रीय तिरंगे झंडे को वर्जित करार दे दिया और लगभग चार माह

इसी प्रश्न पर संघर्ष चलता रहा। नए दीवान श्री के० पी० एस० मेनन ने झगड़े का अन्त करना चाहा, पर वह जारी ही रहा।

सन् १९४० और ४१ में परिषद को कुछ सरकारी प्रतिक्रियावादी अधिकारियों व उनकी जनहित-विरोधी गुटबन्दियों के विरुद्ध संघर्ष करते रहना पड़ा। इस मामले में उसे सब से अधिक टक्कर तत्कालीन रेवेन्यू मिनिस्टर श्री रामलाल वात्रा से लेनी पड़ी। जब रेवन्यू मिनिस्टर दमन और दूसरे ऐसे ही उपायों में असफल हो चुका तो उसने प्रजा-परिषद के कुछ प्रमुख कार्यकर्ताओं को अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर अपनी ओर मिला लिया और उनकी सहायता से परिषद-विरोधी संस्थाएं खड़ी कर दीं जो कभी जाट-सभा और कभी किसान-सभा आदि नामों से चलती रहीं।

स्थानीय संस्थाओं सम्बन्धी कार्य—सन् १९४०-४१ में प्रजा-परिषद् ने म्युनिसिपल बोर्डों और टाउन बोर्डों के चुनाव में भाग लिया। कुछ टाउन बोर्डों में तो सभी स्थानों पर प्रजा-परिषद् के सदस्यों की विजय रही। खास भरतपुर शहर में, प्रतिगामी दलों और राज्य का भारी विरोध होने पर भी तीन स्थानों के लिए परिषद् के उम्मेदवार सफल हुए। उन्होंने म्युनिसिपल कार्यक्रम में भारी परिवर्तन करने की कोशिश की; पर, सन् १९४२ का आन्दोलन आजाने पर, इस्तीफा दे देने के कारण, वे विशेष सुधार न कर सके। हाँ, उन्होंने राष्ट्रीय हितों के सामने स्थानीय हितों का त्याग करके अपनी उदार भावना और दूरदर्शिता का अच्छा परिचय दिया।

सन् बयालीस का आन्दोलन—बम्बई में ८ अगस्त को कांग्रेस के बड़े-बड़े नेताओं की गिरफ़ारी होने के तीसरे ही दिन ता० १० अगस्त को परिषद के प्रमुख कार्यकर्ताओं को एकसाथ गिरफ़ारी हो गई। दो माह तक बड़ी सभाओं व प्रदर्शनों से लेकर, गैर-जिम्मेदार

हकूमत के रूप में उक्त रेवेन्यू मनिस्टिर का जनाजा निकालना, टेली-ग्राम के तार काटना, खंभे उखाड़ना, जंगल-कानून तोड़ना, क्रान्तिकारी पर्चे बांटना आदि कार्य होता रहा। इसी बीच में राज्य में भयङ्कर बाढ़ आ जाने से नेताओं ने कुछ समय आन्दोलन स्थगित कर दिया, उधर राज्य ने भी समझौते के लिए हाथ बढ़ाया। इससे अक्तूबर के अन्त में समझौता होकर संघर्ष समाप्त हो गया। इस समय जनता की खासकर दो माँगें पूरी हुईं—(१) पहले यहाँ सिर्फ सलाहकार समिति थी; अब 'वृज जया प्रतिनिधि समिति' नाम की व्यवस्थापक सभा स्थापित की गई। (२) रेवन्यू मिनिस्टिर बाजा को हटाया गया। सन् १९४२ में 'क्रिमिनल ला एमेंडमेंट एक्ट' की जगह 'पब्लिक सोसायटीज़ एक्ट' बनाया गया था। इसके द्वारा जनता के जन्मसिद्ध अधिकारों—लेखन, भाषण, सभा-संथाएं स्थापित करना आदि—पर प्रतिबन्ध लगा। हाँ, परिषद् अपने अधिवेशन तथा साधारण सभा करने और जलूस निकालने आदि का काम स्वतंत्रता-पूर्वक कर सकी।

प्रजा-परिषद् और व्यवस्थापक सभा—सन् १९४२ में प्रजा-परिषद् ने व्यवस्थापक सभा के चुनाव में भाग लिया, और उसमें खूब विजय प्राप्त की। पीछे उसने व्यवस्थापक सभा के अधिवेशनों में विरोधी सदस्यों से अच्छी टक्कर ली। प्रतिगामी दलों के संगठन के कारण कुछ दशाओं में प्रजा-परिषद् की बात नहीं चली, और उसे सभा के अधिवेशन से निकल आना या सभा का बहिष्कार करना पड़ा। परिषद् के सदस्यों की अनुपस्थिति में, व्यवस्थापक सभा सिर्फ सरकारी संस्था सी रह गई। कई बार सभापति और मन्त्री सभा का कोरम पूरा करने के लिए सदस्यों को बुलाते फिरे। इस प्रकार परिषद् के अभाव से व्यवस्थापक सभा की कुछ प्रतिष्ठा न रही।

शासन-सुधार की बात—सन् १९४१ में, बसन्त दरबार के अवसर पर महाराज ने घोषणा की थी कि एक मन्त्री लोकप्रिय रखा

जायगा, जिसका चुनाव बालिग मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा ही किया जायगा। उसका कार्यकाल तीन वर्ष होगा। यदि त्यागपत्र देने या मरजाने आदि के कारण उसका पद खाली हो जाय तो धारा सभा के निर्वाचित सदस्यों के बहुमत से चुना हुआ व्यक्ति उसकी पूर्ति करेगा। पीछे एक के बजाय तीन मन्त्री लोकप्रिय रखने की घोषणा की गई, परन्तु प्रजा-परिषद, मुसलिम लीग और किसान-सभा ने इस घोषणा को भी अपर्याप्त समझा और अस्वीकार कर दिया।

अधिकारियों की बेजा हरकतें—जनवरी १९४७ में ऐसा मालूम हुआ, मानो भरतपुर राज्य के शासन ने जनता के बढ़ते हुए आन्दोलन से क्रुद्ध होकर उसे कुचलने के लिए बदमाशों के हाथ में सत्ता सौंप दी हो। घटनाएँ संक्षेप में इस प्रकार हुईं—वायसराय बत्तक मारने के लिए भरतपुर पधारे, तो महाराजा ने सैकड़ों नागरिकों को बेगार में पकड़ कर कड़ी सर्दी के समय तालाबों में खड़े होने के लिए मजबूर किया। इसके फल-स्वरूप एक आदमी के तो प्राण ही निकल गए। इस पर भी मजदूरी सिर्फ एक रुपया दैनिक दी गई, जो उस समय की महँगाई में खुराक के लिए भी काफी न थी। इस अत्याचार के विरुद्ध प्रजामंडल ने सरकारी दफ़्तरों पर धरना दिया। २३ जनवरी को धरना देनेवालों की सहानुभूति में वहाँ काफी जनता जमा हो गई। इस पर महाराजा साहब के भाई ने घुड़सवार सैनिकों द्वारा भीड़ पर हमला किया, जिससे कितने ही नागरिक घायल हो गए।

महाराजा के दौरे पर से भरतपुर आने के समय प्रजामंडल के कुछ प्रेमियों ने स्टेशन पर विरोध-प्रदर्शन का विचार किया। पर इसकी सूचना अधिकारियों को मिल गई और उन्होंने कुछ गुण्डों को

किसान-सभा की झंडियाँ देकर मोटर-लारियों द्वारा स्टेशन पहुँचा दिया। इससे वहाँ उपद्रव हुआ। राजधानी और अन्य नगरों में भी मारपीट, दंगा, महिलाओं का अपमान, और लूट-खसोट हुई।

लोक-परिषद् के मन्त्री का वक्तव्य—महाराजा साहब के सुझाव पर, इस भयंकर स्थिति की जाँच करने के लिए अ० भा० देशी राज्य लोक-परिषद् के मन्त्री श्री द्वारकानाथ काचरू भरतपुर आए और महाराजा से मिले, पर कोई नतीजा नहीं निकला। श्री काचरू ने अपने वक्तव्य में उपर्युक्त बातों का समर्थन करने के अतिरिक्त कहा था कि 'महाराजा जाट हैं, और वे जाटों को उकसाकर प्रजामंडल-विरोधी आन्दोलन खड़ा करने का प्रयत्न कर रहे हैं। किसान-सभा राज्य के समर्थकों की जमात है। महाराजा खुद इसके सदस्य हैं, राज्य के दीवान हुकमसिंह भी जाट हैं, और किसान-सभा की पीठ पर प्रतीत होते हैं। खुली जाँच उन्हें मंजूर नहीं है। प्रजामंडल का दफ्तर पुलिस ने अपने कब्जे में ले लिया है, और वहाँ रहनेवालों को गिरफ्तार कर लिया है। साप्ताहिक 'नवयुग संदेश' का प्रेस सरकार के कब्जे में है और पत्र का प्रकाशन बन्द है। जत्थों पर जत्थे गिरफ्तार किए जा रहे हैं, और उन्हें रात की सर्दी में जंगल में दूर छोड़ दिया जाता है। राजनीतिक बन्दियों को पूरा खाना और ओढ़ने-बिछाने को बिस्तर तक नहीं दिए जाते। उनके साथ मारपीट करना जेल-अधिकारियों का नियम सा हो गया है।'

ऊपर 'नवयुग सन्देश' का जिक्र आया है। यह राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र राजस्थान के एक सुयोग्य कार्यकर्ता श्री युगलकिशोर जी चतुर्वेदी ने अक्तूबर १९४५ से निकालना शुरू किया था। इसने अधिकारियों की कूटनीति और पक्षपात का खूब विरोध किया। जमानत माँगे जाने के विरोध में इसका प्रकाशन कुछ समय स्थगित रहा। सन् १९४७ में श्री चतुर्वेदी जी जन-आन्दोलन में भाग लेने के कारण जेल के

मेहमान बने, तो पत्र बन्द रहा। नवम्बर मास से फिर इसके प्रकाशन की व्यवस्था हुई। अब श्री सांवलप्रसाद जी चतुर्वेदी इसके सम्पादक हैं।

जनता की विजय निश्चित है—दिसम्बर १९४७ में महाराजा साहब ने अन्तरिम सरकार में चार लोकप्रिय मन्त्री नियुक्त करने की घोषणा की है। स्मरण रहे कि जनता की प्रगति अब बहुत समय नहीं रोकी जा सकती। कोई सरकार बनी नहीं रह सकती, जब तक उसे लोकमत का समर्थन न हो। शासकों और उनके समर्थकों को समझ लेना चाहिए कि वे अब जन-आन्दोलनों की उपेक्षा न कर सकेंगे। प्रजा-परिषद् एक सुसंगठित संस्था है। पिछले सात-आठ साल में यह राज्य से तीन बार सफल संघर्ष कर चुकी है। इसके लगभग ८,००० सदस्य हैं, कार्यकारिणी है, और तहसीलों की जुदा-जुदा कमेटियाँ हैं। मंडल कमेटियाँ बन रही हैं। परिषद् जनता के कष्टों को दूर कराने और पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित कराने का ज़ोरदार आन्दोलन कर रही है; वह उसमें सफल होकर रहेगी।

जोधपुर

साधारण परिचय—जोधपुर (या मारवाड़) राजपूताना में सब से बड़ा देशी राज्य है। इसका क्षेत्रफल ३६,०२१ वर्ग मील, जनसंख्या (सन् १९४१) २५,५५,९०४ और सालाना आमदनी ढाई करोड़ रुपए है। इस राज्य में केवल ७,०२१ वर्गमील ही खालसा ज़मीन है, शेष जागीरदारों के अधीन है; इसी प्रकार ९०२ गाँव खालसा है और ३,४४४ गाँव जागीरी हैं। यहाँ के शासक राठौर राजपूत हैं। यह राज्य भारतीय संघ और पाकिस्तान के बीच में, दोनों की सीमा पर है।

उन्नीसवीं सदी की बात—इस राज्य में राजनीतिक आन्दोलन बहुत पहले शुरू होने का पता लगता है। यहाँ के लोकनायक श्री० जयनारायणजी व्यास का कथन है कि 'मारवाड़ में सन् १८८० से राजनीतिक आन्दोलन होने का रेकार्ड है। श्री० चान्दमल जी मणिहार और मूलचन्द जी जोशी का देश-निकाला होना मारवाड़ के राजनीतिक आन्दोलन के इतिहास में महत्व की घटनाएँ थीं। उनकी हलचलों के कारण उस जमाने में लन्दन की पार्लिमेंट में भी मारवाड़ के इन्तजाम के बारे में सवालात हुए थे। ये बातें बीच में ठंडी पड़ गईं, शायद इसलिए कि पढ़े-लिखे आदमी जिनकी तादाद ज्यादा नहीं थी, नौकरियों पर, खासकर छोटी नौकरियों पर, रख लिए गए।'*

शिक्षितों की बेकारी—जैसा कि इस उद्धरण से विदित है राजनीतिक आन्दोलन का पुराना क्रम बीच में टूट गया। तो भी राज्य में जन-जागृति की लहर काफी समय से है। ज्यों-ज्यों यहाँ शिक्षा का प्रचार बढ़ता गया, त्यों-त्यों शिक्षितों में बेकारी भी बढ़ती गई; कारण इनमें सिवाय नौकरी करने के, दूसरे कामों की रुचि अथवा योग्यता न रही; और, नौकरियों की संख्या तो राज्य में परिमित ही होती है। फिर, इन शिक्षितों में यह भावना बढ़ती गई कि हमारे योग्य होते हुए राज्य का काम चलाने के लिए आदमी बाहर से बुला कर क्यों रखे जायँ; राजप्रबन्ध यहाँ के ही आदमियों द्वारा होना चाहिए।

कुछ प्रारम्भिक आन्दोलन—इस राज्य में यह प्रयत्न किया गया कि सार्वजनिक आन्दोलन बढ़ने से पहले ही रोक दिया जाय। सन् '९०५ में बंगाल के दो टुकड़े होने के बाद भारतवर्ष के गवर्नर-जनरल को यह चिन्ता हुई कि देश में बगावत न हो। इसलिए उन्होंने

---

*'जोधपुर राज्य' पुस्तक से।

सन् १९०७ में एक सरक्यूलर (गश्ती पत्र) रियासतों को भेजा। इस पर जोधपुर राज्य ने सन् १९०९ में एक 'राजद्रोह-कानून' बनाया, जिससे राजनीतिक संस्थाओं का दम चाहे जब घोटा जा सके। किन्तु यहाँ सार्वजनिक कार्य सन् १९१८ से कुछ विशेष रूप से होने ही लगा। प्रारम्भिक संस्थाओं का कार्यक्षेत्र प्रायः जोधपुर नगर ही होता था। मारवाड़ सेवा-संघ सन् १९२० में दिवाली के अवसर पर स्थापित हुआ। यह राजस्थान-सेवा-सङ्घ से सम्बन्धित था और श्री० भँवरलाल जी सर्राफ इसके मंत्री थे। सन् १९२१ में मादी जानवरों की निकासी का जोरदार विरोध हुआ। एक माह तक किसानों के हस्ताक्षर कराकर महाराजा के पास भेजे गए। रेलगाड़ियों के आगे लेट कर सत्याग्रह किया गया। इस पर बहुत से आदमियों को बड़ी-बड़ी सजाएँ दी गईं। पर अन्त में जनता की माँग पूरी हुई; अहमदाबाद और बम्बई जाने-वाले पशु रोके गए।

सन् १९२४ में महाराजा और महारानी के विलायत जाने का विरोध किया गया। इस अवसर पर आन्दोलनकारियों को राज्य से निकाले जाने तक का दंड दिया गया। सर्वश्री चान्दमल जी सुराणा, शिवचरण जी जोशी और प्रतापचन्द जी वकील महाराजा के विलायत से वापिस आने तक (छः माह) निर्वासित रहे। छः सज्जनों को शाम के आठ बजे से सबेरे छः बजे तक पुलिस के थाने में रहने और वहाँ ही सोने का दंड दिया गया। इनमें से पाँच ने इस अपमानजनक आज्ञा को मानने की अपेक्षा जोधपुर छोड़ देना ही उचित समझा।

मारवाड़ हितकारिणी सभा—इस बीच में मारवाड़ हित-कारिणी सभा स्थापित होकर जन-आन्दोलन कर रही थी। इसके सम्बन्ध में श्री० जयनारायण जी व्यास ने लिखा है कि इस संस्था ने, सदस्य-संख्या और विधान की दृष्टि से असङ्गठित होते हुए भी, शहर में

मुकम्मिल हड़ताल तक कराने का साहस किया था। सन् १९२२ में इस संस्था में नया खून आया, जब श्री चान्दमल जी सुराना इसके सभापति चुने गए और व्यास जी इसके मंत्री। सिर्फ जोधपुर नगर में ही, इसके एक-एक रुपया सालाना चन्दा देनेवाले सदस्य कई हजार बनाए गए। इस संस्था की ओर से 'देशी' पढ़े-लिखे होने पर बाहर के लोगों को न बुलवाने की माँग की गई। इस पर सन् १९२४ में कुछ लोग निर्वासित किए गए, कुछ दस नम्बर के बदमाश करार दिए गए, जिनमें सर्वश्री आनन्दराज सुराना, अब्दुल रहमान अन्सारी और जय-नारायण व्यास भी थे। सन् १९२९ में इस संस्था ने मारवाड़-प्रजा-परिषद् भरने की व्यवस्था की, पर राज्य ने उसका अधिवेशन नहीं होने दिया और इस संस्था को गैर-कानूनी करार दे दिया।

अन्य संस्थाएँ और दमन—इस अवसर पर श्री व्यास जी, आनन्दराज जी सुराणा और भँवरलाल जी सराफ राजद्रोह के अभि-योग में गिरफ़्तार किए गए, और नागौर क़िले में मुकदमा चलाया जा कर श्री व्यासजी को ७ साल, व बाकी दोनों को ३॥-३॥ साल की सजा दी गई। पीछे गाँधी-इरविन पेक्ट होने पर श्री० व्यासजी आदि छोड़ दिए गए। सन् १९३१ में जोधपुर में "यूथ लीग" कायम की गई। इसकी शाखाएँ मारवाड़ के दूसरे कस्बों में भी फैलीं। सन् १९३१ में पुष्कर में मारवाड़ राज्य प्रजा-परिषद् का खुला अधिवेशन श्री० चाँदकरण जी शारदा के सभापतित्व में हुआ, जिसमें माता कस्तूर बा, काका कालेलकर इत्यादि पधारे थे। श्री० अभयमल जी जैन वहाँ दर्शक के तौर पर गए थे, इस कारण राज्य ने उन्हें नौकरी से बरखास्त कर दिया। सन् १९३१ में ही "बाल भारत सभा" कायम हुई, जिसने प्रभात फेरियों, सभाओं और जुलूसों के ज़रिए शहर में बहुत जन-जागृति पैदा की। सरकार ने उसकी सभाओं पर पाबन्दी लगा दी, परन्तु उसके मन्त्री

श्री० छगनलाल जी चौपासनीवाला ने पाबन्दी तोड़ कर दो महीने की सजा का स्वागत किया ।

कांग्रेस का आन्दोलन चलने से यहाँ के कार्यकर्ता श्री० व्यासजी, गणेशलाल जी व्यास, मानमल जी जैन, अभयमल जी जैन आदि ने अजमेर जाकर सत्याग्रह किया । जेल से जल्दी ही छूट जाने पर श्री० अचलेश्वरप्रसाद जी शर्मा ने जोधपुर में काम किया । जब महात्मा गाँधी ने हरिजनों के बारे में उपवास किया, उस वक्त यहाँ कार्यकर्ताओं ने बड़े जोर से खादी-प्रचार किया परन्तु तत्कालीन चीफ मिनिस्टिर श्री० चैनसिंह जी ने इस कार्य पर भी रोक लगाई और खादी जब्त कर ली । सन् १९३२ में ही पहली मर्तबा स्वतंत्रता-दिवस पर श्री० चौपासनी-वाला ने यहाँ राष्ट्रीय झंडा फहराया । वे पकड़े गए, बुरी तरह पीटे गए और पीछे छोड़ दिए गए । जन-जागृति के ही सिलसिले में सन् १९१२ में श्री० अचलेश्वरप्रसाद जी शर्मा को ६ महीने के लिए नजरबन्द रखा गया । सन् १९३४ में दिल्ली में अखिल भारतीय देशी राज्य लोक-परिषद् का विशेष अधिवेशन हुआ था । उसमें भाग लेने के कारण श्री० चौपासनीवाला को जोधपुर में लौटते ही गिरफ्तार किया गया और ६ महीने के लिए नजरबन्द कर दिया गया ।

जोधपुर राज्य प्रजामंडल और नागरिक-स्वतंत्रता-संघ—सन् १९३४ में जोधपुर राज्य प्रजामंडल स्थापित किया गया, उसके प्रथम सभापति श्री० भँवरलाल जी सर्राफ थे । उसके द्वारा खासकर जोधपुर शहर में जन-जागृति का थोड़ा-बहुत काम होता रहा । सन् १९३६ के आरम्भ में उसके मुख्य कार्यकर्त्ता सर्वश्री मानमल जी जैन, अभयमल जी जैन, और छगनराज जी चौपासनी-वाला थे । मई में नागरिक-स्वतंत्रता-संघ की स्थापना श्री० रणछोड़-दासजी गट्टानी के प्रयत्नों से हुई । दोनों संस्थाएँ परस्पर सहयोग से

काम करने लगीं। राज्य की, तालाब बन्द करने व शिक्षा-फीस लगाने की नीति के विरुद्ध आन्दोलन किया गया। जनबल के कारण सफलता तो मिली परन्तु कुछ दिनों बाद २२ सितम्बर को श्री० मानमल जी, अभयमल जी और छगनराज जो सन् १६३२ के आर्डिनेन्स के अनुसार एक साल के लिए नजरबन्द कर दिए गए। तब प्रजामंडल के अध्यक्ष श्री० अचलेश्वरप्रसाद जी शर्मा ने रियासत में आकर काम करना शुरू किया। किसानों की स्थिति सुधारी जाने के लिए गाँवों में दौरे किए जाने लगे। मगर नवम्बर १६३७ में सरकार ने प्रजामण्डल व नागरिक-स्वतंत्रता-संघ दोनों को गैरकानूनी करार दे दिया। कई जगह शहर में एकसाथ तलाशियाँ हुईं। श्री० छगनलाल जी और गोरधन जी पुरोहित को सरकारी प्रेस की नौकरी से हाथ धोना पड़ा। श्री० अचलेश्वरप्रसाद जी शर्मा, पुरुषोत्तम प्रसाद जी नैयर और श्री० छगनराज जी चौपासनीवाला पर राजद्रोह के मुकदमे चले। पहले को २॥ वर्ष, दूसरे को ५००) रुपया जुर्माना, और तीसरे को दो माह की सज़ा हुई। इससे कुछ समय के लिए काम रुक गया।

मारवाड़ लोक-परिषद—मई १६३८ में जोधपुर राज्य प्रजा-मंडल के स्थान की पूर्ति करने के लिए मारवाड़ लोक-परिषद स्थापित की गई। इसका संगठन खासकर १६३६ में हुआ। सन् १६४० में राज्य ने इस संस्था को भी गैरकानूनी करार देकर कार्यकर्त्ताओं को किसी दूसरे नाम से काम करने की प्रेरणा की। पर जनता ने यह स्वीकार न किया। अन्त में समझौता हो गया। परिषद ने फरवरी १६४० में सरकार को सहयोग देने के लिए अपने प्रतिनिधि श्री व्यास जी को सलाहकार-समिति में भेजा। शुरू में कुछ सफलता हुई :—(१) प्रेस-कानून के अनुसार पहले मारवाड़ सम्बन्धी राजनीतिक बातें नहीं छप सकती थीं, अब छपने लगीं, (२) टाइप-

राइटर को रजिस्टर कराने का प्रतिबन्ध हटाया गया, (३) जागीरी जाँच में अफसरों को जागीरदारों के मेहमान बनने की प्रवृत्ति को रोका गया, (४ जिलों में परिषद के प्रचारकों के जाने पर, पुलिस का जनता में आतंक फैलाना कम हुआ, (५) जोधपुर म्युनिसपेलटी का संगठन जातिवार की जगह 'वार्डों' अर्थात् मोहल्लों के आधार पर किया गया। महायुद्ध छिड़जाने पर परिषद ने सन् १९३९ में अपना विधान मुल्तवी कर श्री० गट्टानी जी को प्रथम सेवक बनाया। राज्य की अकाल-नीति के सम्बन्ध में कूडीगाँव में काम करनेवाले १२०० मजदूरों के सवाल को लेकर नवम्बर १९३९ में ही परिषद को सरकार से टक्कर लेनी पड़ी। ५ दिन की कशमकश के बाद सरकार ने मजदूरों के सम्बन्ध में परिषद की स्थिति मंजूर करली, और मजदूरों की माँगे स्वीकार की गईं।

परिषद फिर अपने संगठन के काम में लग गई। मार्च १९४० तक विभिन्न परगनों में ३८ शाखाएँ कायम हो गईं। परिषद की इस बढ़ती हुई लोकप्रियता से क्षुब्ध होकर सरकार ने उसे गैर-कानूनी ठहरा दिया और उसके नेताओं को सन् १९३२ के आर्डिनेन्स के आधार पर एक-एक साल के लिए नज़रबन्द कर दिया। इस पर आन्दोलन छिड़ा। जून के अन्त में समझौता हुआ और परिषद फिर काम करने लगी। सन् १९४१ में सरकार ने सलाहकार असेम्बली के रूप में कुछ थोथे सुधार दिए; परिषद ने उन्हें मंजूर नहीं किया। फरवरी १९४२ में परिषद का खुला अधिवेशन लाडनू नगर में श्री रणछोड़दास जी गट्टानी के सभापतित्व में बड़ी सफलता से हुआ।

इसके बाद साल भर से अधिक परिषद का जागीरदारों से संघर्ष रहा, जिन्हें राज्य का भी सहारा था। इस विषय में आगे लिखा जायगा। मई १९४४ में परिषद का राज्य से समझौता हुआ और उसने जुलाई से नियमित रूप से काम करना शुरू किया। इस समय

मारवाड़ के विविध परगनों में बाढ़ आ गई थी, परिषद ने बाढ़-पीड़ितों की भरसक सहायता की। अक्तूबर १६४५ में श्री० नेहरू जी के जोधपुर पधारने पर उनका खूब स्वागत किया गया, राज्य ने भी इसमें पूरा सहयोग दिया और सरकारी छुट्टी रखी। देशी राज्यों के इतिहास में इस प्रकार का यह पहला ही अवसर था। फरवरी-मार्च १६४६ में परिषद का दूसरा खुला अधिवेशन श्री व्यास जी के सभापतित्व में हुआ।

परगनों में जन-जागृति का कार्य—जोधपुर राज्य के पिछड़े रहने का प्रधान कारण यह है कि शिक्षा, अस्पताल आदि सुविधाएँ सिर्फ जोधपुर शहर में ही थीं। अब कुछ जिलों में इनकी व्यवस्था होने लगी है। पंचायतें बन रही हैं। मजदूर-मुआवजा कानून आदि भी बने हैं। जागीरी जुल्मों के विरुद्ध भी लोकपरिषद की आवाज का कुछ असर हुआ है। कई गैर-कानूनी लाग-बाग उठ गई हैं। कई बार जुल्मी जागीरदारों के खिलाफ कुछ कार्रवाई भी की गई है।

परगनों में उत्साही कार्यकर्त्ताओं ने समय-समय पर खूब काम किया है। फलौदी के किसानों में एकता और जागृति करने का श्रेय खासकर श्री हरिकृष्ण जी 'सरल', बालकृष्ण जी थानवी और बालकृष्ण जी व्यास को है। देसूरी परगने के सङ्गठन में श्री फूलचन्द जी बापणा का मुख्य भाग रहा है।

हरिजनों और महिलाओं की जागृति—हरिजनों में यहाँ वैसे तो सन् १६३१ से कार्य हो रहा है। पर बाकायदा उनकी यूनियन सन् १६४६ में कायम की गई। राज्य ने उसकी वाजिब माँग न मानी तो उसे हड़ताल करनी पड़ी। लगभग एक सप्ताह की हड़ताल के बाद सरकार ने कुछ माँगें तो स्वीकार करलीं, और शेष के लिए एक जाँच-कमेटी नियुक्त की, जिसमें 'हरिजन यूनियन' के भी प्रतिनिधि रखे

गए। हरिजनों में जागृति करने का श्रेय श्री० अमरकृष्ण जी व्यास और श्रीचन्द जी जैसलमेरिया आदि सज्जनों को है।

यद्यपि महिलाओं में यहाँ कुछ काम पहले भी हुआ, और सन् १९४२ के आन्दोलन में कुछ महिलाएँ जेल भी गईं, महिला-परिषद् की स्थापना १९४५ में हुई। उसकी अध्यक्ष श्रीमती गौरजा जोशी, और प्रमुख कार्यकर्त्री श्रीमति सिरेकौर हैं।

जागीरी इलाकों के बारे में—इस राज्य का बहुतसा भाग जागीरी है, यह पहले बताया जा चुका है। यहाँ की नागरिक स्थिति बहुत-कुछ जागीरी जनता की दशा से जानी जाती है। इन लोगों का जो दमन किया जाता है, उसका बाहरी लोगों को सहज ही अनुमान नहीं हो सकता। जागीरदार जनता का बुरी तरह शोषण करते हैं, गैर-कानूनी ठहराई हुई बेगार और लागें लेते रहते हैं, और जो कोई इनके विरुद्ध ज़बान हिलाता है, उसे हर तरह सताते हैं। अपनी ओर से शिक्षा-प्रचार करना तो दूर, ये दूसरों द्वारा सञ्चालित शिक्षा-संस्थाएं भी बन्द कर देते हैं; और, ऐसा करने का कारण नहीं बताते, अथवा उसका चाहे जो कारण बता देते हैं।

दिसम्बर १९१२ में जब इन पंक्तियों का लेखक पोकरण में, मारवाड़ी शिक्षा मंडल द्वारा संचालित, माहेश्वरी स्कूल का हेडमास्टर था, ठिकाने ने जोधपुर दरबार में उस स्कूल पर सम्भवतः यह अभियोग लगा कर कि यहाँ विद्यार्थियों को 'बन्देमातरम्' कहना सिखाया जाता है, उसे बन्द कर दिया था।

पोकरण का आन्दोलन, जनता की विजय—पोकरण का स्कूल बन्द किए जाने के कुछ ही समय बाद यहाँ की जनता और ठिकाने के अधिकारियों का संघर्ष सामने आया। आरम्भ में आन्दोलन महाजनों ने उठाया, पर पीछे ब्राह्मणों ने भी साथ दिया, और आन्दोलन

ने व्यापक स्वरूप धारण किया।* पोकरण की जनता ने कई बार ठिकाने के अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाई थी, परन्तु हर बार काम बीच में ही छोड़ दिया जाता था। अब कुछ नए कष्टों से पीड़ित होने पर तथा विशेषतया ब्यावर के धनवान सेठ दामोदरदास जी राठी (जो मारवाड़ी शिक्षा-मंडल के संयुक्त मन्त्री थे) की यथेष्ट सहानुभूति और गुप्त नेतृत्व मिल जाने पर जनता ने अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय किया। जोधपुर महाराज की सेवा में एक सविस्तर निवेदन-पत्र भेजकर उसने अपने अधिकारों की माँग की। ठिकाने से लड़ाई लड़ने के लिए जन-धन की काफी तैयारी की गई। आखिर, ठिकाने को दबना पड़ा। फाल्गुण बदी ४, सम्वत १९७२ को पोकरण ठाकुर के हस्ताक्षर से जनता के अधिकारों का चिट्ठा प्राप्त हुआ। इसकी २१ धाराओं में से कुछ ये थीं—आटा बेचने का ठेका बन्द कर दिया जायगा; स्कूल की उन्नति की जायगी; धर्मशाला, कुई, बावड़ी, मन्दिर आदि बनवाने पर 'हथोड़ा' कर नहीं लगाया जायगा; धर्मशालाओं आदि में राजकर्मचारी मुसाफिरों की तरह ही ठहरेंगे, जमाऊ डेरा नहीं डालेंगे; घास, पाला, चारा, पत्थर, चूना आदि पर चुङ्गी माफ कर दी गई है। इस से ठिकानों या जागीरों की अब से तीस-पैंतीस वर्ष पहले की स्थिति का कुछ अनुमान हो सकता है।

जागीरदारों के अत्याचार, सन् १९४२ में—पोकरण की इस विजय से जागीरदारों ने विशेष शिक्षा न ली। उन्हें अपनी शक्ति और राज्य के सहारे का भरोसा रहा, और उन्होंने जनता की संगठन-हीनता का अनुचित लाभ उठाया। निदान, उनके अत्याचार बने रहे। उनकी कहानी बहुत लम्बी और दर्दनाक है। बीच की बातों को छोड़

*लेखक की 'देशभक्त दामोदर' (श्री दामोदरदास जी राठी का जीवन-चरित्र) नाम की अप्राप्य पुस्तक के आधार पर।

कर १९४१ की बात लें, जो बहुत प्रगति का समय था। २८ मार्च को मारवाड़ में उत्तरदायी-शासन-दिवस मनाया गया। कई ठिकाने के अधिकारियों को यह सहन न हुआ। चंडावल में कार्यकर्ताओं पर लाठियों और भालों से हमला किया गया। दो दर्जन व्यक्तियों को सख्त चोटें आईं, जिनमें एक महिला भी थी। नीमाज में चंडावल का अनुकरण किया गया। रोड के जगीरदार ने परिषद के प्रमुख कार्यकर्त्ता श्री० उमाराम जी चौधरी का घर जलवा दिया!

इन बातों को लोक-परिषद कब तक देखती रहती! उसने पहले चंडावल के मामले की जाँच करने का निश्चय किया। इस पर वहाँ १४४ दफा लगाकर सार्वजनिक सभाओं पर रोक लगा दी गई। परिषद ने अब सत्याग्रह करने की ठान ली। उसके सभापति श्री० गट्टानी जी तथा अन्य सज्जन चंडावल पहुँचे, पर उसी दिन राज्य ने सभाओं पर लगाई हुई रोक हटाली। यह जनता की विजय हुई। पर इससे मूल जागीरी समस्या हल न हुई। लोकपरिषद के डिक्टेटर श्री० जयनारायण जी व्यास ने महाराजा से मिलकर भ्रम-निवारण करना चाहा, पर सरकार से समझौता न हो सकने के कारण आन्दोलन छिड़ा। १९ मई से गिरफ़्तारियाँ शुरू हुईं। जेल में राजबन्दियों के साथ दुर्व्यवहार किए जाने के कारण श्री० जयनारायण जी व्यास, रणछोड़दास जी गट्टानी, अभयमल जी जैन, छगनराज जी चौपासनीवाला आदि सज्जनों को उपवास आरम्भ करने पड़े, और श्री० बालमुकुन्द जी बिस्सा तो शहीद ही हो गए। आन्दोलन में कुछ शिथिलता आई। परन्तु वह चलता रहा।

किसानों में जागृति ; मालियों की 'हिजरत'—१९४६-४७ में किसानों में जागृति का अच्छा कार्य हुआ। अक्तूबर १९४६ में पोकरण के मालियों के ७०० परिवार जागीरी अत्याचारों से पीड़ित होने के कारण ठिकाना छोड़कर चल दिए। परिषद की ओर से श्री

भट्टानी जी घटना-स्थल पर पहुँचे। उन्होंने पोकरण के कुँवर श्री भवानीसिंह जी से बातचीत की। मुद्दे की बात पर दोनों एकमत हो गए, पर लिखापढ़ी का अवसर आने पर ठिकाना फिसल गया। इससे मालियों की हिजरत जारी रही। दो दिन बाद ठिकाने ने लिखापढ़ी कर दी। अब दूसरे किसानों का भी उत्साह बढ़ा, और दिसम्बर १९४६ में श्री० द्वारकादास जी पुरोहित के सभापतित्व में, पोकरण में किसानों का एक बहुत बड़ा सम्मेलन हुआ। पीछे सन् १९४७ में तो कई किसान-सम्मेलन हुए।

जागीरी अत्याचारों का अन्त नहीं—तथापि जागीरदारों के जुल्मों का अन्त नहीं हुआ। किसानों की जागृति से वे मानो खिसिया उठे हैं, समय-समय पर उनके रोमांचकारी अत्याचारों के समाचार मिलते रहे हैं। उनके निर्दयतापूर्ण व्यवहार से यह स्पष्ट है कि अभी उन्होंने अपना रवैया नहीं बदला है और जनता को उनसे जोरदार अन्तिम सङ्घर्ष लेना शेष है। अस्तु, लोक-परिषद ने राज्य में उत्तरदायी शासन स्थापित करने और जागीरदारों के अत्याचारों का अन्त करने के लिए भरसक प्रयत्न किया, कष्ट सहे, और बलिदान किया। उसके कार्यकर्त्ताओं की गिरफ़्तारी से राज्य में शान्ति नहीं हो सकती; शान्ति का उपाय यही है कि परिषद की माँगें स्वीकार की जायँ, जनता को सुखी और संतुष्ट किया जाय।

पत्र-पत्रिकाएँ ; 'प्रजा-सेवक'—जोधपुर वह राज्य है, जिसने टाइपराइटर और साइक्लोस्टाइल आदि के सम्बन्ध में भी प्रेस एक्ट लगाया। यहाँ से किसी पत्र-पत्रिका का प्रकाशित करना, पिछली दशाब्दी के अन्त तक असम्भव ही रहा। सन १९४० से 'प्रजासेवक' नाम का निर्भीक राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र निकलने लगा। इसके सम्पादक श्री अचलेश्वरप्रसाद जी शर्मा को कई बार राज्य की ओर से चेतावनी

मिली, पर जेल-जीवन की सख्ती सहन कर के शर्माजी इतनी हिम्मत वाले हो गए हैं कि अपने निर्धारित पथ से इधर-उधर होने का विचार नहीं करते। 'प्रजा सेवक' के गाँधी जयन्ती विशेषांक, युद्ध विशेषांक, आजाद हिन्द अंक, देशी राज्य अंक, आदि में अच्छी पाठ्य सामग्री रही है। यह पत्र अब दैनिक होनेवाला है।

इस राज्य से 'कल की दुनिया', 'राष्ट्र पताका', 'युगान्तर' आदि और भी कई पत्र निकल रहे हैं। 'रियासत' नाम का दैनिक पत्र बहुत साधन जुटाकर सेवा-क्षेत्र में उतरा है।

विशेष वक्तव्य—मई १९४४ में जोधपुर सरकार ने शासन-सुधारों की योजना उपस्थित करने के लिए बड़ोदा हाईकोर्ट के चीफजज श्री० मुधालकर जी को नियुक्त किया था। उन्होंने सितम्बर ९४४ में अपनी रिपोर्ट पेश कर दी। सरकार ने उसे प्रकाशित नहीं किया, पर उसके आधार पर जुलाई १९४६ में एक घोषणा की, जिसे अमल में लाने के लिए फरवरी १९४७ में जोधपुर-राज्य-कानून बनाया गया। मार्च अप्रेल में नई व्यवस्थापक सभा का चुनाव किया गया, परन्तु व्यवस्थापक सभा के निकम्मी होने और मताधिकार सीमित तथा पक्षपात-पूर्ण होने के कारण, परिषद ने उसका वहिष्कार किया।

जोधपुर राज्य ने भारतीय विधान सभा में भाग लेने के लिए प्रधान मन्त्री और श्री० व्यास जी को भेजा, और वह भारतीय संघ में शामिल हो गया है। परन्तु यहाँ व्यवस्थापक सभा का संगठन ऐसा असन्तोषप्रद है कि उसे भंग कराने का आन्दोलन हो रहा है। इसके अलावा राज्य के छः मंत्रियों में से प्रधान मंत्री महाराजा के काका, तथा गृह-मंत्री महाराजा के छोटे भाई हैं, और दो मंत्री जागीरदार राजपूत हैं। इसी प्रकार राज्य के अन्य महत्वपूर्ण पदों पर भी जागीरदार नियुक्त हैं। यह कहा जा रहा है कि महाराजा को भारतीय

संघ से कोई खास प्रेम नहीं है, अगर उनके निजी हित पाकिस्तान में जाने से सुरक्षित रहेंगे तो वे सहर्ष पाकिस्तान में चले जायँगे। आशा है महाराजा साहब भारतीय संघ के जन-तंत्रात्मक विधान से भयभीत न होंगे, लोक-परिषद को संतुष्ट करेंगे और जन-जागृति का स्वागत करेंगे। इसी में उनका कल्याण है।

मेवाड़

मेवाड़ राजपूताने का बहुत प्रतिष्ठित राज्य है। इसे इसकी राजधानी के नाम पर उदयपुर भी कहा जाता है। इसका क्षेत्रफल १३,१७० वर्गमील और जनसंख्या बीस लाख है। राज्य का एक-तिहाई भाग जागीर और माफी है। मेवाड़ राज्य (खालसा) की वार्षिक आय लगभग सवा करोड़ रुपए है।

जन-जागृति का प्रारम्भ; भील-आन्दोलन—इस राज्य में जन-आन्दोलन काफी पहले शुरू हुए और यहाँ से जागृति की लहर दूर-दूर तक पहुँची। यहाँ के बिजोलिया-सत्याग्रह और बेगूँ-किसान-आन्दोलन का परिचय इस पुस्तक के पहले भाग में दिया जा चुका है। यहाँ की एक अन्य प्राचीन घटना भील-आन्दोलन है। इस राज्य में भीलों की आबादी बहुत है, और वे बड़ी दरिद्रता का जीवन बिताते हैं। मेवाड़ के अन्य आन्दोलनों का प्रभाव इन पर भी पड़ा। सन् १९२१ में श्री० मोतीलाल जी तेजावत के नेतृत्व में इन्होंने अपने उत्थान का प्रयत्न किया। इसका बहुत जोर से दमन किया गया। अनेक भील मारे गए। श्री० तेजावत जी को सात साल की सज़ा दी गई। हाँ, भीलों से लिए जानेवाले लगान में कमी हुई, और कई लागतें छोड़ दी गईं। बहुत सा सामाजिक और नैतिक सुधार भी हुआ।

उदयपुर में कर-वृद्धि और हड़ताल—इस राज्य की जन-जागृति का परिचय देनेवाली दूसरी विशेष उल्लेखनीय घटना सन् १९३२ की हड़ताल है। उदयपुर नगर की जनता ने अपने ऊपर लगाए गए नए टेक्सों का विरोध किया। फर्यादियों की संख्या हजारों पर पहुँच गई। उनकी भीड़ पर अधिकारियों ने लाठी-चार्ज किया। बहुत से आदमी ज़ख्मी हुए। कुछ तो अपनी रक्षा के लिए तालाब में कूद पड़े। सर्वसाधारण में उत्तेजना फैल गई। इसके फल-स्वरूप शहर भर में हड़ताल की गई, यह लगभग एक सप्ताह रही। अन्त में राज्य टेक्सों में कमी करने का आश्वासन देकर ही हड़ताल खुलवा सका। पीछे कुछ रियायतें की गईं।

सन् १९३७ का मेवाड़—कई जन-आन्दोलनों को सफलता-पूर्वक चलाकर तथा दूसरे देशी राज्यों को जागृति का संदेश देकर भी मेवाड़ राज्य स्वयं बहुत समय तक आगे न रह सका। राजपूताना में भी जयपुर आदि जन-आन्दोलन में इससे आगे बढ़ गए। सन् १९३७ में यहाँ की स्थिति बहुत दयनीय थी। राजव्यवस्था एक दम पुरानी मध्ययुगी थी और जनता के आधारभूत अधिकारों को जन्मने ही नहीं देती थी। 'एक परिव्राजक' के शब्दों में "उन दिनों में हम मेवाड़ में खुले दिल से 'महात्मा गाँधी की जय!' नहीं पुकार सकते थे। अपना राजनीतिक संगठन करने का विचार तक नहीं कर सकते थे। खादी की टोपी पहनना पहली श्रेणी की वीरता थी। अपने भाषणों में हम 'स्वाधीनता', 'स्वतंत्रता' आदि जाने-माने प्रेरणादायी राजनीतिक महत्व के शब्दों का उपयोग नहीं कर सकते थे। धर्म-प्रचार और मामूली समाज-सुधार के विषयों पर व्याख्यान मात्र दे सकते थे; वे भी पुलिस की इजाजत से! हमारे कार्यक्रम श्रीमान आई० जी० पी०

साहब स्वीकार करते थे। हम अड़ोस-पड़ोस के राज्यों के प्रजामंडलों की ओर ईर्ष्या से देखते थे।"

मेवाड़ प्रजामंडल की स्थापना; दमन और सत्याग्रह—धीरे-धीरे जनता में स्वाभिमान और अधिकार-प्राप्ति की भावना ने फिर ज़ोर मारा। श्री० माणिकलाल जी जैसे पुरुषार्थी सज्जनों की प्रेरणा और उद्योग से अप्रैल १९३८ में मेवाड़-प्रजा-मंडल स्थापित किया गया। इसके प्रथम सभापति श्री बलवन्तसिंह जी मेहता और उपाध्यक्ष श्री भूरेलाल जी वया बनाए गए। इसका सङ्गठन होने के दो सप्ताह में ही इसके सैकड़ों सदस्य बन गए। मेवाड़ सरकार के उस समय के प्रधान मंत्री श्री० धर्मनारायण जी ने उसे जन्म के साथ ही मार डालने की कोशिश की। उन्होंने इसे गैर-कानूनी ठहरा दिया, और इसके प्रधान मंत्री श्री माणिकलाल जी को शहर छोड़ने की आज्ञा दे दी। इसका बहुत विरोध किया गया। श्री० सेठ जमुनालाल जी ने भी राज्य से पत्र-व्यवहार किया, पर सब का उत्तर दमन और पाबन्दियों के ही रूप में मिला।

आखिर, ४ अक्टूबर १९३८ को, विजयदशमी के दिन प्रजामंडल को सत्याग्रह आरम्भ कर देना पड़ा। अब दमन-चक्र और जोर से चला। गिरफ़्तारियों, सजाओं, तलाशियों और निर्वासनों का तांता लग गया। इससे सत्याग्रह में प्रगति ही हुई। महिलाओं ने भी इसमें अच्छा हाथ बँटाया। भीलवाड़े और नाथद्वारे में लाठी-चार्ज हुआ, जिससे बहुत से आदमी जख्मी हुए, दफा १४४ भी लगाई गई। श्री भूरेलाल जी वया को सत्याग्रह शुरू होने से पहले ही मेवाड़ के सराड़ा किले में, जो इस राज्य का कालापानी कहा जाता है, नजरबन्द कर दिया गया था। ४ अक्तूबर को श्री रमेशचन्द्र जी व्यास प्रथम सत्याग्रही के रूप में अजमेर से मेवाड़ सरकार का कानून तोड़ने के लिए

रवाना हुए थे, उन्हें तथा श्री० बलवन्तसिंह जी मेहता आदि को भी पीछे इसी कालेपानी भेजा गया। आन्दोलन का सबसे ज्यादा जोर नाथद्वारे में रहा। कुल मिला कर राज्य में २१३ गिरफ़्तारियाँ हुईं, जिनमें से करीब ३५ ने सज़ा भुगतीं, ६ पर बलवे का मुकदमा चला कर जुर्माना वसूल किया गया, ६ को नजरबन्द किया गया, ४ पर अन्य प्रतिबन्ध लगाए गए। सत्याग्रहियों के पैरों में डंडेदार बेड़ियाँ डाली गईं। महिलाओं को अक्सर पकड़ कर छोड़ दिया गया।

श्री० माणिकलालजी से दुर्व्यवहार—मेवाड़ सरकार इस बात पर तुली हुई थी कि किसी भी प्रकार वह अजमेर से आन्दोलन का सञ्चालन करनेवाले श्री० माणिकलाल जी को गिरफ़्तार करले। फरवरी १९३९ में जब श्री वर्मा जी कुछ कार्यकर्ताओं से विचार-विनिमय करने के लिए देवली गए हुए थे, जो अजमेर-मेरवाड़े की हद पर है, मेवाड़ पुलिस ने उन्हें लाठियों से मारा और झाड़ियों और काँटों में से निर्दयता-पूर्वक घसीट कर मेवाड़ राज्य की सीमा में ले आई, जो सौ गज से अधिक फासले पर थी। उन्हें गिरफ़्तार करके राज्य के थाने पर लाया गया, और जेल के सीकचों में बन्द कर दिया गया। मेवाड़ राज्य के इस दुर्व्यवहार पर म० गांधी ने १८ फरवरी के 'हरिजन' में एक वक्तव्य प्रकाशित किया था, और प्रजामंडल को कानूनी कारंवाई करने को कहा था।

सत्याग्रह स्थगित ; रचनात्मक कार्य—सत्याग्रह पूरे छः मास तक चला। पीछे महात्मा गाँधी के आदेशानुसार वह स्थगित कर दिया गया। कार्यकर्त्ता रचनात्मक कार्य करने लगे। उनके आन्दोलन से राज्य में बेगार-प्रथा बन्द हुई। फरवरी १९४१ में प्रजामंडल पर से प्रतिबन्ध उठाया गया। इसके बाद राज्य में उसका खूब प्रचार हुआ। किसान-समिति का भी संगठन हुआ। प्रजामंडल भीलों के सेवा-कार्य,

पुराने कर्ज के दावों को निपटाने, हरिजन तथा दलितों का उत्थान, औद्योगिक उन्नति, शिक्षा-प्रचार तथा अन्य जनहित-कार्यों में लग गया। नवम्बर १६४१ में प्रजामंडल का प्रथम अधिवेशन श्री० माणिकलाल वर्मा के सभापतित्व में बड़े समारोह से हुआ; उसने राज्य में उत्तरदायी शासन स्थापित करने का, अपना उद्देश्य घोषित किया, और जनता को नागरिक अधिकार देने की ओर राज्य का ध्यान आकर्षित किया। इस अधिवेशन की विशेषता यह थी कि म० गाँधी के संदेश को लेकर कांग्रेस के महामंत्री आचार्य कृपलानी जी यहाँ पधारे थे, और उन्होंने अधिवेशन का उद्घाटन किया था। अधिवेशन के साथ ही खादी और ग्रामोद्योग की एक वृहत् प्रदर्शनी हुई थी, उसका उद्घाटन श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित के द्वारा हुआ था।

मेवाड़ के हरिजनों की सेवा करने के लिए 'मेवाड़ हरिजन सेवक संघ' की स्थापना की गई। इसका कार्य-भार श्री० मोहनलाल जी सुखाड़िया को दिया गया। भील, भीणा आदि जंगली जातियों की शिक्षा और उन्नति के लिए श्री० ठक्कर बापा की देखरेख में फरवरी १६ २ में भील-सेवा-समिति स्थापित की गई, उसका संचालन श्री० बलवन्तसिंह जी मेहता के जिम्मे किया गया।

सन् १९४२ का आन्दोलन और उसके बाद—

अगस्त १६४२ में देश में 'भारत छोड़ो'-आन्दोलन छिड़ जाने के अवसर पर मेवाड़ प्रजामंडल ने महाराणा साहब के पास एक प्रार्थना-पत्र भेज कर उनसे निवेदन किया कि सार्वभौम सत्ता (ब्रिटिश सरकार) से सम्बन्ध विच्छेद करें, और राज्य में उत्तरदायी शासन की स्थापना हो। इस पर सामूहिक गिरफ़्तारियाँ तथा सभाबन्दी की आज्ञा हुई। प्रजामंडल गैर-कानूनी ठहराया गया। गिरफ़्तारियाँ अक्तूबर

के प्रथम सप्ताह तक होती रहीं। कुल मिलाकर पाँच सौ गिरफ्तारियाँ हुईं, जिनमें सात महिलाएँ भी थीं। कालिज करीब १५ दिन बन्द रहा। राज्य ने धीरे-धीरे बन्दियों को छोड़ने की नीति अपनाई। आखरी जत्था डेढ़ वर्ष बाद फरवरी १९४४ में छोड़ा गया। इसके बाद भी काफी समय तक प्रजामंडल पर प्रतिबन्ध लगा रहा।

राजनीतिक सम्मेलन—प्रजामंडल के प्रमुख कार्यकर्ता सन् १९४३ में जेल में ही रहे; जो जेल से छूटे वे बाढ़-पीड़ितों आदि को राहत देते रहे। अप्रेल १९४४ में प्रमुख कार्यकर्ताओं के छूट जाने पर उदयपुर में राजपूताने और मध्यभारत के कार्यकर्ताओं के एक विशाल राजनीतिक सम्मेलन का आयोजन किया गया। इसके बारे में पहले लिखा जा चुका है। सम्मेलन के अन्तिम दिन शहर में विराट सार्वजनिक सभा हुई। सर्वसाधारण में चेतना का उदय हुआ। सरकार इसे सहन न कर सकी; उसने सभाओं और जुलूसों पर फिर प्रतिबन्ध लगा दिए।

विविध संस्थाओं के अधिवेशन—सन् १९४१ के अन्त में यहाँ अ० भा० दे० रा० लोक-परिषद् का अधिवेशन हुआ। यह पहला ही अवसर था कि इस संस्था का अधिवेशन एक देशी राज्य में हुआ। इसके बारे में इस पुस्तक के पहले भाग में लिखा जा चुका है। इससे मेवाड़ और उसके आसपास की जनता में जीवन और जागृति का खूब संचार हुआ। इस अवसर पर किसान सम्मेलन, राजपूताना आदिवासी सम्मेलन, विद्यार्थी सम्मेलन, महिला सम्मेलन आदि कितनी ही संस्थाओं के अधिवेशन हुए। इन सब आयोजनों को मेवाड़ प्रजामंडल की सहानुभूति थी। अधिकांश आयोजन तो उसके नेतृत्व में ही हुए थे। इन्हें जनता के सभी वर्गों का क्रियात्मक सहयोग मिला। इससे जागृति का खूब संचार हुआ।

अहलकार आन्दोलन—अधिकारियों को यह अच्छा न लगा। उन्होंने इन आयोजनों में भाग लेनेवालों से कड़ा व्यवहार करके जनता पर आतंक जमाना चाहा। इससे संघर्ष की भावना बढ़ी—यह शीघ्र ही अहलकार अन्दोलन से प्रकट हो गया। कुछ समय से (सर विजय राघवाचार्य के काल में) मेवाड़ का शासन-व्यय काफी बढ़ गया था। परन्तु अहलकारों और निम्न कर्मचारियों के वेतन में विशेष वृद्धि नहीं हुई थी। महँगाई आदि से परेशान होकर इनके संघ ने आखिर राज्य को 'अल्टीमेटम' (अन्तिम सूचना) दे दी। राज्य ने प्रमुख कार्यकर्ताओं को जेल भेज दिया। इस पर हड़ताल हुई। राज्य ने लाठी-चार्ज और गिरफ़्तारी आदि दमन के उपायों से काम निकालना चाहा, पर वह असफल रहा। आखिर नेताओं ने ही फैसला कराया। राज्य द्वारा माँगों पर विचार करने का आश्वासन दिए जाने पर हड़ताल समाप्त हुई; सब बन्दी रिहा किए गए।

अन्य आन्दोलन—जनता के अन्य वर्गों ने अपना असंतोष दूर कराने का आन्दोलन किया। मजदूरों ने वेतन, मँहगाई, बोनस, आदि के सम्बन्ध में वैध उपायों से सफलता न पाने पर हड़तालों का आश्रय लिया। प्रजामंडल के कार्यकर्ताओं ने यथा-सम्भव मार्गप्रदर्शन किया और मजदूरों की माँगें पूरी कराने का प्रयत्न किया।

राज्य की जंगलों सम्बन्धी व्यवस्था ऐसी थी कि उससे किसानों और भीलों को लकड़ी आदि प्राप्त करने में बहुत कष्ट होता था। उन्होंने उसका विरोध किया। इस पर बहुतों को सजा हुई; आखिर, सरकार ने अपनी प्रतिबन्ध-सूचक आज्ञा वापिस लेकर संघर्ष टाल दिया। इसी प्रकार जंगली सुअरों से लोगों के खेतों को बहुत नुकसान पहुँच रहा था, और जनता को उन्हें मारने का अधिकार नहीं था। अन्त में किसानों को सुअर मारने के लिए कटिबद्ध देख कर राज्य ने ही उन्हें इजाज़त दे

दी। इन सब आन्दोलनों से जनता के विविध अंगों द्वारा अधिकार-प्राप्ति का परिचय मिलता है।

पत्र-पत्रिकाएँ; 'नवजीवन'—मेवाड़ के प्राचीन शासक, अधिकारी और जनता अपने त्याग और बलिदान के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। परन्तु पिछले वर्षों में नागरिक अधिकारों तथा प्रेस और पत्रों की स्वाधीनता की दृष्टि से यह राज्य बहुत पिछड़ा हुआ रहा है। अब यहाँ खासकर 'नवजीवन' नाम का साप्ताहिक पत्र खूब सेवा कर रहा है। श्री कनक 'मधुकर' जी ने इसे दिसम्बर १९३५ में अजमेर से निकाला था। अगस्त १९४२ के आन्दोलन में दीर्घ नजरबन्दी और पीछे निर्वासन के बाद आपने इसे उदयपुर से निकालने का साहस कर डाला। राज्य के कोपभाजन होते हुए भी आप इस पत्र के द्वारा खूब लोकसेवा करते रहे हैं। हर साल इसका एक विशेषांक ('प्रताप-अंक') तो निकलता ही है, समय-समय पर दूसरे विशेषांकों की भी योजना की जाती है।

प्रजामंडल का सन् १९४७ का अधिवेशन—१, २ और ३ मार्च १९४७ को प्रजामंडल का दूसरा अधिवेशन मेवाड़ के प्राचीन और सांस्कृतिक तीर्थ-स्थान बिजोलिया में श्री भूरेलाल जी बया की अध्यक्षता में बड़े समारोह से हुआ। इस अधिवेशन के पहिले दिन उस रक्तरंजित ऐतिहासिक दिवस की रजत जयन्ती थी, जब कि मेवाड़ की नौकरशाही सरकार ने मगरा जिले के भीलों में फैली हुई जागृति को कुचलने के लिए ८०० भीलों को फौजी गाड़ियों का शिकार बनाया था। अधिवेशन में उपस्थिति लगभग दस हजार आदमियों की थी। जनता ने क्रान्ति-दूत श्री पथिक जी के भी दर्शन किए, जो राज्य की निषेध-आज्ञा के कारण पिछले चौबीस साल से अपनी इस प्यारी कर्मभूमि में नहीं आ सके थे।

यद्यपि मेवाड़ भारतीय संघ में शामिल हो गया है। पर अधिकारी अभी तक राष्ट्रीय झंडे का अपमान, और केसरिया झंडे का आदर करते हैं। जनता और सार्वजनिक कार्यकर्ताओं पर अत्याचार करनेवाले जागीरदारों के विरुद्ध सख्त कार्रवाई न की जाने से उनके हौसले बढ़े हुए हैं, और वे क्षत्रिय परिषद् के रूप में संगठित हो रहे हैं, जिसे महाराणा साहब का समर्थन और सहयोग प्राप्त है। इन बातों की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

शासन-विधान की बात—सितम्बर १९४१ में उस समय के प्रधान मंत्री सर टी० विजय राघवाचार्य ने 'निर्वाचित बहुमत' वाली धारा सभा सम्बन्धी मसविदा तैयार किया था। पर उसके कानून बनने का अवसर ही नहीं आया। पूरे साढ़े छः साल बाद मार्च १९४७ में सर विजय ने दूसरी बार शासन-सुधारों की घोषणा की। मेवाड़ प्रजामंडल ने इन थोथे सुधारों को ठुकरा दिया और सर विजय की विदाई के साथ इन शासन-सुधारों का भी अन्त हो गया। श्री० के० एम० मुन्शी के वैधानिक सलाहकार बनने पर उनकी सलाह से २६ मई को नए शासन-विधान की घोषणा की गई। लोक-नेताओं ने इसे भी ठुकरा दिया। सर राममूर्त्ति के दीवान होने पर उन्होंने श्री० मुन्शी के सहयोग से 'मुन्शी विधान' का नया संस्करण तैयार किया। ११ अक्टूबर को उसकी घोषणा की गई। इसमें पहले की अपेक्षा कुछ सुधार किए गए, और उत्तरदायी शासन के उद्देश्य को अधिक स्पष्ट किया गया। पर अभी ऐसा कदम नहीं उठाया गया है कि मेवाड़ की जनता को शीघ्र ही उत्तरदायी शासन प्राप्त हो। क्या जनता को राज्य से तथा जागीरदारों से, एक बार और भी संघर्ष लेना पड़ेगा।

विशेष वक्तव्य—प्रजामंडल को रचनात्मक कार्य करने का अवसर बहुत कम मिला है। उसकी सन् १९३८-४५ की रिपोर्ट में

बताया गया है कि उसके जीवन के पहले साढ़े सात साल में कार्यकर्ताओं को दो बार संघर्ष का सामना करना पड़ा और तीन वर्ष जेल में काटने पड़े; प्रजामंडल पाँच वर्ष दो महीने गैर-कानूनी रहा और सिर्फ एक वर्ष दस महीने कानूनी रहा। ऐसी प्रतिकूलताओं में प्रजामंडल जनता की जो भी सेवा कर पाया, यह उसके लिए गौरव की बात है। अस्तु, प्रजामंडल के रूप में जनता ने अपनी शक्ति संगठित कर ली है, उसने अपने कष्टों से मुक्ति पाने का, और समय के अनुसार निरंतर आगे बढ़ने का दृढ़ संकल्प कर लिया है; कुछ लोगों के स्वार्थ या निर्बलता से उद्देश्य-सिद्धि में कुछ विलम्ब भले ही लग जाय, उसकी विजय सुनिश्चित है।

जयपुर

यह राज्य अपने विस्तार की दृष्टि से राजपूताना भर में चौथा और आमदनी के विचार से पहला है। इसका क्षेत्रफल १६,६८२ वर्गमील, जनसंख्या (१९४१ की गणना के अनुसार) ३०,४०,८७६ और वार्षिक आय ढाई करोड़ रुपए से अधिक है। राज्य का अधिकांश अर्थात् लगभग दो-तिहाई भाग जागीरी क्षेत्र का है। महाराजा जयपुर कछवाहा राजपूत हैं।

सेवा-समितियों की स्थापना ; जागीरों में दमन—सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलन की हवा इस राज्य में भी आई। सेवा-समितियों का जाल सा बिछ गया। जागीरी इलाकों में भी उनकी स्थापना हुई। जागीरदारों को लोगों का यह साधारण संगठन और सेवा-भाव भी सहन न हुआ। खेतड़ी (जयपुर) में किसानों का दमन किया जाने लगा। सर्वश्री मास्टर प्यारेलाल जी, सेठ गुलाबचन्द जी नेमाणी और हरिराम जी मिश्र आदि को पन्द्रह कोस तक घोड़ों के पीछे दौड़ा कर ले जाया गया। इस पर कलकत्ता और बंबई के जानकार

क्षेत्रों में उत्तेजना फैली। प्रेस में आन्दोलन हुआ। अन्त में उपरोक्त सज्जनों को छोड़ दिया गया।

सन् १६२२-२३ शेखावाटी में चेतना का परिचय मिला। यहाँ भी सेवा-समितियों द्वारा जनता में जागृति हो रही थी। अधिकारियों ने इसे सहन न कर मारपीट की। लोगों ने यहाँ सुअरों के सम्बन्ध में भी आन्दोलन किया।

सन् १६२४ में सीकर के नए सीनियर अफसर ने किसानों पर नया टेक्स लगाया और सायर का महसूल बढ़ाने का नोटिस निकाला। किसानों ने पहले ठिकाने में अनुनय-विनय की; पीछे जयपुर में। सीनियर अफसर का निमंत्रण पाकर श्री रामनारायण जी चौधरी सीकर गए, और उससे आश्वासन मिलने पर चौधरी जी किसानों को जयपुर से सीकर लौटा ले गए, और आप अजमेर आगए। परन्तु पछे सीनियर अफसर ने चौधरी जी के विरुद्ध उलटी-सीधी शिकायतें कीं, इस पर जयपुर दरबार ने चौधरी जी को ११ फरवरी १६२५ को यह हुक्म दे दिया कि वे जयपुर राज्य की सरहद छोड़दें, और दरबार की आज्ञा बिना प्रवेश न करें। चौधरी जी १५ माह तक जयपुर न गए। कुछ पत्र-व्यवहार हुआ। आखिर, ११ मई १६२६ को जयपुर के रेजीडेन्ट को सूचना देकर वे जयपुर गए और उसी दिन गिरफ़्तार कर लिए गए। मेजिस्ट्रेट ने उन्हें पाँच माह की सख्त कैद की सज़ा दी, जो अपील में तीन माह की सादी कैद रह गई।

नाबालगी शासन—जयपुर राज्य की सार्वजनिक राजनीतिक चेतना और उसके फल-स्वरूप होनेवाली विविध घटनाओं की कहानी खासकर महाराजा सवाई मानसिंह के नाबालिगी शासन (सन् १६२२-३१) से शुरू होती है। इस समय लोगों को यह आश्चर्यजनक और दुखदायी अनुभव हुआ कि अंगरेज देशी राज्यों में अधिकारी बनकर

कार्यकर्त्ताओं के निर्वासन, समाचारपत्रों के प्रवेश-निषेध और सार्वजनिक सभाओं की बन्दी द्वारा लोक-जीवन नष्ट कर देते हैं, तथा राज्य को विदेशी माल से भरकर इनका द्रव्य बरबाद करते हैं। पहले जयपुर का सुरक्षित कोष बहुत प्रसिद्ध था। नाबालगी-शासन में बहुत सा द्रव्य सरकारी बैंकों में जमा करा दिया गया। राजकोष से स्थानीय व्यापारियों को सहायता देना बन्द कर दिया गया।

सन् १९२७ का गोलीकांड—नाबालगी-शासन से जनता को बहुत असन्तोष था; सितम्बर १६२७ में उसका विस्फोट हो गया। पहली तारीख को एक ताँगेवाले और एक पुलिस-कान्स्टेबल में कुछ कहासुनी हो गई। कान्स्टेबल ने तेजी दिखाई, दूसरे कान्स्टेबलों ने उसका साथ दिया। लोकप्रिय डाक्टर गौरीशंकर आदि जो लोग उन्हें समझाने लगे, उन पर भी वे अपना गुस्सा उतारने लगे। बात बढ़ गई। पुलिस इन्सपेक्टर चालीस-पचास कान्स्टेबलों और चौकीदारों को ले आया। वे निर्दोष लोगों पर टूट पड़े। डाक्टर साहब आदि कई आदमी गिरफ़्तार किए गए। इस पर बाजार वाले अपनी-अपनी दूकानें बन्द करके कोतवाली चल पड़े, उनके पीछे दूसरे आदमी भी हो लिए। इस प्रकार उनकी संख्या पाँच हजार से अधिक हो गई। पुलिस ने भीड़ को धक्के देकर, बाँस घुसेड़ कर, और पत्थर फेंककर हटाने की कोशिश की। इसके जवाब में कुछ उत्तेजित लड़कों ने भी पुलिस पर पत्थर फेंके।

कुछ आदमी इन्सपेक्टर-जनरल पुलिस के पास और महकमा खास पहुँचे और उन्होंने गिरफ़्तार हुए व्यक्तियों को छुड़ाने का प्रयत्न किया, पर उन्हें सफलता न मिली। आखिर, सिटी मजिस्ट्रेट श्री लक्ष्मी-नारायण जी के कहने से सिटी सुपरिंटेन्डेंट मोअत्तल किया गया। यह बात जनता के लिए कुछ संतोषदायक थी। महकमे खास ने चाहा कि

नेता लोग अब भीड़ को शान्त करें और हड़ताल बन्द करें। परन्तु लोगों का यह आग्रह रहा कि पहले मूल दोष दूर होने चाहिएँ, और नाबालिग महाराजा को मेयो कालिज से वापिस बुला लिया जाना चाहिए। इस समय हथियारबन्द पुलिस और फौज ने आकर कोतवाली के पास की भीड़ पर तथा त्रिपोलिया बाजार में गोली चलाना शुरू कर दिया। एक आदमी तुरन्त मर गया और बहुत से ज़ख्मी हुए। अन्त में वर्षा की बौछाड़ ने दुर्घटना को और अधिक भयंकर होने से रोक दिया। सायंकाल के समय कुछ सार्वजनिक नेता पुरोहित गोपीनाथ, (मेम्बर स्टेट कौंसिल), को लेकर रेजीडेन्ट के पास गए (जो कि उस समय रिजेन्सी कौंसिल का कार्यकर्ता अध्यक्ष भी था) और उसे जनता का माँग-पत्र दिया।

सार्वजनिक सभा; कमेटी की नियुक्ति—अगले दिन, २ सितम्बर को लगभग १५ हजार आदमियों की सार्वजनिक सभा हुई। अधिकारियों के पास जनता की शिकायतें भेजने के लिए १५ हिन्दू और १५ मुसलमान निर्वाचित सदस्यों की एक कमेटी बनाई गई। उसी दिन राज्य के गजट के असाधारण अंक में एक जाँच-कमीशन की नियुक्ति की सूचना दी गई। कमीशन में चीफकोर्ट के जज श्री नानकराम जी और सेशन जज सैयद इफ़्तखार हुसेन थे। इन्हें इस मुसीबत का कारण, जख्मी आदमियों की दशा, गोली चलाए जाने की स्थिति और पुलिस के दोषादोष आदि की जाँच करनी थी। तीसरे पहर पूर्वोक्त ३० आदमियों की कमेटी की बैठक हुई और अधिकारियों के पास भेजने के लिए प्रस्ताव तैयार किए गए। ये प्रस्ताव पहले सार्वजनिक सभा द्वारा स्वीकृत कराए गए, जो उसी दिन शाम को हुई और जिसमें २५ हजार से अधिक की उपस्थिति थी।

जनता की माँगें—प्रस्ताव ये थे :—(१) सिटी सुपरिंटेंडेन्ट

इन्स्पेक्टर पुलिस तथा दूसरे सम्बन्धित अधिकारी बर्खास्त किए जायँ।

(२) जाँच कमीशन में दो सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित हों।

(३) स्टेट कौंसिल में दो आदमी जनता द्वारा निर्वाचित हों।

(४) कानून-कमेटी में निर्वाचित प्रतिनिधि हों, और सब नए कानून सार्वजनिक मत लेकर बनाए जाया करें।

(५) इस बात की जाँच के लिए एक कमीशन नियुक्त किया जाय कि आयात-निर्यातकर, आबकारी, और न्याय सम्बन्धी जो कानून नाबालगी-शासन के समय बनाए गए हैं, वे रहें या न रहें।

(६) बिना इजाजत सार्वजनिक सभा करने और पर्चे (हैंडबिल) बांटने के बारे में जो प्रतिबन्ध हैं, वह हटा दिए जायँ।

(७) राज्य में बाहरी आदमियों की भरती रोकी जाय।

(८) कृत्रिम घी के आयात पर ४० रु० फी मन के हिसाब से कर बैठाया जाय।

(९) घी और आनाज की निर्यात पर बाधक कर लगाया जाय।

(१०) अदालतों तथा दूसरे विभागों के अधिकारियों के नाम यह आज्ञा जारी की जाय कि जनता से नम्रतापूर्वक व्यवहार करें।

(११) एक कमीशन, जिसके अधिकांश सदस्य व्यापारी हों, इस बात की जाँच करे कि जयपुर राज्य का व्यापार गिरने के क्या कारण हैं; वह व्यापार की उन्नति के उपाय भी सुझाए।

(१२) राज्य का एक बैंक स्थापित किया जाय, जो जनता को बैंकिंग के कारोबार की सुविधा प्रदान करे।

जनता की दृढ़ता और त्याग—१ सितम्बर को सवेरे एक और भी बड़ी सार्वजनिक सभा हुई, इस में उपस्थिति लगभग तीस हजार की थी। इसने पिछले दिन के प्रस्तावों का पुनः समर्थन किया।

दोपहर के समय कमेटी की मीटिंग हुई और हड़ताल बन्द करने का निश्चय किया। पर जनता ने इसे स्वीकार न किया। वह चाहती थी कि पहले सब माँगें स्वीकार होजायँ। सेना भी तीन घंटे कोशिश करके हड़ताल खुलवाने में असमर्थ रही और लौट गई। ५ सितम्बर को जाँच कमीशन के सदस्य श्री नानकराम जी और स्टेट कौंसिल के रेवन्यू मेम्बर मि० अलेग्जेंडर ने यह घोषणा की कि जनता की माँगों पर सहानुभूति-पूर्वक विचार किया जायगा। इस पर हड़ताल समाप्त कर दी गई। हड़ताल के समय नेताओं ने खाने का सामान सस्ते भाव से देनेवाली कई दुकानें खुलवाईं। महारानी ने भी इसी तरह के राहत के काम किए, और सहानुभूति-सूचक उपवास किया।*

जयपुर राज्य के इतिहास में ऐसी हड़ताल पहले कभी नहीं हुई थी, और इतनी बड़ी सभाएँ भी कभी देखने में नहीं आई थीं। जनता की दृढ़ता, वीरता और त्याग प्रशंसनीय रहा; उसने अपनी जागृति का परिचय दिया, और अधिकारियों को दिखा दिया कि वह पुलिस या फौज के सामने भी नबनेवाली नहीं है।

वायसराय के नाम खुली चिट्ठी—राज्य के अधिकारियों ने जनता की उपर्युक्त मांगों पर यथेष्ट कारवाई नहीं की। इसलिए अगले वर्ष, ३ अगस्त १९२८ को, जब वायसराय जयपुर आए तो उन्हें जनता की ओर से एक खुली चिट्ठी दी गई, जिसमें खासकर ये माँगे पेश की गई थीं :—

(१) राज्य में व्यवस्थापक सभा स्थापित की जाय, जिसके कम-से-कम तीन-चौथाई सदस्य निर्वाचित हों।

---

* राजस्थान-सेवा-संघ द्वारा ८ सितम्बर १९२७ को तैयार की हुई रिपोर्ट के आधार पर।

(२) राज्य के बजट का मसविदा व्यवस्थापक सभा द्वारा स्वीकृत हो।

(३) शहर की म्युनिसपेल्टी में सिर्फ निर्वाचित सदस्य हों।

(४) शासन, प्रबन्ध और न्याय विभाग अलग-अलग हों।

(५) छापेखानों और सार्वजनिक सभाओं पर से प्रतिबन्ध उठाया जाय।

(६) राज्य की ओर से एक बैंक स्थापित किया जाय, जो स्थानीय व्यापारियों आदि को उचित अमानत पर रुपया उधार दे।

(७) राज्य भर में प्राइमरी शिक्षा अनिवार्य की जाय।

प्रजामंडल की स्थापना—धीरे-धीरे लोगों को शासन के अधिकाधिक दोष दिखाई देने लगे। शासन-सुधार कराने का विचार होने लगा। प्रजा का अपने संगठन की ओर ध्यान गया और सन् १९३१ में जयपुर-राज्य-प्रजामण्डल का जन्म हुआ। आरम्भ के कुछ वर्षों में इसका कार्य शिथिल रहा। अक्तूबर सन् १९३६ में श्री० हीरालाल जी शास्त्री, उनकी कार्यकर्ता मण्डली, जिसने 'जीवन-कुटीर' के प्रयोग में सेवा-कार्य की अच्छी शिक्षा प्राप्त की थी, तथा जयपुर शहर के प्रमुख नागरिकों ने मिलकर मंडल को दुबारा संगठित करने का निश्चय किया। आवश्यक तैयारी के बाद फरवरी १९३७ में मंडल का काम शुरू हुआ। विविध कठिनाइयों का सामना करने के बाद इसने मई १९३८ में स्व० सेठ जमुनालाल जी बजाज की अध्यक्षता में अपना अधिवेशन खूब सफलता-पूर्वक मनाया। तब से इसका कार्यक्षेत्र बढ़ता गया। इसकी विविध जिला-कमेटियाँ और प्रवासी कमेटियाँ बन गईं।

सीकर-कांड—आगे की घटनाओं का विचार करने से पूर्व सीकर के विषय में लिखना आवश्यक है। यह जयपुर राज्य के उन

ठिकानों में से है, जिन्हें दीवानी और फौजदारी के अधिकार प्राप्त हैं। सन् १९३५-३६ में यहाँ के किसानों ने लाग-बाग आदि की ज्यादतियों के विरुद्ध आन्दोलन किया। इस पर यहाँ दो बार गोली चलाई गई। इससे ८-१० आदमी मरे और बहुत से जख्मी हुए। कितने ही आदमियों को 'देश-निकाले' की सजा हुई।

सन् १९३७ में जयपुर महाराज ने सीकर के राजकुमार श्री हरदयाल सिंह को शिक्षा के लिए इंगलैंड भेजना चाहा। राजकुमार के माता पिता दोनों इसके विरुद्ध थे। माता ने सीकर की जनता से अपील की; इस पर हिन्दू-मुसलमान सबने उनका साथ दिया। अब जयपुर सरकार के आदेशानुसार सीकर को घेर लिया गया। तोपें लगा दी गईं। चार पाँच महीने गोलाबारी की स्थिति रही। सीकर को मदद के लिए बाहर के राजपूत आए। स्टेशन पर गोली-कांड हुआ, इससे सीकर शहर के कई आदमी मारे गए। इस सम्बन्ध में श्री शास्त्री जी तथा लादूराम जी जोशी महाराज से मिले। श्री सेठ जमुनालाल जी ने भी महाराजा से भेंट की, पीछे जाकर समझौता हुआ।

प्रजामंडल का भाव--प्रजामंडल के दृष्टिकोण से सीकर जयपुर का मामला राजा-राजा का झगड़ा था। वह चाहता था कि जनता इसमें न फँसे। पर 'दोनों ओर से फौजी ढंग की तैयारियाँ होकर ऐसी विचित्र स्थिति पैदा हो गई कि किसी अन्य कारण से नहीं तो कम-से-कम खून-खराबी बचाने के खातिर, प्रजामंडल को सीकर आन्दोलन में बीच-बचाव करने की कोशिश करने का निश्चय करना पड़ा। अधिवेशन (मई १९३८) के पहले प्रजामंडल के दोनों मंत्री सीकर गए। बाद में प्रजामंडल के सभापति को सीकर में अपनी बहुत सारी शक्ति लगानी पड़ी। आखिर, एक तरह का समझौता हुआ। शान्ति स्थापित करवाने और समझौता करवाने की प्रजामंडल

की कोशिशों का एक फल उसे यह मिला था कि राजस्थान के एक प्रमुख कार्यकर्ता, सीकर जनता के अनन्य सेवक और प्रजामंडल की कार्यकारिणी कमेटी के सदस्य श्री लादूराम जी जोशी बिना वजह गिरफ्तार कर लिए गए और बाद में उन्हें एक साल की सज़ा दे दी गई।' †

दमनकारी कानून—प्रजामंडल जन-सम्पर्क कायम करते हुए उन्नति करता जा रहा था। राज्य इससे बहुत चौंका। इधर उसने सीकर सम्बन्धी वादा पूरा नहीं किया, गिरफ़्तार किए हुए आदमियों को नहीं छोड़ा और रावराजा को सीकर के बाहर ही रहना पड़ा। इन बातों से प्रजामंडल में असन्तोष था ही, इस पर राज्य ने दमनकारी कानूनों—'पब्लिक सोसायटीज रेग्यूलेशन'* (सार्वजनिक संस्था कानून), प्रेस एक्ट (छापाखाना कानून) और राजकर्मचारियों के लिए बनाए गए कानूनों आदि से जन-शक्ति को दबाना चाहा।

'पब्लिक सोसायटीज रेग्यूलेशन' का आशय यह था कि राज्य से मंजूरी लिए बिना कोई संस्था काम नहीं कर सकती, चाहे उसका उद्देश्य सामाजिक या धार्मिक ही क्यों न हो। प्रेस एक्ट के अनुसार साइक्लोस्टाइल तक रखने के लिए भी पहले राजकीय अनुमति प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया गया। राजकर्मचारियों के नियमों में उन्हें आदेश किया गया कि वे अपने आश्रित व्यक्तियों को राजनीतिक हलचल में भाग लेने से रोकें, न रुक सकते हों तो अपने विभाग के अफ़सर को इसकी सूचना दें। सभा करने और जुलूस निकालने पर पाबन्दी पहिले

---

† जयपुर राज्य प्रजामंडल, दो साला रिपोर्ट (१९३८-४०)।

*१८ जनवरी १९३९ को इसकी जगह 'पब्लिक सोसायटीज़ एक्ट' बनाया गया, जिसका जाहिरा उद्देश्य संस्थाओं को रजिस्टर करने का था।

से ही लगी हुई थी, राज्य ने प्रजामण्डल के अकाल-सेवा जैसे कार्यों में भी सहयोग न देने की नीति बर्ती।

सत्याग्रह आन्दोलन—प्रजामंडल के सभापति श्री सेठ जमनालाल जी बजाज उसकी जनरल और कार्यकारिणी कमेटी की बैठकों में शामिल होने के लिए तथा अकाल-सेवा के कार्यों का निरीक्षण करने के लिए जयपुर आ रहे थे कि २६ दिसम्बर १६३८ को सवाई माधोपुर स्टेशन पर पहुँचते ही उन पर जयपुर राज्य में प्रवेश न करने की पाबन्दी का हुक्म तामील किया गया। सभापति जी उस दिन जयपुर नहीं आए। उन्होने कौंसिल के प्रेसीडेन्ट को पत्र लिख कर पाबन्दी उठाने की अपील की और यह भी बतला दिया कि अगर ३१ जनवरी १६३६ तक पाबन्दी नहीं उठाई गई तो मुझे इस आज्ञा को तोड़ना पड़ेगा। इसका कोई फल न निकलने पर, सभापति जी अपनी अनुपस्थिति से काम चलाने के लिए एक सत्याग्रह-समिति बनाकर पहली फरवरी को जयपुर स्टेशन पहुँचे। अधिकारियों ने उन्हें गिरफ़्तार करके कई सौ मील घुमाने के बाद मथुरा ले जाकर छोड़ दिया। ५ फरवरी को सभापति जी ने दुबारा राज्य में प्रवेश करने की कोशिश की। इस बार उन्हें 'बावड़ी ठीकरया' स्टेशन पर गिरफ़्तार करके फिर राज्य की सीमा के बाहर ले जाकर छोड़ दिया गया। सभापति जी के १२ फरवरी को तीसरी बार कोशिश करने पर उन्हें गिरफ़्तार करके गढ़मोरां में नजरबन्द कर दिया गया। उनके साथ मंडल के उपसभापति भी गिरफ़्तार किए गए।

५ फरवरी से नागरिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए सत्याग्रहियों के जत्थे निकलने लगे। ११ फरवरी को प्रजामंडल की कार्यकारिणी समिति के पाँच सदस्य, और पीछे सत्याग्रहियों के कई जत्थे गिरफ़्तार किए गए और खूब दमन हुआ। जनता ने इस अवसर पर बड़ी

शान्ति तथा उत्साह का परिचय दिया। म० गांधी के आदेशानुसार १६ मार्च को सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया। अगस्त में सभापति जी तथा दूसरे सत्याग्रही छोड़ दिए गए। कुछ किसान-कार्यकर्ताओं तथा श्री लादूराम जी जोशी आदि सीकर के कैदियों को ११ सितम्बर को छोड़ा गया।

सत्याग्रह बन्द हो जाने पर अधिकारियों ने सभाबन्दी और जलूस-बन्दी कानूनों को रद्द कर दिया तथा समाचारपत्रों पर सत्याग्रह के दिनों में लगाई गई रोक उठा ली। अँगरेज प्रधान मन्त्री की जगह हिन्दुस्तानी आ गया, परन्तु इससे अधिकारियों के दमन-कार्य में विशेष अन्तर नहीं आया। सेठ जी ने महाराज तथा मन्त्रियों से मिलकर कई गलतफहमियाँ दूर कीं। अन्त में राज्य ने प्रजामण्डल के उत्तरदायी शासन के उद्देश्य को, तथा जनता की शिकायतों के सम्बन्ध में मण्डल के प्रतिनिधित्व को, स्वीकार कर लिया।

प्रजामंडल की नीति और स्थिति—प्रजामंडल का उद्देश्य स्वतंत्र भारतीय संघ के अन्तर्गत जयपुर राज्य में न्यायोचित और शान्तिमय उपायों द्वारा पूर्ण उत्तरदायी शासन प्राप्त करना है। पहले इसके उद्देश्य में, कई दूसरे प्रजामंडलों की तरह, 'श्री महाराज की छत्रछाया' शब्द भी थे। अप्रेल १९४६ के अधिवेशन में ये शब्द निकाल दिए गए। मंडल एक राजनीतिक संस्था है। परिस्थिति के अनुसार इसकी नीति समय-समय पर बदलती रही है। पहले इसने राज्य से संघर्ष बचाते हुए अपना संगठन किया; पीछे इसने आवश्यकता-नुसार कभी संघर्ष किया, और कभी सहयोग। यह उन प्रजामंडलों में से है, जिन्होंने सन् १९४२ के 'भारत छोड़ो'-आन्दोलन में भाग नहीं लिया। ऐसे प्रजामंडलों की विशेष स्थिति के सम्बन्ध में हम तेरहवें अध्याय में लिख चुके हैं। अस्तु, उत्तर भारत के किसी प्रजा-

मंडल की तुलना में इसकी शक्ति और संगठन कम नहीं है। इसके चार-आना-सदस्यों की संख्या ४३ हजार है। इसकी जनरल कमेटी में करीब ८५, और कार्यसमिति में १५ सदस्य हैं। यह संस्था राज्य के विविध भागों में अपनी १४ इलाका-कमेटियों द्वारा सेवा-कार्य कर रही है।

पत्र पत्रिकाएँ; 'लोकवाणी'—जयपुर में इस समय कई पत्र-पत्रिकाएँ अपने-अपने क्षेत्र में सुधार और जागृति का काम कर रही हैं। उन सब में 'लोकवाणी' प्रमुख है। इसे सन् १९४३ से, स्व० सेठ जमनालाल जी बजाज की पुण्य-स्मृति में उनके प्रिय मित्र श्री हीरालाल जी शास्त्री तथा अन्य सज्जनों ने प्रकाशित करना आरम्भ किया। यह पहले साप्ताहिक था। इसे सम्पादक के रूप में श्री पूर्णचन्द्र जी जैन एम० ए०, साहित्यरत्न की सेवाएँ मिल गईं। अन्य अवसरों के विशेष अंकों के अतिरिक्त यह हर वर्ष अपना वार्षिक अंक निकालता है। इसके दूसरे वार्षिक अंक में 'आज का राजपूताना' शीर्षक लेख माला बहुत ज्ञानवर्द्धक थी। सम्पादकीय लेखों और टिप्पणियों में यथेष्ट गंभीरता रहती है सन् १९४६ से सिद्धराज जी ढड्ढा एम० ए० के सम्पादकत्व में यह दैनिक रूप में निकलता है। यह रियासती भारत का सर्वप्रथम हिन्दी दैनिक है और म० गाँधी की विचार-धाराओं के प्रचार के साथ रियासती समस्याओं का अच्छा विवेचन करता है। साप्ताहिक संस्करण के सम्पादक श्री पूर्णचन्द्र जी जैन ही हैं, ये दैनिक के संयुक्त सम्पादक भी हैं।

विशेष वक्तव्य—जयपुर राज्य प्रजामंडल को प्रारम्भ से ही श्री सेठ जमुनालाल जी का नेतृत्व मिलने से यह संस्था म० गांधी के बहुत निकट रही है। इसके नवें अधिवेशन (अप्रैल १९४७) का उद्घाटन राष्ट्रपति श्री कृपलानी जी ने किया था। इस प्रकार खासकर राजपूताने में इस

प्रजामंडल का विशेष स्थान और उत्तरदायित्व है। राज्य की भी राजनीतिक स्थिति अपने आसपास के राज्यों में खासो अच्छी है। यहाँ प्रधान मन्त्री के अलावा जो चार मंत्री हैं, उनमें तीन गैर-सरकारी हैं, और इन तीन में से दो प्रजामंडल के हैं। उत्तरदायी शासन के उद्देश्य को लेकर विधान बनाने के लिए एक समिति काम कर रही है। यह बहुत कुछ यहाँ की जन-जागृति का ही प्रताप है।

जैसलमेर

इस राज्य का क्षेत्रफल १५,६८० वर्गमील होने पर भी, यहाँ की जनसंख्या सिर्फ ६३,२४६ है; कारण, इसका अधिकांश भाग रेगिस्तान होने से यहाँ जल का बड़ा कष्ट है, और पैदावार कम होती है। यहाँ की औसत वार्षिक आय सात लाख रुपए है। पाकिस्तान की सीमा से मिला होने के कारण अब इस राज्य का भौगोलिक महत्व बहुत बढ़ गया है।

सन् १९२० में—जहाँ तक हमें मालूम है, इस राज्य में जनता की कुछ विशेष जागृति सन् १६२० में आरम्भ हुई। ता० २ फरवरी को, विवाहों के अवसर पर बहुत से प्रवासी जैसलमेरी माहेश्वरी, जिनमें यह लेखक भी था, एवं जैसलमेर निवासी विविध जातियों के अनेक सज्जनों ने महाराजा साहब की सेवा में एक मानपत्र उपस्थित किया, जिसे पीछे 'जैसलमेरीय प्रजा का माँग पत्र' कहा जाने लगा। उसकी मुख्य बातें संक्षेप में इस प्रकार थीं:—[क] कालिवन स्कूल और विंढ़म लायब्रेरी का कार्य सुचारु रूप से चलाया जाय। राज्य में शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं को स्थान-स्थान पर स्थापित करने तथा प्रजा वर्ग की ओर से स्थापित संस्थाओं को आश्रय और सहायता देकर उन्हें उत्साहित करने की परम आवश्यकता है। [ख] यहाँ पर एक सामयिक पत्र [अखबार] की बड़ी आवश्यकता है। यह आरम्भ में

मासिक रूप में हो सकता है। एक प्रेस या छापखाना खोलने की योजना भी शीघ्र होनी चाहिए। [ग] सफाई और स्वास्थ्य आदि स्थानीय प्रबन्ध करने के लिए यहाँ पर एक म्युनिसपेलटी के सङ्गठन की बड़ी सख्त जरूरत है। [घ] इस राज्य का रेल और तार के द्वारा बाहरी दुनिया से सीधा सम्बन्ध होना चाहिए। [च] बाहर से आनेवालों के सामान पर महसूल लेने की व्यवस्था केवल जैसलमेर राज्य में ही रहनी चाहिये, जैसी कि सन् १६१२ ई० से पहले थी। महसूल ठहराने में सामान की असली कीमत का सवाया किया जाना अनुचित और नीति-विरुद्ध है। [छ] कृषि, व्यापार, और शिल्प आदि की वृद्धि व विस्तार की आवश्यकता है। [ज] शासन-कार्य प्रजा के सहयोग से अच्छी तरह संचालित हो।

राजा साहब बातों के धनी थे ही। उन्होंने ये माँगे जल्दी ही पूरी करने का आश्वासन दिया। हमने मानपत्र तथा राजासाहब के उत्तर की लगभग सौ प्रतियाँ राज्य के साइक्लोस्टाइल से छपा कर उनमें से कुछ तो वहाँ ही स्थानीय तथा प्रवासी नागरिकों को दे दीं, और कुछ विविध कार्यकर्ताओं तथा सम्पादकों के पास भेज दीं। (अमर शहीद) श्री सागरमल जी गोपा ने इस मानपत्र को पुस्तक के रूप में छपा कर इसका खूब प्रचार किया।

अप्रेल १६२० से, हमारे 'प्रेम' (बृन्दावन) के सम्पादक हो जाने पर इस पत्र में जैसलमेर सम्बन्धी सम्वाद छपने लगे। राजा साहब ने उन लोगों पर बड़ी कोप-दृष्टि रखी, जो जैसलमेर में 'प्रेम' मँगाते थे। एक बार यह भी खबर मिली कि अठारह-उन्नीस प्रवासी जैसलमेरियों का राज्य में आना बन्द कर दिया गया, जिनमें एक नाम हमारा भी था।

अँधेरखाते के कुछ नमूने—ता० ६ जुलाई १६२० के 'विजय' में 'एक जानकार' ने जैसलमेर राज्य के 'अँधेरखाते के कुछ

नमूने'-शीर्षक लेख प्रकाशित किया, जिसमें राज्य के ४० दोष दिखाए गए थे। उनमें पहले बताई हुई बुराइयों के अलावा अन्य बातें खासकर ये थीं :—

(१) राज्य में कानून नहीं। (२) बजाजों की नाप और सुनारों की तोल तीन तरह की, तथा नाज घी आदि की तोल अनेक प्रकार की होने से जनता को बहुत धोखा और हानि होती है। (३) राज्य की भाषा शुद्ध नागरी नहीं, अदालतों की लिखावट में कुछ का कुछ पढ़ा जाता है। (४) न्याय में शीघ्रता नहीं, वर्षों अदालतों की खाक छाननी पड़ती है। (५) अफीम का नियंत्रण नहीं, सारा राज्य अफीमची हो चला है। (६) कन्या-विक्रय खूब होता है। (७) राज्य से बाहर जाने वाले आदमियों से ॥) प्रति व्यक्ति 'भोलावा' टेक्स लिया जाता है। (८) अकाल में पानी की व्यवस्था नहीं होती। (९) राज्य के अहलकारों का वेतन ब्रिटिश भारत के खिदमतगारों के बराबर है, जिससे रिश्वत बढ़ रही है, अत्याचार खूब होते हैं। (१०) राज्य में दिवालिये और सजायाफ़्ता कर्मचारी रखे जाते हैं। (११) राजकर्मचारी अपना निजी व्यापार भी करते हैं, जिससे दूसरे व्यापारियों को माली नुकसान होता है और राज्य का काम भी बिगड़ता है। (१२) सैकड़ों प्रकार के कर लिए जाते हैं, यथा बाड़ी, भोलावा, दशहरा, गडीसा, नेतरा, नजर, इत्यादि।

प्रवासी जैसलमेरियों के संगठन—राज्य की नीति बहुधा नागरिकों के लिए असन्तोषप्रद और कष्टदायी रही। इससे तथा व्यापार आदि के लिए भी समय-समय पर बहुत से आदमी इस राज्य को छोड़ कर दूसरे राज्यों या प्रान्तों में जा बसे। इन प्रवासी जैसलमेरियों ने कहीं-कहीं अपने प्रजासंघ, या प्रजामंडल आदि का संगठन कर रखा है, और ये संस्थाएँ जैसलमेर राज्य की अवनति के विविध कारणों को

दूर करने का विचार किया करती है। श्री० सागरमल जी गोपा ने नागपुर में सन् १९३० में 'जैसलमेर प्रवासी प्रजा संघ' की स्थापना की थी। इसका एक वार्षिक अधिवेशन सन् १९४० में लोकनायक श्री० जयनारायण जी व्यास की अध्यक्षता में नागपुर में हुआ था।

सन् १९३२-३३ का जैसलमेर—इस राज्य की शासन-पद्धति, और न्याय तथा दमन सम्बन्धी बातों पर विविध गिरफ़्तारियों और सजाओं से अच्छा प्रकाश पड़ता है। अतः नमूने के तौर पर एक मुकदमे की मुख्य-मुख्य बातों का आगे उल्लेख किया जाता है।[1]

श्री० रघुनाथसिंह जी मेहता (मंत्री, माहेश्वरी नवयुवक मंडल) को १४ मई १९३२ को अदालत में बुलवाकर, बिना मुकदमा चलाए और अपराध बताए, सिर्फ जबानी हुक्म से जेल भेज दिया गया। इस पर नगर के बहुत से आदमियों ने सभा करके यह निश्चय किया कि जब तक रियासत मेहता जी को बिना किसी प्रकार के बन्धन के रिहा न कर दे, तब तक जातिगत सारे कार्य जीमण (जाति-भोज), मेला, दर्शन, राग-रंग और 'दरबार का सलाम' इत्यादि सब बन्द कर दिये जायँ। गिरफ़्तारी का प्रभाव राज्य से बाहर भी तेजी से बढ़ता गया; नागपुर में एक जैसलमेर-प्रजापरिषद् करना तय हुआ, और सत्याग्रह की तैयारी होने लगी। श्री० रघुनाथसिंह जी को दो वर्ष सपरिश्रम जेल और ५००) जुर्माने की सजा दी गई थी।[2] परन्तु जब प्रवासी जैसलमेरियों ने जगह-जगह इस निर्णय का विरोध किया और महारावल को मालूम

---

[1] इसके विस्तृत विवरण के लिए श्री० सागरमल जी गोपा द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित 'रघुनाथसिंह का मुकदमा' पढ़िए।

[2] फैसले की तथा गवाहों के बयानों की नकल नहीं दी गई।

हुआ कि मामला बहुत बढ़नेवाला है तो १७ जून १६३२ की रात को उन्होंने रघुनाथसिंह जी को निर्दोष मुक्त कर दिया। हाँ, अपनी बात रखने के लिए माहेश्वरी युवक मंडल जैसी सामाजिक संस्था पर से भी प्रतिबन्ध नहीं उठाया, उसे गैर-कानूनी ही रखा।

समय-समय पर विविध सज्जनों ने महाराज को समाचारपत्रों द्वारा तथा अन्य प्रकार से चेताया। पर कुछ फल नहीं हुआ। राज्य के जिन व्यक्तियों का सुधार-आन्दोलन से कुछ सम्बन्ध विदित हुआ, उन्हें तरह-तरह से दबाया गया। समाचारपत्रों के पठन-पाठन पर रोक लगा दी गई। जिस कर्मचारी का लड़का या रिश्तेदार राज्य से बाहर रहकर भी आन्दोलन में भाग लेता प्रतीत हुआ, उस राजर्मचारी को दंड दिया गया।

सन् १६३१ में जब हम 'माहेश्वरी' (नागपुर) के सम्पादक थे, हमारे परिचित श्री० नन्दकिशोर जी गोदाणी राजा साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी और जुडीशल सुपरवाइजर नियुक्त हुए। उस समय इन पंक्तियों के लेखक ने उनका ध्यान नई बातों की ओर न दिलाकर उन्हें सन् १६२० की ही माँगों की याद दिलाई थी। अपने खुले पत्र के अन्त में हमने लिखा था कि "यद्यपि पिछले दस-पन्द्रह वर्षों में संसार में महान परिवर्तन हो गए, कुछ का कुछ हो गया, पर मालूम होता है कि समय के साथ जैसलमेर राज्य ने कुछ प्रगति नहीं की। इसके विपरीत, इस बीच में माहेश्वरी युवक मंडल और सर्वहितकारी वाचनालय पर कुदृष्टि रही। प्रायः राजा लोग अपने प्राइवेट सेक्रेटरी, या दीवान आदि उच्च अधिकारियों के कानों से सुनते हैं, उनकी आँखों से देखते हैं, और उनके द्वारा ही कुछ किया करते हैं। आप के जैसलमेर के जीवन का एक-एक दिन राज्य के अग्रगामी होने में सहायक हो।"

सन् १९४६ में; गोपाकांड—श्री सागरमल जी गोपा जसल-मेर की जनता का उत्थान चाहनेवालों में से थे। इसलिए राजा साहब की इन पर कुदृष्टि थी। इन्हें बहुत समय से जैसलमेर आने की मनाही थी। पोलिटिकल एजन्ट से यह आश्वासन मिलने पर कि जैसलमेर-दरबार, इनके राज्य में जाने पर, इन पर कोई दावा दायर नहीं करेगा और इनसे कोई दुर्व्यवहार न करेगा, ये मई सन १९४१ में जैसलमेर गए। फिर भी ये गिरफ्तार किए जाकर जेल में बन्द किए गए। इन पर तरह-तरह के अमानुषिक अत्याचार किए गए। इन्होंने किसी तरह अपने ऊपर रोजबरोज बीतनेवाली लोमहर्षक घटनाओं का एक खाका अपनी डायरी के रूप में तैयार किया।

इस डायरी के नीचे दिए हुए अवतरण कितने रोमांचकारी हैं—

(१) १९४१ के २४ जून को श्री० अचलेश्वर शर्मा, जोधपुर, को पत्र इनकी इच्छा मूजिब लिखा तब गुदा में मिर्ची डाली गई।

(२) इब्तदाई मिसल में माफीनामा लिखने से मैंने इनकार किया, तब नाक में मिर्चें दी गईं।

(३) बीरबल ने कालकोठरी में बीसों दफा मारपीट की।

१० जून १९४२ को श्री० गोपा जी ने लिखा—'आज मुझे आठ वर्ष की सजा सुनादी गई है। यह सजा १० जून १९४९ को पूरी होगी। सजा पूरी होने तक मैं जीवित नहीं रहूँगा, क्योंकि पुलिस अभी तक मुझे यातनाएँ दे रही है। कब मेरा 'राम-नाम-सत्य' या देहान्त हो जाय, यह कह नहीं सकता।'

अफसोस ! यह आशंका सच्ची साबित हुई। ४ अप्रैल १९४६ को इनके परिवारवालों को अचानक सूचना मिली कि गोपा जी ने आत्महत्या कर ली है। परिवारवालों ने चाहा कि जोधपुर से डाक्टर

बुलाकर शव की परीक्षा करा ली जाय, पर उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की गई।

श्री नेहरू जी का वक्तव्य—इस सम्बन्ध में पं० जवाहरलाल जी नेहरू ने विस्तृत वक्तव्य देते हुए कहा कि—'हमारी जाँच के फल-स्वरूप जो तथ्य हमारे सामने आए हैं, वे दुर्भाग्यपूर्ण हैं। स्पष्ट है कि श्री गोपा जी को ३ अप्रैल को आग लगा कर मार दिया गया। उन्होंने यह काम स्वयं किया, यह एक दम संदिग्ध है। यदि उन्होंने आत्महत्या की भी हो तो भी इससे ज्ञात होता है कि उनके साथ इतनी अधिक सख्ती की गई कि उनके पास सिवाय आत्महत्या करने के और कोई चारा न था।

'श्री जयनारायण जी व्यास ने श्री गोपा जी के जेल के कष्टों के बारे में पोलिटिकल एजन्ट से पत्रव्यवहार किया था। उन्हें ८ मार्च १९४६ के पत्र के उत्तर में सूचित किया गया था कि पोलिटिकल एजेंट इस मामले पर शीघ्र ही गौर करेंगे। पर पोलिटिकल एजन्ट के जैसलमेर आने से पहले ही श्री गोपा जी की मृत्यु हो गई, अथवा जानबूझ कर उनका खून कर दिया गया, ताकि वे पोलिटिकल एजन्ट को अथवा और किसी को अपने साथ की गई ज्यादतियों के बारे में कुछ न बता सकें। आग लगाने के दस घंटे बाद तक उन्हें अस्पताल नहीं ले जाया गया। उनकी डंडा-बेड़ियाँ भी नहीं काटी गईं। मौत के बाद भी उनकी धर्मपत्नी को उनके दर्शन नहीं करने दिए। कुछ रिश्तेदारों को मिलने की छूट दे दी गई थी, परन्तु किसी को भी उनके साथ बातें नहीं करने दी गईं। जैसलमेर के अधिकारियों ने इस मामले की छानबीन तक करने का कष्ट नहीं उठाया। परिणाम स्पष्ट है। इस मामले से न केवल जैसलमेर के अधिकारियों को, बल्कि अन्य उन राजाओं को भी शर्म आनी चाहिए, जिन्होंने पिछले दिनों नागरिक स्वाधीनताओं के सम्बन्ध में बड़ी-बड़ी डींगे मारी हैं।'

जाँच का ढोंग—चारों ओर से इस रोमांचकारी और रहस्यपूर्ण कांड की खुली जाँच की माँग की गई। आखिर, अ० भा० दे० रा० लोकपरिषद की राजपूताना प्रान्तीय सभा के देशव्यापी आन्दोलन और प्रजामंडल की जन-शक्ति के सामने झुककर जैसलमेर की प्रतिक्रियावादी सरकार को २४ अगस्त १९४६ को यह एलान करना पड़ा कि गोपा-कांड की जाँच कराना स्वीकार किया गया है। परन्तु जाँच में ऐसे रोड़े अटकाए गए कि लोकपरिषद की राजपूताना प्रान्तीय सभा के मंत्री श्री हीरालाल जी शास्त्री ने इस ढोंगी जाँच में भाग लेने से इन्कार कर दिया। जैसे-तैसे जाँच की रस्म पूरी की गई।

प्रजामंडल—प्रजामंडल की स्थापना यहाँ कई वर्ष पहले की गई थी, पर उसका जन्म होते ही गला घोट दिया गया था। पश्चात् लोकपरिषद के उदयपुर अधिवेशन की तैयारी के सिलसिले में १५ दिसम्बर १९४५ को श्री मीठालाल जी व्यास ने फिर 'जैसलमेर राज्य प्रजामंडल' स्थापित किया। यह संस्था राजपूताना प्रान्तीय सभा से सम्बद्ध है। इसने जैसलमेर सरकार से पहली माँग भी गोपा जी की रिहाई के लिए की थी।

श्री गोपा जी की मृत्यु से पहले प्रजामंडल अपना कार्यालय जोधपुर में ही रख कर कार्य किया करता था। पीछे कार्यालय जैसलमेर में ही रखने की व्यवस्था की गई। जनता में फैले हुए आतंक को मिटाने के लिए २६ मई को इसके मंत्री श्री मीठालाल जी प्रजामंडल के साइन-बोर्ड और तिरंगे झंडे के साथ मारवाड़ लोकपरिषद के प्रधान श्री जयनारायण जी व्यास और उनके बीस साथियों को जैसलमेर लाए। श्री व्यास जी का जलूस निकाला गया, और आम सभा में उनका प्रभावशाली भाषण हुआ। जिस मैदान (मंडी) में यह सभा हुई, उसे 'गोपा चौक' के नाम से घोषित किया गया।

विशेष वक्तव्य—सन् १६२० की बात हुई; सन् १६३३ और १६४६ की भी बात हुई। वही चाल बेढंगी, जो पहले थी वह अब भी है। सन् १६१४ में महाराज ने गद्दी पर बैठते समय कहा था कि 'हम जैसलमेर में तरक्कियात जमाना में बहुत पीछे रह गए हैं। दरहकीकत हम वैसे ही हैं, जैसे कि हम सदियों पहले थे। हम बरसों से नबातात की जिन्दगी बसर कर रहे हैं, और बढ़ना और तरक्किए-जमाना के साथ तरक्की करना भूल गए हैं।' ऐसी भावपूर्ण बात कहनेवाले शासक से लोगों की बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं! पर राजा साहब ने तेंतीस वर्ष के लम्बे समय में भी कुछ सुधार नहीं किया। जैसलमेर भारतीय सङ्घ में शामिल हो चुका है, लेकिन कहा जाता है कि राजा साहब अपनी निरंकुश सत्ता स्थिर रखने के लिए ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में हैं, जब जैसलमेर को भारतीय संघ से अलग करके पाकिस्तान में मिला दें। पिछले दिनों आपने पाकिस्तान के दूत श्री० गजदर से दो बार अपने महल में लम्बी बातचीत की है। ये लक्षण अच्छे नहीं हैं।

अस्तु, जन-जागृति हो ही रही है। जैसलमेर राज्य प्रजामंडल के बुलेटिन न० १ के शब्दों में "उसी जैसलमेर में, जहाँ पर गाँधी टोपी पहिनना और अखबार पढ़ना तक गुनाह समझा जाता था, प्रजामंडल का साइनबोर्ड लगा हुआ है, और उसी साइनबोर्ड पर अत्याचारियों को भयभीत करनेवाला तिरंगा झंडा शान से लहरा रहा है, जो कि २७ मई १६४६ के दिन श्री० जयनारायण जी व्यास के हाथों फहराया गया है। अब आम सभाएँ होती हैं, प्रभात-फेरियाँ और जलूस निकलते हैं, और 'इन्कलाब जिन्दाबाद' और 'प्रजामंडल जिन्दाबाद' के नारे गगन-भेदी आवाज से गूँज रहे हैं।"

अभी उत्तरदायी शासन स्थापित करने की मंजिल दूर है। और, यह जो थोड़ी सी जागृति दिखाई देती है, यह भी श्री० गोपा जी जैसे

लोकसेवी कार्यकर्ताओं के बलिदान की बदौलत हुई है। कवि ने ठीक कहा है—

मुनव्वर अंजुमन होती है, महफिल गर्म होती है।
मगर कब! जब कि जलती है खुद शमए-अंजुमन पहिले ॥

कोटा

राजपूताने के इस राज्य का क्षेत्रफल ५७१४ वर्गमील, जनसंख्या ७,७७,३९९ और औसत वार्षिक आय इक्यावन लाख रुपए है। इस राज्य में ३९ जागीरें हैं। यहाँ का राजवंश चौहान राजपूत है।

जागृति का श्रीगणेश; पं० नयनूराम जी का बलिदान—कोटा में जनता की जागृति आरम्भ हुए पचीस वर्ष से अधिक हो गए। सन् १९२० में, जब कि राजपूताने के अनेक भागों में आदमी खुले तौर से किसी आन्दोलन में भाग लेने से बचते थे, श्री० पंडित नयनूराम जी ने खुल्लमखुल्ला सार्वजनिक क्षेत्र में आने का साहस किया और कोटा में पहले-पहल राजस्थान सेवा संघ की स्थापना की, तथा श्री० पथिक जी द्वारा उठाए गए बेगार विरोधी आन्दोलन में सहयोग दिया। राज्य के अधिकारियों तथा जी-हजूरों ने उनका विरोध किया, भय दिखाया और प्रलोभन भी दिया। पर पंडित जी दृढ़ रहे और कोटा राज्य से बेगार-प्रथा हटाने में बहुत कुछ सफल हुए। पंडित जी ने बूँदी, झाला-वाड़ आदि के कार्यकर्ताओं से मिलकर हाड़ौती प्रजा की शिक्षा और उन्नति का अच्छा कार्य किया। दुख का विषय है कि किसी ने आपकी क्रूरता-पूर्वक हत्या कर डाली। पंडित जी का इस राज्य की प्रारम्भिक जन-जागृति में विशेष महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रजामंडल—यहाँ प्रजामंडल सन् १९३५ से लगातार काम कर रहा है। यह एक विशुद्ध राष्ट्रीय संस्था है। इस का उद्देश्य राज्य

में उत्तरदायी शासन स्थापित करना है। यह अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद् से सम्बद्ध है और कांग्रेस की अहिन्सात्मक नीति के अनुसार राष्ट्रीय कार्यक्रम को अपना रहा है।

सन् बयालीस का आन्दोलन—सन् १६४२ के आन्दोलन में कोटा का विशेष स्थान रहा है। श्री गोविन्दसहाय जी ने बतलाया है* कि 'हड़ताल होने पर जब प्रजामंडल के नेता गिरफ़ार कर लिए गए तो लोगों में और भी जोश फैल गया। जनता ने शहरपनाह के दरवाजे बन्द करके चारों ओर के रास्ते रोक दिए, जिससे विशेष पुलिस, फौज तथा अन्य लोगों का बाहर से आना रुक जाय। कोतवाली पर जनता ने झंडा फहराया और वहाँ जो पुलिस मौजूद थी, उसे बारकों में बन्द कर दिया। शहर पर पूरी तरह से जनता का कब्जा होगया और यह हालत बराबर तीन दिन तक रही। इन तीन दिनों में शहर में पूरे तौर से शान्ति कायम रही। कोई गड़बड़ी नहीं हुई। दीवान ने यह कोशिश की कि फौज दरवाजा तोड़ कर शहर में दाखिल हो जाय और गोली चलाई जाय। किन्तु फौज और महाराजा इस के लिए सहमत नहीं हुए। पोलिटिकल एजन्ट भी वहाँ आगए। अन्त में तीसरे दिन भूतपूर्व दीवान ने आगे आकर जनता को यकीन दिलाया कि यदि वह दरवाजा खोलदे, पुलिस इत्यादि को अन्दर आने दे तो रियासत की ओर से कोई जोर-जुल्म की बात न होगी। इस आश्वासन पर जनता ने दरवाजे खोल दिए और तीसरे दिन सब फौज और पुलिस वालों से बाकायदा झंडासलामी करा कर और अधिकारियों से रसीद लेकर कोतवाली और शहर का चार्ज महाराज की पुलिस को सौंप दिया। कुछ दिन बाद नेता रिहा कर दिए गए। गिरफ़ारी के बीच एक डेप्यूटेशन महाराज से मिला। उन्होने यकीन दिलाया कि

---

* 'सन् बयालीस का विद्रोह'

जिम्मेदार सरकार कायम करने के लिए वह शीघ्र ही कदम उठाएँगे। दीवान को, जो राजनीतिक विभाग का आदमी था और गोली चलाना चाहता था, महाराज ने नौकरी से अलग कर दिया।'

आन्दोलन की विशेषता—इस आन्दोलन के सम्बन्ध में श्री इन्द्रदत्त जी स्वाधीन की ये पंक्तियाँ ध्यान में रखने योग्य हैं।* 'बिना तैयारी, कार्यक्रम, भारी नेतृत्व, और इच्छा के ही यह (जनता का) शासन तीन दिन तक चलता रहा। जनता ने उस समय काम-चलाऊ शासन के पदाधिकारी अपने आप चुन लिए थे। राष्ट्रीय झंडा बड़ी कोतवाली पर लगा दिया गया था। उसका नाम कांग्रेस भवन रखा गया था। पुलिस के तमाम बड़े बड़े अफसर गिरफ़्तार कर लिए गए थे। शहर पर कोटा नरेश को अधिकार वापिस देने के पहले समुचित संधि हुई थी। वह घटना सरकार के इतिहास में अंकित हो चुकी है। उन गौरवपूर्ण दिनों में सरकारी फौज और पुलिस ने राष्ट्रीय तिरंगे झंडे को सलामी करने के बाद ही अपना शासन कोटा शहर में पुनः स्थापित कर पाया था।'

पत्र-पत्रिकाएँ; लोकसेवक—कोटा से प्रकाशित होनेवाले पत्र पत्रिकाओं में से हमने 'लोकसेवक' ही देखा है। यह साप्ताहिक पत्र श्री अभिन्न हरि जी ने निकाला। आरम्भ में यह हाथ के कागज पर छपता था, और इसमें थोड़ा-सा नपा-तुला पाठ्य विषय रहता था। पीछे इसने अपने प्रेस का प्रबन्ध किया गया, और यह मिल के कागज़ पर छपने लगा। ३१ दिसम्बर १९४५ को इसके चौथे वर्ष का बत्तीसवाँ अंक, 'हाडौती अंक' नाम से, १६ पृष्ठ का प्रकाशित हुआ था, उसमें सन् १९४२ की कोटा की क्रान्ति का जोशीला वर्णन भी था।

---

* 'प्रजासेवक' देशी राज्य अंक, ३१ दिसम्बर १९४५।

विशेष वक्तव्य—सन् १९४२ के आन्दोलन के समय महाराजा साहब ने उत्तरदायी शासन का सिद्धान्त स्वीकार करके राजबन्दियों को मुक्त किया था, 'विद्रोहियों' को क्षमा किया था, और शासन सुधार की घोषणा के निमित्त एक कमेटी बैठा दी थी। इस प्रकार कोटा राजपूताने भर में पहला राज्य था, जिसने उत्तरदायी शासन का सिद्धान्त स्वीकार किया था। परन्तु राज्य ने इसे अमल में लाने में बहुत शिथिलता दिखाई। जनता का आन्दोलन जारी रहा। तीन वर्ष के बाद वह नागरिक-स्वतंत्रता-बाधक कानून (पुलिस एक्ट दफा ३७) को हटवा देने में सफल हुई। प्रजामंडल अपनी सीमित शक्ति और मर्यादित साधनों के अनुसार सेवा और संगठन में जुटा हुआ है।

डूँगरपुर

यह दक्षिण राजपूताने का छोटा सा राज्य है। इसका क्षेत्रफल १४६० वर्गमील, जनसंख्या २,७४,२८१ और औसत वार्षिक आय २२ लाख रुपए है। भूमि कम उपजाऊ है। आबादी का ५८ प्रतिशत भील हैं। ये लोग धनुर्धारी और सैनिक होते हैं। किसी जमाने में तो इनका राज्य ही था; उसकी यादगार के रूप में अब भी राजकीय चिन्ह पर भील का चित्र अंकित है। परन्तु अब ये बहुत दीन हीन दशा में हैं। इनमें से अधिकांश को कड़ी मेहनत करते रहने पर भी न बराबर भरपेट भोजन मिल पाता है और न तन ढकने को वस्त्र ही।

इस राज्य का प्राचीन नाम बागड़ है। पहले, बागड़ में वर्तमान डूँगरपुर, बाँसवाड़ा और दक्षिण मेवाड़ शामिल था। भाषा, रिवाज और संस्कृति के लिहाज से बागड़ की सीमा आज भी वही है, जो एक हजार वर्ष पहले थी, यद्यपि राजनीतिक सीमा उसे अब तीन टुकड़ों में बाँटती है।

प्राचीन आन्दोलन—उत्तर भारत के राज्यों में यहाँ सुधार-

कार्य बहुत पहले शुरू हुआ। श्री० शिवलाल जी कोटडिया ने इस राज्य के प्राचीन इतिहास पर एक नजर डालते हुए बतलाया है* कि उन्नीसवीं सदी के अन्त और बीसवीं सदी के प्रारम्भ के लगभग यहाँ गोविन्द गुरु नाम के साधु के नेतृत्व में भील-सुधार आन्दोलन शुरू हुआ था। उसमें धार्मिक और सामाजिक सुधार की कार्य-प्रणाली बर्ती गई थी। जब जाति में चेतना आने लगी तो राज्य उससे चौकन्ना हो गया। अन्त में जब मानगढ़ की पहाड़ी पर लगभग सारे बागड़ के भील कोई उत्सव मनाने के लिए इकट्ठे हुए तो डूंगरपुर, बांसवाड़ा और खैरवाड़ा छावनी की पलटनों द्वारा उन पर गोलियां चलाई गईं। लगभग आठ सौ व्यक्ति मारे गए और कितने ही घायल हुए। इस प्रकार भीलों का यह आन्दोलन शासकों के नृशंस दमन से बन्द कर दिया गया।

सन् १८९९ में डूंगरपुर का शासन ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त एक रिजेन्सी कौंसिल के हाथ में आया। तब से उसके शासन ने एक मोड़ खाकर दूसरा रास्ता इख्त्यार किया। भील जाति नए कानूनों के अनुसार एक प्रकार से जरायमपेशा कौम ठहराई गई। सन् १९२० में यहाँ फिर भील-प्रगति शुरू हुई, इस बार भी उसका आधार धार्मिक और सामाजिक अन्ध-विश्वास था। सन् १९२८ के बाद वह कुचल दी गई।

सेवा संघ—डूंगरपुर राज्य बहुत एकान्त और पिछड़े हुए स्थानों में से है। तो भी सन् १९३३-३४ में, देश में फैली हुई जागृति की लहर यहाँ पहुँच गई। पंड्या भोगीलाल जी की अध्यक्षता में कई कर्मठ कार्यकर्ताओं ने सेवा-संघ के रूप में सेवा-कार्य आरम्भ कर दिया। यहाँ राजपूताना हरिजन सेवक संघ ने खूब लोकसेवा की। श्री० रामनारायण जी चौधरी और उनके साथियों द्वारा स्थापित राजस्थान-

*देखिए—'डूंगरपुर : एक सिंहावलोकन'।

सेवक मंडल के विषय में पहले लिखा जा चुका है; यह राज्य उसके रचनात्मक कार्यों का प्रमुख केन्द्र था। डूंगरपुर सेवा-सङ्घ के चौदह-सूत्री कार्यक्रम में शिक्षा-प्रचार, समाज-सुधार, अस्पृश्यता-निवारण, वस्त्र-स्वावलम्बन, चिकित्सा, मद्य-निषेध, कृषि-सुधार के अतिरिक्त दुर्भिक्ष और बाढ़-पीड़ितों की सहायता, और संगठन-कार्य मुख्य थे।

सेवा-संघ के प्रयत्न से कई साधारण तथा रात्रि पाठशालाएँ चलने लगीं। लोगों में भूत-प्रेत आदि का अन्धविश्वास कम हुआ। वे कपास और आलू की खेती करने लगे। कई गाँवों के भीलों और चमारों ने शराब और अफीम का सेवन त्याग दिया। मकान साफ और हवादार बनने लगे। दापा (कन्या-विक्रय), पहला (वर पक्ष की ओर से दिया जानेवाला कपड़ा और जेवर), तथा स्त्री-अपहरण के कानून लोगों को समझाए गए।

राज्य का विरोध—सेवा-संघ अपना रचनात्मक कार्य राज्य के सहयोग से कर रहा था। उसने राज्य का सहयोग राष्ट्र की सेवा के लिए एक साधन के रूप में ही अपनाया था। उसके प्रयत्न से जन-जागृति उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी, पर डूंगरपुर की सरकार का रुख सेवासंघ के प्रति विरोधात्मक ही रहा। सन् १६३६ से विरोधी कानूनों में वृद्धि होने लगी। इस वर्ष 'रोक व इन्तजाम बेगार एक्ट' नाम का कानून बना, उसके बाद राज्य में बेगार की ऐसी बाढ़ आई, जैसी पिछले कई वर्षों में नहीं थी। बेगार-बाल-विवाह, जङ्गलात और पुलिस के कानून अनेक अधिकारियों की रोजी के साधन बन गए। 'प्राइवेट पाठशाला सञ्चालन नियम' और 'कवायद छात्रालय सन् १६४३' जैसे कानूनों से शिक्षा में बाधा डाली गई। यही नहीं; अनेक पढ़ने और पढ़ानेवालों को जबरन रोका गया, यद्यपि इस राज्य में 'शिक्षित' कहे जानेवाले आदमियों की संख्या सिर्फ ३ प्रतिशत थी।

नागरिक अधिकारों की अवहेलना की बात इसी से जानी जा सकती है कि राज्य ने तीन वर्ष पहले व्यावसायिक उन्नति के लिए स्थापित व्यापार-संघ को भंग कर दिया था और इस सिलसिले में एक उच्च अधिकारी ने कहा था कि राज्य किसी प्रकार की सभा, सोसायटी या संघ नहीं चाहता।

सन् बयालीस का आन्दोलन—संघ चाहता था कि उसके जो कार्यकर्त्ता चाहें, वे सङ्घ से त्यागपत्र देकर सन् १९४२ के राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग ले सकें। परन्तु राज्य के अधिकारियों ने यह आग्रह किया कि कोई भी कार्यकर्त्ता इसमें भाग न ले। इस पर आन्दोलन में सङ्घ को ही शामिल होना पड़ा। ५ सितम्बर को एक विराट सार्वजनिक सभा में कांग्रेस के 'भारत-छोड़ो'-प्रस्ताव का जोरदार समर्थन किया गया। अगले दिन जलूस निकाला गया। स्कूल और बाजार में हड़ताल रही। सरकार ने उस समय तो कोई कार्रवाई नहीं की; पर पीछे उसने अप्रत्यक्ष रूप से सङ्घ की रचनात्मक प्रवृत्तियों का गला घोटने की कोशिश की। इसमें सफल न होने पर प्रमुख भीलों को राजधानी में बुलाया जाने लगा और उन्हें साम, दाम, दण्ड और भेद की नीति से यह समझाया गया कि वे सङ्घ के किसी प्रोग्राम में साथ न दें और कार्यकर्ताओं को अपने गाँव से निकाल दें। पर जनता ने राज्य की ऐसी आज्ञा नहीं मानी। सन् ४२ के आन्दोलन से सरकारी अधिकारियों और सेवासङ्घ में तनातनी बढ़ती ही रही। सङ्घ की स्कूलें, तथा अन्य सुधारक प्रवृत्तियाँ बन्द कर दी गईं। अन्त में १ अगस्त १९४४ को सङ्घ ने अपना विधान स्थगित करके अपना शेष कार्य और सम्पत्ति श्री हरिदेव जी जोशी को सौंप दी।

प्रजामंडल की स्थापना—सेवा-सङ्घ का कार्य स्थगित हो जाने पर, उत्तरदायी शासन स्थापित कराने के उद्देश्य से, २५ जनवरी

१६४५ को प्रजामंडल के उद्घाटन की घोषणा की गई। इस दिन उसका छपा हुआ बुलेटिन 'प्रजामंडल क्या चाहता है?' बाँटा गया। उसके प्रस्तावों की प्रति अधिकारियों के पास भेजी गई, पर वे सङ्घ के रास्ते में रोड़े अटकाते ही रहे। तथापि सङ्घ की लोकप्रियता बढ़ती गई। वर्ष के अन्त में शाखाओं सहित उसके लगभग ढाई हजार सदस्य हो गए। अप्रेल १६४६ में इस संस्था का पहला वार्षिक अधिवेशन हुआ।

घोर दमन—इसके बाद राज्य ने घोर दमन की नीति अपनाई। प्रजामंडल के अध्यक्ष और प्रमुख कार्यकर्ताओं सहित ३५ गिरफ़्तारियाँ हुईं। चार आदमी निर्वासित किए गए। दो जगह बिना सूचना लाठी-चार्ज किए गए, जिनमें लगभग सौ आदमी घायल हुए। भाषण, लेखन और फेरियों पर प्रतिबन्ध तथा १४४ दफा, और कर्फ़्यू आर्डर लगाया गया। महिलाओं को अपमानित किया गया। मई १६४६ में राजपूताना लोकपरिषद द्वारा नियुक्त जाँच-कमीशन ने इस राज्य की परिस्थिति की जाँच की। कमीशन की महारावल साहब के साथ हुई भेंट के परिणाम-स्वरूप सब बन्दियों को बिना शर्त रिहा कर दिया गया, निर्वासितों पर से पाबन्दी हटा ली गई, तथा भाषण, लेखन और फेरियों पर लगे प्रतिबन्ध उठा लिए गए। आन्दोलन के समय हुए दमन की निष्पक्ष जाँच का वादा किया गया। परन्तु पीछे की घटनाओं से यह स्पष्ट हो गया कि शासक और जनता में सहयोग की भावना स्थायी नहीं हुई।

एक चिन्तनीय बात; महारावल की रजत जयन्ती—जब राज्य में घोर दमन हो रहा था, कुछ लोगों ने राजा साहब की रजत जयन्ती मनाने और उन्हें अभिनन्दन-ग्रन्थ समर्पित करने का आयोजन किया। इस कार्य के लिए बनी हुई समिति के मन्त्री जी ने

अप्रेल १९४९ में हमसे उस ग्रंथ के लिए एक लेख भेजने का अनुरोध किया था। हमारे पूछने पर मन्त्री महोदय ने अपने एक विस्तृत पत्र में राजा साहब के अनेक प्रगतिसूचक कार्यों का वर्णन करते हुए लिखा था 'मैं सचाई के साथ कह सकता हूँ कि हमारे नरेश अपेक्षाकृत उत्तम, कोमल, एवं शान्तिपूर्ण तथा उदार हैं।'

इस पर हमारे मन में रह-रह कर यह विचार आया कि यदि ऐसे गुणों वाले राजा के राज्य में ऐसा दमन हो सकता है तो फिर दूसरे राज्यों की जनता का भगवान ही बेली है। इसके अतिरिक्त हमें इस बात का भी बड़ा दुख हुआ कि ये कैसे 'साहित्यिक' हैं, जो अपने भाइयों के ऐसे कष्ट भोगने के समय भी शासक का जयन्ती-महोत्सव मनाने और उसे अभिनन्दन-ग्रन्थ समर्पित करने की बात सोचते हैं। कहा जाता है कि जब रोम जल रहा था, तो नीरो (रोम का बादशाह) बंशी बजाने का आनन्द ले रहा था। यह सच हो या न हो, हमारे ये 'साहित्यिक' कहे जानेवाले बन्धु लोकोक्ति के 'नीरो' से कम नहीं हैं। अस्तु, मंत्री महोदय को हमने ये पंक्तियाँ लिख दी थीं, इनका जो भी उपयोग उन्होंने किया हो—

'डूँगरपुर महाराजा साहब का रजत जयन्ती उत्सव मनाना और उन्हें अभिनन्दन-ग्रन्थ समर्पित करना तभी सार्थक है, जब राज्य में उत्तरदायी शासन की दिशा में ऐसा कदम उठाया जाय, जिससे सर्व-साधारण का हित हो, और जो राजपूताने के लिए ही नहीं, भारतवर्ष के लिए गर्व और आनन्द का विषय हो। समय की माँग है, और प्रत्येक विचारशील चाहता है कि अब छोटी-छोटी फुटकर बातों को अनावश्यक महत्व न दिया जाय।'

विशेष वक्तव्य—भारत के स्वाधीनता दिवस (१५ अगस्त १९४७) पर राज्य में राष्ट्रीय झंडा फहराया गया और गांधी जयन्ती

के अवसर पर म० गांधी के प्रति श्रद्धांजलि का सन्देश भेजा गया था। इससे लोगों की यह धारणा हुई कि राज्य जनता के साथ आने का प्रयत्न कर रहा है। परन्तु पीछे यह अनुभव हुआ कि यहाँ प्रतिक्रिया-वादी शक्तियों को क्षत्रिय परिषद के रूप में संगठित किया जा रहा है, और जातिगत तथा साम्प्रदायिक भावना को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। श्री महारावल और दीवान इन बातों से बेखबर नहीं रह सकते। और, अगर वे ऐसी बातों के समर्थक या सहायक हैं तो और भी दुर्भाग्य का विषय है। आवश्यकता है कि वे अपने आप को युग के अनुकूल बनावें, और परिस्थिति में यथेष्ट सुधार करें। अन्यथा, अन्तःकालीन सरकार स्थापित करने और उसमें पाँच में से दो मंत्री प्रजामंडल के रखने आदि की बात निरी उपहास की ही होगी; खासकर जब कि शासन के मुख्य-मुख्य विभाग प्रधान मंत्री महाराज वीरभद्रसिंह जी के सुपुर्द है, जो कि डूँगरपुर नरेश के छोटे भाई हैं। जागृत जनता अपना शासन-अधिकार लेकर रहेगी।

इक्कीसवाँ अध्याय

मध्यभारत के राज्य

[ग्वालियर, इन्दौर, भोपाल रीवाँ, रतलाम, झाबुआ]

प्रस्तावना

मध्यभारत देशी राज्यों का ही समूह है। इसमें कुल मिलाकर साठ राज्य हैं, उनमें से अधिकांश बहुत छोटे-छोटे हैं। इस प्रदेश की पश्चिमोत्तर सीमा राजपूताने से मिली हुई है। यहाँ के निवासियों का रहनसहन, जाति, भाषा राजपूताने वालों की सी ही है। कई राजा राजपूत हैं, और कुछ ऐसे मराठे हैं जो पहले राजपूत थे, पीछे

दक्षिण में जाने पर मराठों में मिल गए। उनका राजपूतों से विवाह-सम्बन्ध होता रहता है। इसी प्रकार मध्यभारत में जागीरदारी आदि की समस्याएँ भी राजपूताने के ही समान हैं। साधारणतया मध्यभारत राजपूताने की अपेक्षा अधिक शिक्षित और उन्नत है, यहाँ जनता के दमन के लिए वैसे मध्यकालीन उपाय काम में नहीं लाए गए, जैसे राजपूताने के राज्यों में। परन्तु, जैसा आगे स्पष्ट हो जायगा, यह नहीं कहा जा सकता कि मध्यभारत में, नागरिक स्वतंत्रता की दृष्टि से, परिस्थिति कुछ विशेष अच्छी रही।

विविध राजनीतिक संस्थाएँ; मध्यभारत-देशी-राज्य लोकपरिषद—मध्यभारत के विविध राज्यों की जनता से सम्बन्ध रखनेवाली सबसे पहली संस्था राजपूताना-मध्यभारत (देशी राज्य) सभा है। इसके विषय में इस पुस्तक के पहले भाग में लिखा जा चुका है। मध्यभारत रियासती प्रजापरिषद का झांसी में एक दो बार अधिवेशन हुआ, परन्तु वह प्रान्त-व्यापी संगठन न कर सकी। खंडवा की मध्यभारत देशी राज्य लोकपरिषद की स्थापना (सन् १९३३) के बाद उसका अस्तित्व समाप्त हो गया। लोक-परिषद श्री रघुनाथप्रसाद जी परसाई आदि सज्जनों के प्रयत्नों से स्थापित हुई। इसके प्रमुख कार्यकर्ता सर्वश्री आचार्य नरेन्द्र, शिवनाथ माधव आगरकर, और कन्हैयालाल वैद्य आदि सज्जन रहे हैं। मैहर, रतलाम, नरसिंहगढ, राजगढ़, झाबुआ आदि जिस राज्य के सम्बन्ध में विशेष आवश्यकता उपस्थित हुई, इस सभा ने अपनी यथेष्ट शक्ति लगाई है और यह मध्यभारत के देशी राज्यों सम्बन्धी सामूहिक प्रश्नों पर विचार करती रही है। इस संस्था की कार्यसमिति के अधिकांश सदस्य समय-समय पर जेल के सीखचों में बन्द रहे हैं। इसके मन्त्री भी कन्हैयालाल जी वैद्य पर तरह-तरह के प्रतिबन्ध रहे हैं।

नरसिंहगढ़ राज्य ने नागरिक स्वाधीनता के प्रश्न पर परिषद के

एक प्रस्ताव को चेलेंज दिया था। इस पर म० गांधी ने राजकुमारी अमृत कौर और श्री वैद्य जी को नरसिंहगढ़ भेजा। परिषद के प्रयत्न से राज्य के दीवान का चेलेंज झूठा सिद्ध हुआ और महाराजा ने जनता को नागरिक स्वाधीनता देना स्वीकार किया। इसी प्रकार मैहर राज्य के जेल के अत्याचारों से तीन कार्यकर्ता शहीद हो गए, तब भी परिषद ने जाँच की थी। रतलाम जेल की मुसीबतों से दो नौजवान श्री गफूर खाँ और बिहारीलाल व्यास—बेआई मौत मर गए, उस समय भी परिषद ने व्यापक आन्दोलन किया, और म० गांधी और श्री नेहरू जी के सहयोग से शेष बन्दियों की रक्षा की।

सन् १९४२ का आन्दोलन--परिषद ने सन् १६४२ का आन्दोलन विविध रियासतों में चलाया। यह आन्दोलन संगठित रूप से खासकर गवालियर, इन्दौर, भोपाल और धार में चला। यह अहिंसात्मक था; पर दमन के कारण जब इसका सामूहिक रूप समाप्त हो गया तो तोड़फोड़ के भी काम हुए।

परिषद के अन्य कार्य—सन् १६४२ में परिषद ने किसानों की स्थिति सुधारने के लिए मध्यभारत-किसान-सभा स्थापित की। उसने सन् १६४१ में एक क्लास खोल कर रियासती कार्यकर्ताओं की शिक्षा की व्यवस्था की, और राजगढ़ राज्य में गोलीकांड की जाँच की। सन् १६४५ में उज्जैन में 'मध्यभारत नागरिक स्वाधीनता संघ' की स्थापना की गई। परिषद के निरंतर उद्योग और कष्ट-सहन से व्यापक संगठन बहुत मज़बूत हो गया है। उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए सब राज्यों में व्यवस्थित रूप से प्रयत्न हो रहा है।

गवालियर

यह मध्यभारत का प्रमुख राज्य है। इसका क्षेत्रफल २६,३६७ वर्गमील, जनसंख्या लगभग चालीस लाख, और वार्षिक आय सवा

तीन करोड़ रुपए है। वास्तव में इसके दो भाग है, उत्तरी भाग गवालियर, और दक्षिणी भाग मालवा कहलाता है। मालवा कई टुकड़ों में बँटा हुआ है, जिनके बीच में दूसरी रियासतें आ गई हैं।

राष्ट्रीय भावों का संचार; राजद्रोह का मुकदमा—इस राज्य की जन-जागृति का कार्य इस सदी के आरम्भ से होने लग गया था। समय-समय पर वाचनालय, उत्सवों और अखाड़ों से राष्ट्रीय भावों का संचार होता रहा। स्वदेशी आन्दोलन का युवकों पर अच्छा प्रभाव पड़ा; उत्साही विद्यार्थियों ने इसमें खूब भाग लिया।

सन् १९०५ में एक छोटी सी स्वदेशी प्रदर्शनी की गई। ब्रिटिश भारत से मंगा कर अखबार पढ़ना, शिवा जी तथा आधुनिक नेताओं के चित्र रखना, और देशहित के गीत गाना आदि कार्य भी शुरू किए गए। उस ज़माने में ये कार्य भी आपत्तिजनक समझे गए। इनके लिए ही यहाँ सन् १९०८ में राजद्रोह का पहला मुकदमा चला, जिसमें ३०-३५ व्यक्तियों को कष्ट भोगना पड़ा। उन्हें लम्बी सजाएँ दी गईं। सुप्रतिष्ठित डाक्टर हरिभाऊ दिवेकर तथा श्री माधोराव देसाई उस समय के अभियुक्तों में से हैं। इस राजद्रोह के मुकदमे के कारण राज्य में आतंक छा गया, पर भीतर ही भीतर राष्ट्रीय भावना जोर पकड़ती गई।

असहयोग आन्दोलन का समय—जनता पर सन् १९२० के असहयोग आन्दोलन का भी प्रभाव पड़े बिना न रहा। कई नवयुवक कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लेते रहे। खासकर श्री सिरेमल जी दूगड, लाला बाबा, तथा श्यामलाल जी पांडवीय के प्रयत्न से यहाँ अच्छा काम हुआ। प्रिंस-आफ-वेल्स के गवालियर आने पर फौजों ने 'गांधी जी की जय' बोली। प्रिंस-आफ-वेल्स की यात्रा का बहिष्कार किए जाने की आशंका से श्र लाला बाबा और सिरेमल जी

दूगड़ को नजरबन्द रखा गया। श्री दूगड़ जी को पीछे निर्वासित कर दिया गया। निर्वासित होने पर वे अजमेर चले गए और मरते दम तक श्री अर्जुनलाल जी सेठी के साथ काम करते रहे।

सार्वजनिक सभा, उज्जैन—इस बीच में ग्वालियर राज्य की राजनीतिक प्रगति के जनक श्री० त्र्यम्बक दामोदर पुस्तके एक उत्साही कार्यकर्ता युवक के रूप में उज्जैन पधारे। आपने सेवाभिलाषी नवयुवकों का संगठन किया; इसका ही विकसित रूप पीछे 'ग्वालियर राज्य सार्वजनिक सभा' हुआ। आरम्भ में इसका कार्यक्षेत्र केवल उज्जैन तक सीमित था। इसका उद्देश्य राज्य द्वारा जनता के साधारण कष्टों को दूर कराना, और शिक्षा, स्वास्थ्य आदि की उन्नति कराना था। इस सभा ने उज्जैन में युवराज जनरल लायब्रेरी कायम की। और भी कई उपयोगी संस्थाएँ स्थापित हुईं। ग्वालियर राज्य में, बिना रजिस्टरी कराए कोई संस्था कार्य नहीं कर सकती थी, इस लिए सार्वजनिक सभा को भी रजिस्टरी करानी पड़ी। रजिस्टरी सन् १९१७ में हुई। इसी बीच खादी के प्रचार और निर्माण का उद्योग आरम्भ हुआ, जिसका फल अब 'ग्वालियर राज्य खादी सङ्घ' के रूप में विद्यमान है।

वकील मंडल—ग्वालियर राज्य की राजनीतिक प्रगति में वकील-मण्डल का भी अच्छा हाथ रहा है। इसका पहला अधिवेशन सम्भवतः सन् १९२६-२७ में उज्जैन में हुआ। पीछे इसके अधिवेशन राज्य के विविध जिलों और परगनों में होते रहे। यह लेखन, प्रकाशन और भाषण की स्वतन्त्रता आदि का भरसक आन्दोलन करता रहा। इसके द्वारा राज्य के कानून एवं न्याय विभाग के साथ-साथ शासन के कई दूसरे विभागों में भी अच्छे सुधार हुए।

सार्वजनिक सभा का व्यापक रूप ; 'स्टेट-कांग्रेस'—सन् १९१९ में श्री० लीलाधर जी जोशी ने शाजापुर में 'किसान-सङ्घ'

नाम की एक राजनीतिक संस्था स्थापित की। इस संस्था ने किसानों का अच्छा सङ्गठन किया, पर यह राज्य-व्यापी न हो सकी। राज्य भर की जनता का यथेष्ट प्रतिनिधित्व करनेवाले प्रजामंडल की स्थापना का प्रयत्न किया गया, पर उसके लिए अनुमति नहीं मिल सकी। आखिर, ३० अप्रेल १९३८ को कुछ देशप्रेमी कार्यकर्ताओं के प्रयत्न से उज्जैन की सार्वजनिक सभा को ही, जिसकी रजिस्टरी हो चुकी थी, राज्यव्यापी रूप देने का निश्चय किया गया। उस समय इस संस्था का ध्येय सार्वजनिक हित और लोक-शिक्षण का प्रयत्न करना ही रखा गया था। यही संस्था इस समय की 'स्टेट-कांग्रेस' है।

सार्वजनिक सभा की शाखाएँ स्थान-स्थान पर स्थापित की गईं। सभा के व्यापक रूप में, पहला वार्षिक अधिवेशन मेलसा में, नवम्बर १९३८ में हुआ; श्री गोपीकृष्ण जी विजयवर्गीय सभापति थे।

शासन-सुधार सम्बन्धी कार्य—मेलसा अधिवेशन से पहले १६ अगस्त १९३८ को कार्यसमिति ने शासन-सुधारों की माँगों की रूपरेखा बनाकर महाराजा की सेवा में भेजी। इस पर 'मजलिस-आम' के तीन गैर-सरकारी सदस्य, जो सार्वजनिक सभा की कार्यसमिति के भी सदस्य थे, शासन-सुधार कमेटी में ले लिए गए। १ जनवरी १९३९ को कार्यसमिति ने अपनी माँगों में यह संशोधन किया कि शासन-सुधार इस दिशा में हों कि पाँच साल में पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित करने का विधान तैयार हो सके।

राज्य की शासन-सुधार कमेटी में बहुमत मन्त्रियों का था। उनके आश्वासन पर सहयोग और समझौते की भावना से तीन गैर-सरकारी सदस्यों ने उनके साथ सर्वसम्मत रिपोर्ट तैयार की। १४ जून १९३९ को महाराजा ने शासन-सुधारों की जो घोषणा की, वह सुधार-कमेटी की रिपोर्ट में सूचित सिफारिशों के अनुसार न थी। इसलिए सार्वजनिक

सभा ने मताधिकार कमेटी का बहिष्कार किया। इससे वह कमेटी अपना कार्य न कर सकी। उसकी रिपोर्ट प्रकाशित नहीं की गई। सन् १९४१ में महाराजा की नई घोषणा हुई; इसके द्वारा कुछ परिवर्तन किए गए। सार्वजनिक सभा ने इन्हें भी असन्तोषजनक बतलाया, तथापि प्रतिक्रियावादियों के प्रभाव को रोकने के लिए उसने व्यवस्थापक सभा के चुनाव में भाग लेना और अपने उम्मेदवार खड़े करना उचित समझा। सन् १९४२ में तैयार की हुई 'वोटर लिस्ट' (मतदाता-सूची) के आधार पर ही, नवम्बर १९४५ में चुनाव हुए ; उनमें सार्वजनिक सभा को अच्छी कामयाबी मिली। अनेक बाधाओं के होते हुए भी निर्वाचित सदस्यों में उसका प्रचंड बहुमत रहा।

सार्वजनिक सभा ने शासन-सुधार के अतिरिक्त किसान, मजदूर, तथा जागीरी प्रजा के कष्ट दूर करने के कामों को भी अपने हाथ में लिया और उनमें क्रमशः सफलता प्राप्त की।

दमन चक्र—सार्वजनिक सभा के कार्यकर्ताओं को समय-समय पर दमन का शिकार होना पड़ा है। सन् १९३९-४० की बात लें। १७ नवम्बर १९३९ को लश्कर में सभा का दूसरा अधिवेशन होने के एक ही सप्ताह बाद वहाँ और उज्जैन में तलाशियाँ ली जाने लगीं। इसी महीने में लश्कर में १२ मजदूर-कार्यकर्ताओं के भाषण पर दो माह के लिए पाबन्दी लगा दी गई। १ दिसम्बर को 'डिफेन्स रूल्स' (रक्षा नियमों) के अनुसार, सबसे पहले श्री श्यामलाल पांडवीय को बिना वारंट गिरफ़्तार किया गया। इसी माह में, उज्जैन में मिल-हड़ताल के दिनों में मजदूर-कार्यकर्ता डाक्टर चौबे, श्री ठक्कर आदि गिरफ़्तार किए गए, जो बाद में (श्री मङ्गलीप्रसाद जी के सिवाय सब) बरी हुए। जनवरी १९४० में ग्वालियर के मजदूर-कार्यकर्ताओं पर मुकदमा चलाया गया। कान्फ्रेन्सों के समय स्थान-स्थान पर सभाबन्दी

की पाबन्दी लगाई गई और कार्यकर्ताओं को धमकियाँ और कष्ट दिए गए।

अप्रेल १९४० में श्री पांडवीय जी सेशन द्वारा बरी कर दिए गए, पर अगस्त में हाईकोर्ट ने उन्हें एक साल की सज़ा दे दी। इस वर्ष पंडित हरिसेवक जी और यशवन्तसिंह जी कुशवाहा को भी सजा हुई, और श्री मु० वि० धुले गिरफ्तार हुए, उन पर राजद्रोह का मुकदमा चला कर जुर्माना किया गया। सितम्बर में ग्वालियर में मजदूर-हड़ताल के समय दफा ३२ लगाई गई। १८ ता० को भयंकर लाठी-चार्ज हुआ तथा कार्यकर्ताओं की गिरफ़्तारियाँ हुईं। सार्वजनिक सभा ने बीच में पड़ कर मामला निपटवाया। उसकी कार्यसमिति ने सरकार से लाठी-चार्ज की जाँच किए जाने की माँग की। सभा ने अपनी जाँचकमेटी से जाँच करा कर उसकी रिपोर्ट सरकार के पास भेजी।

सार्वजनिक जीवन की कमजोरी—यहाँ उस प्रकरण का उल्लेख कर देना आवश्यक है, जिससे हमारे सार्वजनिक जीवन की एक कमजोरी पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। सभा के निरंतर प्रयत्नों के पश्चात् महाराजा साहब ने अक्तूबर १९४० में मंत्रिमंडल में जनता का एक प्रतिनिधि लिए जाने की मांग स्वीकार की थी, और सार्वजनिक सभा से योग्य व्यक्ति देने के लिए कहा था। किन्तु उस मंत्री के अधिकारों का परिमित स्वरूप तथा अन्य प्रतिबन्धों के विचार से सभा ने उस पद को लेना स्वीकार न किया। श्योपुर अधिवेशन में इस पर बड़ा वाद-विवाद हुआ; अन्त में सभा ने इस विषय में राज्य से असहयोग करने का निश्चय किया। इसी समय राज्य ने श्री तख्तमल जी जैन वकील (भेलसा) को ग्रामसुधार विभाग के मंत्री के रूप में लेने का प्रस्ताव किया, और उन्होंने भी नवम्बर १९४० में, सभा का आदेश लिए बिना ही, उसे स्वीकार कर काम संभाल लिया। पर उनके मार्ग में अनेक

बाधाएँ उपस्थित की गईं। कई योजनाएँ पेश करके भी, बजट स्वीकृत न होने कारण, वे कोई विशेष कार्य न कर सके। जनता और सभा का विरोध था ही। निदान, लगभग डेढ़ साल बाद उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। इस विषय में मतभेद होने से सभा में प्रत्यक्ष रूप से दो पार्टियाँ बन गईं। दलबन्दी से सार्वजनिक विकास को बहुत धक्का पहुँचा।

सन् १९४२ का आन्दोलन—दूसरे स्थानों की तरह इस राज्य में भी सन् १६४२ के आन्दोलन की प्रतिध्वनि या गूंज हुई। ६ अगस्त की रात को नेताओं की गिरफ्तारी पर राज्य भर में हड़तालें हुईं। स्कूल और कालिज बन्द हुए। मुरार में ३ दिन तक एक लम्बी हड़ताल चली। १७ अगस्त को लश्कर में चावड़ी पार्क के सामने विद्यार्थियों के जलूस पर भयंकर लाठी-चार्ज हुआ। उज्जैन में १२ अगस्त को विद्यार्थियों के एक शान्त जलूस पर हमला किया गया। लश्कर में कई विद्यार्थी गिरफ़्तार किए गए। हवालात में उनमें से कई-एक को बड़ी बेरहमी से पीटा गया। सभा और जलूसों पर पाबन्दी लगा दी गई। २३ अगस्त को भेलसा में सेन्ट्रल कमेटी ने महाराजा से ब्रिटिश सरकार से सम्बन्ध विच्छेद करने और उत्तरदायी शासन स्थापित करने की माँग की। यदि माँग की पूर्ति ३० अगस्त तक न हो तो अहिन्सात्मक सामूहिक संघर्ष किया जाय—यह प्रस्ताव पास किया गया। पर सरकार ने इस मियाद से पहले, २६ अगस्त से ही गिरफ्तारियाँ शुरू कर दीं; कई जगह लाठी-चार्ज किए गए। हर प्रकार का दमन किया गया। सैकड़ों आदमी जेल में ठूंस दिए गए। शिवपुरी, मुंगावली और सबलगढ़ में स्पेशल जेल कायम किए गए।

आखिर, २६ और ३० जून १६४३ को सरकार से हुए एक समझौते के फल-स्वरूप सारे बन्दी रिहा किए गए। समझौते में यह स्पष्ट था कि सार्वजनिक सभा को अगस्त प्रस्ताव वापिस लिए बिना

ही अपना कार्य पहले की तरह करने की स्वतंत्रता रहेगी। समझौते के कुछ समय बाद सभा फिर उत्साह-पूर्वक काम करने लगी।

गवालियर मिल गोली-कांड—सार्वजनिक सभा के प्रभाव से दमनकारी कानूनों का अमल में आना रुक गया था। तथापि १२ जनवरी १९४६ को जियाजी काटन मिल, गवालियर, के मजदूरों पर गोली चलाई गई। मिल के कार्यकर्ताओं ने १ जनवरी से हड़ताल कर रखी थी, क्योंकि उनकी आर्थिक माँगे पूरी नहीं की गई थीं। हड़ताल के ग्यारहवें दिन गवालियर पुलिस ने मज़दूरों और सर्वसाधारण जनता पर गोलियाँ चलाईं; इससे कई मौतें हुईं। लोक-परिषद ने इस कांड की जाँच कराई। राज्य ने भी एक जाँच-कमेटी नियुक्त की, पर गोली चलवानेवाले अधिकारियों के मोअत्तल न किए जाने की दशा में गैर-सरकारी सदस्यों ने उस कमेटी के काम में योग नहीं दिया। अस्तु, औद्योगिक न्यायालय के फैसले के बाद, जिसमें मज़दूरों की मुख्य-मुख्य माँगें स्वीकार कर ली गई थीं, २४ जनवरी को हड़ताल समाप्त हुई।

जागीरी इलाके—गवालियर राज्य में छोटी-बड़ी सब मिलाकर पाँच सौ से अधिक जागीरें हैं और इनमें लगभग चार लाख आदमी रहते हैं। अधिकांश जागीरदार अपने माली, दीवानी और फौजदारी अधिकारों का बहुत दुरुपयोग करते है और जनता को तरह-तरह से सताते हैं। कार्यकर्ता इस ओर ध्यान देते रहे हैं। कुछ वर्षों से सार्वजनिक सभा के अन्तर्गत जागीरी प्रजा के अधिकारों के वास्ते भी सार्वजनिक सम्मेलन किए जा रहे हैं। सभा ने सन् १९४० में खासकर मकडावन ठिकाने के अत्याचारों के विरुद्ध आन्दोलन चला कर सरकारी जाँच-कमीशन बिठलवाया। सरकारी जाँच के फल-स्वरूप जनता के बहुत से कष्ट दूर हुए।

पत्र-पत्रिकाएँ; जयाजी प्रताप, जीवन, प्रजा-पुकार— इस राज्य से प्रकाशित होनेवाले पत्रों में से हम केवल तीन का ही कुछ परिचय दे रहे हैं। ये सब लश्कर से निकलते हैं। यहाँ का 'जयाजी प्रताप' मध्यभारत का सम्भवतः सब से पुराना पत्र है। सन् १८५१ में, श्रीमन्त जयाजी राव के समय में, 'अखबार गवालियर' का जन्म हुआ था, वह पीछे 'गवालियर गजट' में बदल गया। सन् १९०५ में इसके दो भाग हो गए—'गवालियर स्टेट गजट' और 'जयाजी प्रताप'। इस प्रकार जयाजी प्रताप, साप्ताहिक पत्र के रूप में ११ जनवरी १९०५ से प्रकाशित होने लगा। इसके कुछ कालम अंगरेजी के लिए सुरक्षित रहे, जो अभी तक भी रहते हैं। सन् १९१० में, व्यापार सम्बन्धी दो मासिक पत्र, एक हिन्दी में और दूसरा अंगरेजी में, निकाले गए। सन् १९१२ में इन्हें 'जयाजी प्रताप' में ही मिला दिया गया। सन् १९१६ में जब प्रथम योरपीय महायुद्ध खूब जोरों पर था, यह पत्र दैनिक रूप में भी प्रकाशित हुआ। बियालीस वर्ष पूरा करने पर सन् १९४७ से यह अर्द्धसाप्ताहिक रूप में प्रकाशित होने लगा है। समय-समय पर इसके विविध विषयों के विशेषांक बड़ी सजधज से निकलते रहे हैं। यह पत्र शासन सम्बन्धी विषयों में गवालियर-सरकार के दृष्टिकोण का समर्थन करता है, यों इसमें जनता की रोजमर्रा की साधारण शिकायतों को भी स्थान दिया जाता है।

राष्ट्रीय पत्रों में 'जीवन' पिछले छः वर्ष से जनता की सेवा कर रहा है। इसके सम्पादक सुप्रसिद्ध साहित्यसेवी श्री जगन्नाथप्रसाद जी 'मिलिन्द' हैं। आप गवालियर राज्य के हैं, और गवालियर से ही जन-जागृति का यह कार्य कर रहे हैं। आपने समय-समय पर विविध कठिनाइयों का सामना किया। आपको कुछ समय पत्र बन्द भी रखना पड़ा, पर आप दृढ़तापूर्वक अपने सिद्धान्तों पर डटे रहे। पहले यह

पत्र साप्ताहिक था, अब अर्द्धसाप्ताहिक रूप में सेवा कर रहा है। पत्र के लेखों में समाजवाद और प्रगतिवाद की अच्छी भावना रहती है। इसका संचालन 'जीवन साहित्य मंडल' नाम का ट्रस्ट करता है।

'प्रजा-पुकार' नाम का राष्ट्रीय साप्ताहिक सन् १६४६ से गवालियर से निकलने लगा है। इसके सम्पादक श्री त्र्यम्बक सदाशिव गोखले और श्यामलाल जी पांडवीय हैं। ये दोनों सज्जन मध्यभारत के पुराने रियासती लोकसेवक हैं। श्री गोखले गवालियर स्टेट-कांग्रेस के उज्जैन तथा शिवपुरी अधिवेशनों के, और श्री पांडवीय मुरेना अधिवेशन के अध्यक्ष रह चुके हैं। इसके संस्थापक श्री त्र्यम्बक दामोदर पुस्तके तो गवालियर राज्य की राजनीतिक जागृति के जनक ही माने जाते हैं।

विशेष वक्तव्य—सार्वजनिक सभा की सदस्य-संख्या लगभग अट्ठाइस हजार, स्थानीय कमेटियाँ ३३३ और जिला-कमेटियाँ १० हैं। मार्च १६४६ में शिवपुरी अधिवेशन में इस सभा का नाम 'स्टेट-कांग्रेस' निश्चित हुआ और इसका नया विधान स्वीकृत हुआ। जून १६४६ में स्टेट-कांग्रेस ने अपनी तत्कालीन माँगे ये उपस्थित कीं—गवालियर राज्य का विधान बनाने के लिए जनता की विधान-परिषद, विधान बनने तक लोकप्रिय अन्तःकालीन मंत्रिमंडल, और धारा-सभा का सुधार। राज्य की ओर से दो मन्त्री दिए जाने की, और उत्तरदायी शासन के लक्ष्य की घोषणा की गई। स्टेट-कांग्रेस ने नवम्बर में, अपने सालाना जलसे में, जून १६४६ की माँगे प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय प्रकट किया, और अपनी कार्यसमिति को यह अधिकार दिया कि अगर ३१ दिसम्बर तक माँगे पूरी न हों तो राज्य से सीधा सङ्घर्ष करे। परन्तु अ० भा० दे० रा० लोकपरिषद की सलाह से सीधा सङ्घर्ष स्थगित कर दिया गया। लोकपरिषद का अधिवेशन यहाँ

अप्रैल १९४७ में बड़े समारोह से हुआ। इसके विषय में पहले लिखा जा चुका है।

गवालियर सरकार की सद्भावना के आश्वासन पर जून १९४७ में स्टेट-कांग्रेस ने समझौता कर लिया, मन्त्रिमण्डल में अपने सदस्यों को भेजा और शासन-सुधार कमेटी में भी भाग लेना स्वीकार कर लिया। पीछे की घटनाओं से स्टेट-कांग्रेस को मालूम हुआ कि राज्य द्वारा समझौते और सद्भावना के आश्वासन को भङ्ग किया गया, और प्रतिक्रियावादी तत्वों को प्रोत्साहन दिया गया है। इस पर उसने शासन-सुधार कमेटी के कांग्रेसी सदस्यों को कमेटी में भाग न लेने का आदेश दे दिया था। सत्याग्रह आन्दोलन छिड़ने की तैयारी हो चली थी। आखिर, दिसम्बर १९४७ के अन्त में महाराजा ने स्टेट-कांग्रेस के शिष्टमण्डल से भेंट की और कांग्रेस की माँगे पूरी करने का आश्वासन दिया। आशा है, समझौते की भावना की रक्षा की जायगी। यह स्पष्ट है कि जनता अब उत्तरदायी शासन की स्थापना के विषय में विलम्ब सहन नहीं कर सकती।*

इन्दौर

इन्दौर या होलकर राज्य मध्यभारत के मालवा और नीमाड़ प्रदेशों में है। यह कई बड़े-बड़े टुकड़ों से मिलकर बना है। यहाँ का क्षेत्रफल ९९२५ वर्गमील, जनसंख्या पन्द्रह लाख, और वार्षिक आय तीन करोड़ रुपए से अधिक है।

राष्ट्रीय भावनाओं का उदय—उन्नीसवीं सदी के अन्त में पूना में जो क्रान्तिकारी आन्दोलन हुआ, उससे इन्दौर के भी कुछ

* इस राज्य सम्बन्धी सामग्री जुटाने में श्री यशवन्तसिंह जी कुशवाह और श्यामलाल जी पांडवीय के लेखों से बहुत सहायता मिली है।

युवक प्रभावित हुए। उनमें भी क्रान्तिकारी भावना का उदय हुआ। गुप्त साहित्य का प्रचार होने लगा। पर इसका क्षेत्र बहुत परिमित ही रहा, और जल्दी ही जोश ठंडा पड़ गया। बीसवीं सदी के आरम्भ में बंगाल-विभाजन सम्बन्धी आन्दोलन (१९०७—०८) ने यहाँ राष्ट्रीय भावनाएँ विशेष रूप से फैलाईं। छोटे-मोटे सङ्गठन होने लगे, और उनके द्वारा राष्ट्रीय वाचनालय, पुस्तकालय, गणेशोत्सव, शिवाजी जयन्ती आदि का कार्य किया जाने लगा। इन प्रवृत्तियों को अधिकारियों ने शंका की दृष्टि से देखा। तीन-चार कार्यकर्ता निर्वासित कर दिए गए। जनता और सरकारी यन्त्र में सङ्घर्ष शुरू हो गया। कुछ निर्भीक, सज्जन सरकार के दोषों को दूर किए जाने के लिए सामूहिक तथा निजी प्रार्थनापत्र देने लगे। इस प्रकार लोकमत कुछ सङ्गठित हुआ, पर जन-आन्दोलन की जड़ कुछ विशेष रूप से न जमी; लहर आई और चली गई।

इन्दौर राज्य प्रजापरिषद और सरकारी दमन—यहाँ राजनीतिक जागृति का दूसरा दौर नागपुर कांग्रेस (१९२०) से शुरू हुआ। राजनीतिक उद्देश्य से इन्दौर में, 'इन्दौर राज्य-प्रजा-परिषद' स्थापित की गई। इसके उत्साही कार्यकर्ताओं ने राज्य के विविध स्थानों में घूम घूम कर राष्ट्रीय सन्देश पहुँचाया।

प्रजापरिषद का प्रथम अधिवेशन सितम्बर १९२१ ई० में हुआ। उसके कुछ प्रस्ताव निम्नलिखित विषयों के थे—पंचायतों की स्थापना प्रजा की सहायता से, और बिना विलम्ब, की जाय; निर्वाचित लोक-प्रतिनिधि-सभा स्थापित की जाय; राज्य भर में अनिवार्य और निश्शुल्क शिक्षा देने की योजना कार्यरूप में परिणत की जाय; सार्वजनिक भाषण, लेखन और प्रकाशन सम्बन्धी प्रतिबन्धक नियम रद्द कर दिए जायँ; बेगार उठा दी जाय; जागीरी क्षेत्र के दोषों को दूर किया जाय; कृषि तथा उद्योग की उन्नति की जाय।

यद्यपि राज्य में समय-समय पर कई अच्छे कानून बनाए गए थे—जैसे म्युनिसिपल कानून (सन् १९०९), अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा कानून (सन् १९१७) और ग्राम पंचायत कानून (सन् १९२०) आदि—प्रजापरिषद् रूपी जन-संगठन यहाँ सहन नहीं किया गया। उसके प्रमुख कार्यकर्ता सर्वश्री भानुदास शाह, डाक्टर व्यास और सूरजमल जी जैन राज्य से निर्वासित कर दिए गए। कई वकीलों की सनदें जप्त की गईं। परिषद के मन्त्री श्री सरवटे जी की सनद छः माह के लिए इस वास्ते जप्त को गई कि उन्होंने गणपति उत्सव पर, 'राजा के कर्त्तव्य और प्रजा के अधिकार' विषय पर भाषण देते हुए कहा था कि 'अत्याचारी राजा वेणु को प्रजा ने मार भी डाला था।' इससे इस बात का पता चलता है कि उस समय अधिकारियों को जन-जागृति की बातें कितनी कम सहन होती थीं। तथापि इन्दौर से इस समय तिलक-स्वराज्य-फंड में अट्ठाईस हजार रुपया भेजा गया था। इन्दौर छावनी में एक कांग्रेस कमेटी कायम की गई, उसके ५-६ उत्साही कार्यकर्ताओं को सजाएँ दी गईं। सन् १९२३-२४ में परिषद का दूसरा अधिवेशन करने की कोशिश सफल नहीं होने दी गई। इस समय सार्वजनिक सेवा भाव वाले कुछ सज्जन म्युनिसपेल्टी में जाकर पार्टी के रूप में काम करने लगे।

धीरे-धीरे समाचारपत्रों का प्रचार बढ़ा और यहाँ के संवाद प्रकाशित होने लगे। सन् १९२७ में एक पेम्फलेट राजद्रोहात्मक ठहराया गया और उसके लेखक श्री रघुनाथप्रसाद जी परसाई को, जो उस समय अ० भा० देशी राज्य लोक-परिषद के प्रान्तीय मन्त्री थे, दफा १२४-अ में एक साल की सजा दी गई, और पीछे निर्वासित कर दिया गया।

जागृति की नई लहर—सन् १९३० के सत्याग्रह आन्दोलन ने इन्दौर में फिर जन-जागृति का संचार किया। शहर में 'स्वदेशी

प्रचारक मंडल' स्थापित हुआ। उसने कई माह तक विदेशी कपड़े की दुकानों पर पिकेटिंग किया और वह विदेशी वस्त्रों की बिक्री रोकने में खूब सफल रहा। सन् १९३२ में इन्दौर से पचास-साठ सत्याग्रही अजमेर जेल में गए।

सन १९३१ की खादी प्रदर्शनी, १९३४ की स्वदेशी प्रदर्शनी और पीछे १९३५ की ग्रामोद्योग प्रदर्शनी ने, जो भारतवर्ष में अपने ढंग की पहली ही थी, यह दिखा दिया कि यहाँ रचनात्मक कामों की ओर भी अच्छा ध्यान दिया जा रहा है। सन १९३४ में यहाँ कांग्रेस-कमेटी अच्छी तरह स्थापित हो गई।

कार्यकर्ताओं का निर्वासन—जन-जागृति को दबाने के लिए यहाँ कार्यकर्ताओं का निर्वासन बहुत हुआ है। सर्वश्री भानुदास शाह, डाक्टर व्यास, सूरजमल जैन और रघुनाथ परसाई के निर्वासन का उल्लेख पहले किया जा चुका है। सन् १९३६ में कामरेड जुग्गन खां को निर्वासित किया गया। सन् १९३८ में जब कि सभाबन्दी आन्दोलन चल रहा था सर्वश्री कन्हैयालाल जी वैद्य, कुसुमाकान्त जी जैन, और लालसिंह जी यादव को निर्वासित किया गया। श्री० वैद्य को तो नरेन्द्र-रक्षा कानून के अनुसार कुछ समय इन्दौर राज्य में पड़नेवाले तमाम स्टेशनों पर रेल से उतरने तक की मनाही रही। पीछे उनके, द्वारा रेलवे मजिस्ट्रेट के सामने अपना मामला पेश किए जाने पर इसमें कुछ ढिलाई हुई।

इन्दौर राज्य प्रजामंडल—सन् १९३५ में, राज्य में उत्तर-दायी शासन स्थापित कराने के उद्देश्य से पुरानी प्रजापरिषद् के पुन-स्संगठन के रूप में 'इन्दौर राज्य प्रजामंडल' कायम किया गया। सन् १९३६ के अन्त में इसने इन्दौर नगर का म्युनिसिपल चुनाव लड़ा और उसमें काफी सङ्घर्ष होने पर भी अच्छी सफलता पाई। कार्यकर्ता लोग

जनता में राजनीतिक जीवन पैदा करने और सभाबन्दी कानून को रद्द कराने का प्रयत्न करते रहे। प्रजामंडल के आन्दोलन, और राष्ट्रीय सेवक श्री हजारीलाल जी जड़िया के २६ दिन के अनशन, के बाद दिसम्बर १९३८ में सभाबन्दी कानून हटाया गया; परन्तु राज्य से बाहर के वक्ताओं पर प्रतिबन्ध लगा रहा। सन् १९३९ से प्रजामंडल देहातों में भी काम करने लगा। हजारों आदमी इसके सदस्य हो गए। देहात और जिला-मंडल स्थापित किए गए। प्रजामंडल को राज्य-व्यापी स्वरूप देने के लिए इसे श्री० बैजनाथ जी महोदय जैसे लोकसेवी महानुभाव अध्यक्ष के रूप में मिल गए। प्रजामंडल के अधिवेशन के लिए जनता में खूब उत्साह था, पर ठीक अधिवेशन से पहले फिर सभाबन्दी कानून लगा दिया गया।

संघर्ष और समझौता—इस समय सरकारी अधिकारियों और सार्वजनिक कार्यकर्ताओं में बहुत संघर्ष हुआ। जनवरी १९४० में श्रीमती राजकुमारी अमृतकौर इन्दौर पधारीं; आपने प्रजामंडल और प्रधान मंत्री आदि से मिलकर वातावरण सुधारने की कोशिश की। समझौते के रूप में सरकार ने तीन काम किए—श्री जड़िया जी की रिहाई, 'प्रजामंडल-पत्रिका' प्रकाशित करने की अनुमति, और 'स्वराज्य' (खंडवा) पर लगी हुई निषेधाज्ञा का हटाना। सरकार की ओर से रचनात्मक कामों के लिए आर्थिक और नैतिक सहयोग देने का आश्वासन दिया गया।

घोर दमन—राज्याधिकारियों और सार्वजनिक कार्यकर्ताओं में पारस्परिक सहयोग बहुत दिन नहीं रहा। सन् १९४० के पिछले हिस्से में सिविक गार्डों की भरती और युद्ध के लिए चन्दा वसूली में अधिकारियों ने बहुत ज्यादतियाँ कीं। पीछे प्रधान मंत्री कर्नल दीनानाथ (१९३९-४२) ने अपने दमन को बढ़ाते हुए १९४०-४१ में महीदपुर

और नेमाड़ के जिला-अधिवेशनों को, और मार्च १६४१ में प्रजामंडल के वार्षिक अधिवेशन को, रोक दिया। महीदपुर में गांधी जयन्ती की मीटिंग तक रोक दी गई। बाहरी वक्ताओं के भाषण पर जो बंदिश शहर में ही थी, वह राज्य भर के लिए कर दी गई। 'पब्लिक सिक्यूरिटी' (सार्वजनिक सुरक्षा) नामक दमनकारी कानून बनाया गया। प्रजामंडल के मुकाबले की एक प्रतिक्रियावादी संस्था 'होल्कर राज्य प्रजा संघ' की स्थापना की गई। पर प्रजामंडल ने भी दमन का करारा जवाब दिया। उसने सन् १६४१ के अधिवेशन की रोक के खिलाफ सत्याग्रह किया। इस पर अनेक कार्यकर्ताओं को जेल भेजा गया। परन्तु इससे प्रजामंडल का प्रभाव और शक्ति बढ़ी। राज्य भर में जोश फैल गया। अन्त में महाराजा साहब ने बीस दिन में ही सब सत्याग्रहियों को रिहा कर दिया। अधिवेशन पर से रोक हट जाने पर वह अगले साल (१६४२) उसी जगह हुआ, जहाँ पहले निश्चित किया गया था, और उसमें वही बन्दिश लगा हुआ भाषण पढ़ा गया। निमाड़ ज़िला कान्फ्रेन्स को रोकने के लिए अधिकारियों ने हैजे की आड़ ली थी, प्रजामंडल ने उसी समय बीस कस्बों में कान्फ्रेन्स कर दिखाई। प्रधान मंत्री को लाचार यह कड़वी घूंट पीनी पड़ी, पीछे तो महाराजा साहब ने उन्हें इस पद से हटा दिया और यह पद ही तोड़ दिया।

युद्ध-काल में प्रजामंडल का कार्य—प्रजामंडल ने सन् १६४२ में राज्य की आन्तरिक अव्यवस्था का सामना करने के लिए नागरिक सेवा-दल का संगठन किया। ग्राम-पंचायतों को संगठित किया गया। खासकर श्री रामेश्वरदयाल जी तोतला की प्रेरणा और परिश्रम से लगभग १०० पंचायतों की भिन्न-भिन्न समूहों में १२ परिषदें की गईं, जिनमें करीब ५०० गाँवों को सम्मिलित किया गया। एक म्युनिसिपल कान्फ्रेन्स की गई, जिसमें इन्दौर राज्य की म्युनिसपेलटियों के अतिरिक्त पड़ोस की रियासतों के भी प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

महायुद्ध के संकट-काल में प्रजामंडल ने सर्वसाधारण के लिए, अन्न और वस्त्र की व्यवस्था के सम्बन्ध में भी महत्वपूर्ण सेवा की; और अधिकारियों की घूसखोरी, व्यापारियों और स्वयं सरकार की मुनाफे-खोरी को यथासम्भव रोकने का प्रयत्न किया। मज़दूरों की हड़ताल, बोनस और मँहगाई आदि के सम्बन्ध में भी समय-समय पर यथेष्ट कार्यवाही की गई।

अगस्त आन्दोलन—अगस्त १९४२ के आन्दोलन में प्रजामंडल ने अपने पद और मर्यादा के अनुरूप भाग लिया। इसने महाराजा से माँग की कि ब्रिटिश सरकार से मातहती का सम्बन्ध तोड़ दें और राज्य में उत्तरदायी शासन स्थापित करें। ये माँगें स्वीकार न होने पर १९ अगस्त को शहर में एकसाथ तीन स्थानों पर सत्याग्रह किया गया, और उसके फल-स्वरूप होनेवाली गिरफ़्तारियों का स्वागत किया गया। फिर तो राज्य भर में यही क्रम चला। पुलिस की लाठियाँ ही नहीं, गोलियाँ भी चलीं। २६ जनवरी (स्वतंत्रता दिवस) १९४३ तक संघर्ष का रूप तीव्र रहा। लगभग ५०० आदमी औरतें जेलों में पहुँचीं, जिनमें विद्यार्थी, व्यापारी, मजदूर, डाक्टर, किसान, वकील, शिक्षित और अशिक्षित सभी वर्गों के व्यक्ति थे। रियासत में आन्दोलन छः सात माह तक चला।

संघर्ष आरम्भ होने के कुछ ही दिन बाद महाराजा साहब अमरीका चले गए। उनकी अनुपस्थिति में शासन-कार्य देवास (बड़ी पांती) के नरेश चलाने लगे। उन्होंने राजनीतिक समस्या सुलझाने का कुछ प्रयत्न किया, परन्तु सफलता नहीं मिली; अप्रेल १९४३ में उनके स्थान पर भारत-सरकार ने सीधे ही राजा ज्ञाननाथ को प्रधान मंत्री नियुक्त कर दिया। इन्होंने राजबन्दियों की रिहाई के लिए जो शर्तें रखीं, उन्हें प्रजामंडल के सर्वाधिकारी ने अपमानजनक समझा और अस्वीकार

कर दिया। सितम्बर में महाराजा साहब अमरीका से लौटे, उन्होंने नवम्बर में राजबन्दियों की रिहाई बिना शर्त कर दी।

प्रजामंडल की विजय—जेल से छूटने पर कार्यकर्ता प्रत्यक्ष सेवात्मक और लोकोपयोगी कार्यों में जुट गए। परन्तु प्रजामंडल गैर-कानूनी ही रहा। तथापि इसके नाम पर व्यवस्थापक सभा का चुनाव लड़ा गया और इसके तीस उम्मेदवारों में २६ सफल रहे। इस पर ३० सितम्बर १९४४ को दशहरे के अवसर पर प्रजामंडल पर से रोक हटी। म्युनिसपेल्टी के चुनाव में भी प्रजा-मंडल की भारी विजय हुई। इसे २१ स्थानों में से १९ प्राप्त हुए। इस समय हर परगने में पूरा समय देनेवाले कार्यकर्ता नियुक्त किए गए और ग्राम-पंचायतें सक्रिय बनाई गईं।

नागरिक स्वाधीनता आन्दोलन—इन्दौर नगर में समय-समय पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन, सम्पादक सम्मेलन, कवि सम्मेलन, म्युनिसिपल कान्फ्रेंस, पञ्चायत सम्मेलन आदि संस्थाओं के अधिवेशन हुए हैं और राज्य की ओर से इन सार्वजनिक कार्यों में सहयोग और सहायता मिली है। परन्तु जनता के नागरिक अधिकारों के विषय में यह राज्य बहुत ही पिछड़ा हुआ रहा है। सन् १९०० तक तो यहाँ का शासन निरंकुश ही था। १९०८ में उसने नागरिक स्वाधीनता पर प्रहार किया; राज्य में शिवाजी-उत्सव आदि मनाने पर पाबन्दी लगाई गई। पीछे सभाबन्दी शुरू हुई। जैसा पहले बताया जा चुका है, यह १९३८ के अन्त में उठी, परन्तु कुछ समय बाद फिर लगा दी गई। बाहरी वक्ताओं के भाषण के लिए खुद प्रधान मन्त्री की, और प्रभात-फेरी और जलूसों के लिए (पुलिस के) इन्स्पेक्टर जनरल की इजाजत लेना जरूरी कर दिया गया। दस-बारह कार्यकर्ता बिना मुकदमा चलाए निर्वासित कर दिए गए। 'इन्दौर सार्वजनिक रक्षा कानून'

(सन् १९४१) और नोटिफिकेशन १८ (सन् १९३९) लागू करके पुलिस को अनियंत्रित सत्ता सौंप दी गई। राज्य में लाउडस्पीकर के उपयोग पर पहले से ही बन्दिश लगी हुई थी। बाहर के कितने ही पत्रों का आना भी बन्द था। इस प्रकार सार्वजनिक जीवन के हर पहलू का दम घोट दिया गया था। ऐसी स्थिति में 'बम्बई क्रानिकल' के यशस्वी सम्पादक श्री सैयद अब्दुल्ला ब्रेलवी की अध्यक्षता में मई १९४४ में 'इन्दौर राज्य नागरिक स्वाधीनता परिषद' की गई। प्रजामण्डल ने अपने सङ्गठन, व्यवस्थापक सभा और म्युनिसपेलटी द्वारा भी विविध बन्दिशों के खिलाफ आवाज़ उठाई। तब जाकर राज्य ने सिर्फ इन्दौर शहर की आम सभाओं पर से बन्दिश उठाई।

प्रजामण्डल की प्रवृत्तियाँ; मार्च १९४४ के बाद— युद्ध-काल में कभी राज्य के दमन का शिकार होकर, और कभी उससे मुक्त रहकर इसने जनता की प्रगति को बढ़ाते रहने की निरन्तर कोशिश की। मार्च १९४५ के बाद की मुख्य बातें ये हैं—प्रजामण्डल का वार्षिक अधिवेशन श्री मिश्रीलाल जी गंगवाल के सभापतित्व में हुआ। एक लाख रु० की निधि के लिए अपील की गई। श्री कस्तूरबा राष्ट्रीय निधि में चालीस हजार रु० की सहायता दी गई। श्री बालेश्वर दयाल जी का निर्वासन हुआ, और पत्रकार श्री सूर्यनारायण शर्मा पर संवाद भेजने के सम्बन्ध में बन्दिश लगाई गई। प्रजामण्डल का अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद से सम्बन्ध स्थापित किया गया। कई राष्ट्रीय उत्सव, दिवस या जयन्तियाँ मनाई गईं। मध्यभारत कर्मचारी परिषद आदि सङ्गठनों का आयोजन किया गया।

मार्च १९४६ से इधर ये काम हुए हैं—खातेगाँव में श्री रामेश्वर दयाल जी तोतला के सभापतित्व में प्रजामण्डल का वार्षिक अधिवेशन हुआ। जुलाई से सितम्बर १९४६ तक कार्यकर्ता शिक्षण शिविर चलाया गया। पञ्चायत परिषद की गई, इसमें पचास फी सदी से

अधिक पञ्चों ने भाग लिया। गाँवों की सफाई, आरोग्य-रक्षा, ग्रामोद्योग, कृषि तथा ग्राम-शासन पर विशेष ध्यान दिया गया। राज्य के ३६०० गाँवों में से ३१०० में जा-जाकर जनता से उत्तरदायी शासन की माँग का समर्थन कराया गया। मजदूर, महिला, विद्यार्थी, देहाती (बेजमीन) मजदूर, मोटर-ड्राइवर, प्रेस कर्मचारी आदि क्षेत्रों में सम्पर्क बढ़ाया गया तथा इन लोगों की विविध शिकायतें दूर करने में में सहायता पहुँचाई गई। प्रजामण्डल के पचास हजार सदस्य बनाए गए; इससे पिछले वर्ष में सदस्यों की संख्या इससे आधी ही रही थी। सर्वसाधारण का अन्न-कष्ट दूर करने का प्रयत्न किया गया, और गन्ने की समस्या सुलझाई गई। व्यवस्थापक सभा और म्युनिसपेलटी द्वारा यथा-सम्भव उपयोगी नियम और कानून बनवाए गए।

कुछ समय से प्रजामण्डल और नगर कांग्रेस कमेटी में मतभेद ही नहीं, संघर्ष चल रहा था। आखिर, श्री डाक्टर केसकर और श्री सादिकअली जी द्वारा जाँच होकर यह निर्णय किया गया कि रियासतों में राजनीतिक संस्था केवल प्रजामण्डल ही रहे।

पत्र-पत्रिकाएँ; 'प्रजामंडल-पत्रिका', 'वीणा'—अनेक विघ्न बाधाएं होते हुए भी इन्दौर से समय-समय पर कई पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं और इस समय तो यहाँ से कई मासिकों के अतिरिक्त चार दैनिक और सात साप्ताहिक प्रकाशित हो रहे हैं। 'प्रजामंडल पत्रिका' इस राज्य के प्रजामंडल की मुख-पत्रिका है। यह २६ जनवरी १९४० से प्रकाशित होने लगी। अगस्त १९४२ में प्रजामंडल गैर-कानूनी घोषित होने पर पत्रिका का बन्द हो जाना स्वभाविक ही था। पीछे जनवरी सन् ४४ से यह फिर छपने लगी। यह जनता की पत्रिका है और उसमें जीवन संचार करती रहती है। इसका सम्पादन त्यागशील श्री बैजनाथ जी ने किया है और इसकी व्यवस्था की जिम्मेदारी भी श्री कृष्णकान्त जी व्यास पर रही है।

वहाँ मध्यभारत-हिन्दी-साहित्य-समिति द्वारा बीस वर्ष से 'वीणा' नाम की मासिक पत्रिका (तथा कई पुस्तकमालाएँ) प्रकाशित हो रही है। समिति राज्य में पुस्तकालयों और वाचनालयों के प्रचार में भी योग देती है।

विशेष वक्तव्य; चार लोकप्रिय मन्त्री—महायुद्ध के बाद २१ मई १९४६ को प्रजामंडल ने महाराजा साहब से निवेदन किया कि वे तुरन्त राज्य में उत्तरदायी शासन की घोषणा करें और एक साल के अन्दर उसकी स्थापना कर दें। साल भर बीत गया। इस बीच महाराजा साहब बीमार पड़े और अमरीका गए। आप ६ अप्रेल १९४७ को राज्य में लौटे। परन्तु लौटने पर भी आपने जनता से सम्पर्क कायम नहीं किया। इस समय मंत्रिमंडल के छः मंत्रियों में तीन अंग्रेज थे और उनमें से ही एक प्रधान मन्त्री था। यह भी आशंका होने लगी कि महाराजा साहब इन्दौर राज्य को भारतीय संघ में शामिल करने में आनाकानी कर रहे हैं। प्रजामंडल के कार्यकर्त्ताओं ने आपसे मिल कर जनता की माँग पर विचार करना चाहा, पर आप नहीं मिले। इसके विपरीत सभा और प्रदर्शन गैर-कानूनी घोषित कर दिए गए। शहर में १४४ धारा लगा दी गई। तथापि २३ मई को पाँच-पाँच सत्याग्रहियों के तेरह जत्थे कानून भङ्ग करके महाराजा साहब के महल को रवाना हुए। वहाँ हजारों की संख्या में जनता इकट्ठी थी। पुलिस ने भीड़ पर लाठी-वर्षा की, गिरफ्तारियाँ हुईं, और गोलिया भी चलीं।

आखिर, महाराजा साहब ने अपना रुख बदला, या खासकर राष्ट्रीय परिस्थिति के कारण आप बदलने को वाध्य हुए। प्रधान मंत्री सहित तीनों अंगरेज मंत्रियों को अलग किया गया। श्री एन० सी० मेहता प्रधान मंत्री नियुक्त हुए, (अब प्रधान मन्त्री श्री भिड़े हैं)। इन्दौर राज्य को भारतीय सङ्घ में शामिल किया गया।

मंत्रिमंडल के सदस्यों को छः से बढ़ाकर आठ करना तो कोई प्रशंसनीय बात नहीं है—इससे अनावश्यक खर्च बढ़ गया है—हाँ, यह कुछ सन्तोष की बात है कि इनमें से दो मंत्री तो पहले ही प्रजामंडल के नेताओं में से ले लिए गए थे—श्री वैजनाथ महोदय और मिश्रीलाल जी गंगवाल। पीछे दो अन्य गैर-सरकारी मन्त्री लिए गए—श्री सर्वटे और श्री द्राविड़। इन लोकसेवी सज्जनों का मन्त्री बनना जन-जागृति का अच्छा प्रमाण है।

भोपाल

भारतवर्ष भर में, मुसलिम शासकों वाले राज्यों में, केवल हैदराबाद को छोड़ कर, भोपाल का महत्व सबसे अधिक माना जाता है। इस राज्य का क्षेत्रफल ६,९२८ वर्गमील, और औसत वार्षिक आय पचीस लाख रुपया है। यहाँ की जनसंख्या ८ लाख है, उसमें से सिर्फ सातवाँ हिस्सा मुसलमान और शेष हिन्दू हैं, जिनमें कुछ मूल निवासी गोंड़ भी हैं। प्रधान शासक का पद नवाब है। यहाँ समय-समय पर कई बेगमों ने भी शासन किया है।

नागरिकों की शिकायतें—इस राज्य में वातावरण ऐसा आतङ्कपूर्ण, और अधिकारियों का अप्रत्यक्ष दबाव इतना अधिक रहा है कि सार्वजनिक जीवन पनपने ही नहीं पाया। यहाँ नागरिकों की मुख्य-मुख्य शिकायतें ये रही हैं—(१) भाषण, लेखन, और प्रकाशन की स्वतन्त्रता का अभाव। (२) जान-माल की रक्षा की यथेष्ट व्यवस्था का अभाव। (३) बेगार, कर-भार और एकाधिकार का अत्याचार (४) धार्मिक पक्षपात। (५) म्युनिसिपल और ग्राम-क्षेत्रों में लोक-प्रतिनिधिक संस्थाओं की कमी। (६) नवाब साहब और उनके परिवार का बेहद खर्च। (७) जनता की शिक्षा, स्वास्थ्य और चिकित्सा आदि

लोकहितकारी कार्यों की भयङ्कर कमी। इनमें से कुछ के विषय में खुलासा आगे लिखा जाता है।

वैयक्तिक या साम्पत्तिक स्वाधीनता का अभाव—भोपाल राज्य में न्यायालय के निर्णय बिना ही शासक किसी आदमी को कैद, नजरबन्द या राज्य-निर्वासित कर सकते हैं। इस राज्य के १७ सितम्बर १९२५ के गजट में प्रकाशित कानून—२ के प्रसङ्ग में कहा गया है कि जब कौंसिलयुक्त नवाब को यह जरूरी मालूम होगा कि किसी आदमी को कैद करे और उसके सम्बन्ध में अदालती कार्रवाई न करे या किसी आदमी को भोपाल राज्य की सीमा से निकाल दिया जाय और अगर वह राज्य छोड़कर न जाय तो उसे नजरबन्द करके रखा जाय तो कौंसिलयुक्त नवाब की आज्ञा से, और सेक्रेटरी के हस्ताक्षर से वारंट निकाल कर ऐसा कर दिया जायगा। इसी प्रकार जब कौंसिल-युक्त नवाब किसी जागीरदार या ज़मींदार आदि की सम्पत्ति या जमीन अदालती निर्णय से पहले या कानूनी कार्रवाई के बिना जप्त कर ली जाय तो जिन कारणों के आधार पर भोपाल सरकार ऐसा करती है, उसकी सूचना सेक्रेटरी द्वारा उस जिले के नाजिम या जज को भेज दी जायगी, जिसमें वह जमीन या जायदाद है।

धार्मिक पक्षपात—धार्मिक पक्षपात के सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि भोपाल के दंड-विधान में बहुत समय तक इस आशय का कानून रहा है कि अगर कोई आदमी इसलाम धर्म स्वीकार करने के बाद उसे छोड़े तो उसे तीन साल तक की कैद या जुर्माने या दोनों की सजा दी जा सकती है। यहाँ इसलाम धर्म के प्रचार को खूब प्रोत्साहन दिया जाता है। हिन्दू धर्म के कार्यकर्ताओं और संस्थाओं को प्रत्यक्ष या गौण रूप से दबाया जाता रहा है।

प्रेस एक्ट, और साहित्य पर प्रतिबन्ध—यहाँ प्रेसों (छापेखानों) पर प्रतिबन्ध सन् १९२७ से है। देशी राज्यों में जागृति की विशेष लहर सन् १९३५ से आई। भोपाल में भी इस समय पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की माँग बढ़ी। इस पर यहाँ सन् १९३५ और १९३६ में प्रेस कानून और भी कड़ा कर दिया गया। मजिस्ट्रेट प्रेस रखनेवाले से पहले से ही जमानत लेने लगे। प्रेस रखने के लिए लाइसेन्स लेना तो लाजमी था ही। इन बाधाओं के कारण भोपाल राज्य में प्रेस रखने की स्वतन्त्रता का प्रायः अपहरण ही हो गया; इसके अलावा, अगर आदमी बाहर से छपा हुआ साहित्य मंगा कर ही अपनी मानसिक क्षुधा को शान्त करना चाहें तो सायर (चुंगी) कानून के द्वारा उसे भी बहुत मुश्किल कर दिया गया।

भाषणों पर रुकावट—इसी तरह यहाँ भाषणों पर भी बन्दिश लगाई गई। सन् १९३७ से ऐसा नियम कर दिया गया कि यहाँ धार्मिक या अन्य किसी भी प्रकार का भाषण, पहले से सरकारी इजाजत लिए बिना, न दिया जासके। धार्मिक भाषण के वास्ते काजी अथवा धर्मशास्त्री से, और अन्य प्रकार के भाषणों के लिए जिला-मजिस्ट्रेट से, आज्ञा लेना अनिवार्य कर दिया गया। इससे बाहरवालों के भाषण तो प्रायः बन्द ही होगए; स्थानीय सज्जनों के भाषणों की व्यवस्था करना भी कुछ आसान न रहा।

नागरिक स्वतंत्रता का अभाव—सन् १९३८ में जब भोपाल की नागरिक-स्वतंत्रता के प्रश्न को लेकर अ० दे० रा० लोक-परिषद् के तत्कालीन प्रधान श्री जवाहरलाल जी नेहरू ने अपने वक्तव्य में कहा था कि भोपाल राज्य में नागरिक स्वतन्त्रता नहीं है, तब भोपाल के पब्लिसिटी अफसर ने एक लम्बे बयान में उस वक्तव्य को झूठा साबित करने की कोशिश की थी, परन्तु जब पंडितजी

ने अपने बयान में फौरन ही बम्बई की सिविल लिबरटी यूनियन द्वारा जाँच कराने की माँग की तो भोपाल-सरकार को वह न्याय-संगत माँग स्वीकार करने का साहस नहीं हुआ।

भोपाल राज्य प्रजामंडल—इस राज्य के उत्साही सेवा-भावी कार्यकर्ताओं ने अनेक विघ्न बाधाओं के होते हुए भी सन् १९३८ में भोपाल राज्य-प्रजा-मंडल (स्टेट पीपल्स कान्फ्रेंस) की स्थापना कर डाली; इसका उद्देश्य उत्तरदायी शासन स्थापित करना है। इसमें राष्ट्रीय भाव वाले मुसलिम कार्यकर्ताओं का प्रशंसनीय भाग है। यह संस्था बड़ी-बड़ी सभाएँ करके, नागरिक स्वतंत्रता, बेकारी-निवारण और शासन सुधार का आन्दोलन करती है, और लोकमत को जागृत कर जनता को साम्प्रदायिक भावनाओं से बचे रहने की प्रेरणा करती है।

भोपाल के पीड़ित किसान और मज़दूर बड़ी तेज़ी से प्रजामंडल के झन्डे के तले अपना संगठन कर रहे हैं और हर ज़िले और तहसील में होने वाले प्रजामंडल के ज़िला और परगना-सम्मेलनों की बाढ़-सी आ गई है। जहाँ-जहाँ प्रजामंडल की स्थापना हो गई है, वहाँ मनमानी करनेवाले रिश्वतखोर और ज़ालिम अधिकारी परेशान नज़र आते हैं। जनता ने भेंट बेगार देने से इन्कार कर दिया है। उसने उत्तरदायी शासन स्थापित करने के लिए कमर कसली है।

सन् १९४२ का आन्दोलन—प्रजामंडल ने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन सम्बन्धी बंबई प्रस्ताव के समर्थन में १६ सितम्बर को एक प्रस्ताव पास करके उसे बाहर से छपवा कर मँगवाया। परन्तु वह स्टेशन पर पकड़ा गया। स्थान-स्थान पर तलाशियाँ और गिरफ्तारियाँ हुईं। स्कूल के लड़कों को पकड़ कर पीटा गया। स्कूल में १५ दिन की छुट्टी कर दी गई। अहमदाबाद मुहल्ले के विद्यार्थियों को पार्टियाँ दी गईं और उन्हें मैच खेलाए गए, ताकि वे अन्य विद्यार्थियों के साथ मिल

कर आन्दोलन में भाग न लें। ७ कार्यकर्ताओं को सज़ा हुई। शेष गिरफ़्तार न हो सके। श्री इलताफ मजदानी, सम्पादक 'जमहूर', मुकदमे के बीच ही बीमार पड़ गए, हालत नाजुक होने पर उन पर से मुकदमा उठा लिया गया। वह पीछे जल्दी ही मर गए। प्रजामंडल के नेता श्री शाकिरअली खां को दो साल की कैद और १०० रु० जुर्माने की सजा दी गई।

भोपाल सरकार की कूट नीति—भोपाल के नवाब साहब (मोहम्मद हमीदुल्ला खां) बहुत चतुर चालाक हैं, बात-व्यवहार तथा नेताओं का स्वागत सत्कार करने में खूब कुशल हैं। इसलिए बाहरी आदमियों को इस राज्य के विषय में प्रायः अच्छी धारणा रही है, यहाँ तक कि उन्होंने इसे 'रामराज्य' ही कह डाला। असली हालत कुछ और ही है। कुछ समय हुआ भोपाल राज्य प्रजामंडल के तत्कालीन प्रधान मंत्री और व्यवस्थापक सभा के सदस्य पं० चतुरनरायण मालवीय ने कहा था कि—"भोपाल सरकार ने कभी-कभी बड़ी चालाकी से और कभी-कभी तो ओछे हथियारों पर उतर कर भी, जैसे-बना तैसे भोपाल की जनता की प्रगतिशील शक्तियों का दमन किया है और अपनी अनुदार, अनुत्तरदायी और निरंकुश सत्ता को सदा क़ायम रखने का जी जान से प्रयत्न किया है। भोपाल नरेश ने भोपाल राज्य में या उससे बाहर दुनिया भर में चाहे कितने ही प्रगतिशील और क्रान्तिकारी वक्तव्य अथवा भाषण दिये हों या ऐलान किए हों, लेकिन उनका भोपाल सरकार के उनके अनुसार काम करने से कोई सम्बन्ध नहीं रहा। खुले शब्दों में भोपाल शासक की अन्दर की नीति कुछ और है, और बाहरी कुछ और।.........मेरा विश्वास है कि भोपाल में अशान्ति, अत्याचार, अनाचार और गुन्डाशाही की एकमात्र ज़िम्मेदारी भोपाल सरकार पर है, क्योंकि उसने जानबूझ कर ऐसे अधिकारियों को अपने यहाँ स्थान दे रखा है, जो खुल्लम-खुल्ला साम्प्रदायिकनीति

को प्रोत्साहन देते हैं और खुद दूसरों के हमदर्द बनकर औरों को परस्पर लड़ाया करते हैं।"

कार्यकर्ताओं का दमन—प्रजामंडल पर आरम्भ से ही अधिकारियों की कोपदृष्टि रही है। इसके सभापति पंडित चतुरनारायण मालवीय को गिरफ़ार करके नजरबन्द किया गया था, जब इनका स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया तो इन्हें छोड़ा गया, पर यह हुक्म दे दिया गया कि ये राज्य के पश्चिमी हिस्से में दाखिल न हों। दूसरे सभापति श्री शाकिरअली खाँ नवाब साहब से दो बार मिले, परन्तु परिणाम यही हुआ कि आप बन्दीगृह पहुँचाए गए। सन् १६४२ में सर्वश्री शाकिर-अली खाँ, चतुरनारायण मालवीय आदि सज्जन दो-दो साल की सख्त सजा पूरी करके रिहा हुए तो जनता ने आपके स्वागत के लिए सभा करने की इजाजत चाही, लेकिन मजिस्ट्रेट ने इजाजत नहीं दी।

इन बातों का कहाँ तक वर्णन किया जाय! वर्तमान परिस्थिति पर प्रकाश डालने के लिए यह उल्लेख कर देना काफी होगा कि सर्वश्री तरजी मशरिकी (सभापति भोपाल राज्य प्रजा मंडल), शाकिरअली खाँ, तथा अन्य प्रसिद्ध लोकनेताओं ने एक सम्मिलित वक्तव्य में नाग-रिक प्रतिबन्धों का तीव्र विरोध किया और कहा है कि भोपाल सरकार ने देहातों में जन-आन्दोलन के प्रभाव को नष्ट करने के लिए झगड़ालू और विषैला रवैया इख्तयार किया है, और राष्ट्रीय जन-सेवकों को सम्प्रदायवादी प्रमाणित करने का झूठा और निन्दनीय प्रयत्न किया है। नवाब साहब इस काले कानून को रद्द करें, जिसका नाम 'जन-सुरक्षा कानून' रखा गया है; जनता को नागरिक और वैयक्तिक स्वतन्त्रता प्रदान करें और राज्य में उत्तरदायी शासन स्थापित करें।

विशेष वक्तव्य—१ नवम्बर १६४७ को नवाब साहब ने एक घोषणा, जन-प्रतिनिधियों की सलाह के बिना, की है। उसके अनुसार

बनने वाली 'विधान-परिषद्' को केवल सिफारिश करने का ही अधिकार होगा। फिर, प्रजामंडल जैसी राष्ट्रीय संस्था को प्रतिक्रियावादी साम्प्रदायिक संस्थाओं की बराबरी का माना गया है। इससे प्रजामंडल का इस घोषणा को अमान्य करना स्वाभाविक ही है। नवाब साहब ने पिछले दिनों पाकिस्तान के नेताओं और समर्थकों से खूब सहानुभूति दिखाई, और वे बहुत हुज्जत और आनाकानी करने के बाद भारतीय सङ्घ में शामिल हुए। क्या अब वे शासन-सुधारों के नाम पर जनता के साथ खिलवाड़ करते रहेंगे? प्रजामंडल के प्रताप से जनता अब जागृत और सतर्क है, उसे कब तक धोखा दिया जा सकेगा?

रीवा

मध्यभारत के बघेलखंड प्रदेश में रीवा राज्य मुख्य है। इसका क्षेत्रफल तेरह हजार वर्गमील आबादी अठारह लाख और सालाना आमदनी पचासी लाख रुपये है। यहाँ का शासक बघेल राजपूत है।

साठ वर्ष पहले; 'भारत-भ्राता' साप्ताहिक पत्र— इस राज्य में जागृति का कार्य पहली बार अब से साठ वर्ष पहले शुरू हुआ था।* सन् १८८५ में जब कांग्रेस की स्थापना हुई तो देश-प्रेम की लहर रीवा में भी आई। लाल बलदेवसिंह जी ने जो उस समय रीवा राज्य की फौज के सेनापति थे, जनता को राजनीतिक जीवन

---

*श्री प्रकाश बी० ए० ने सन् १९३१ में 'रीवा' नाम की एक उपयोगी पुस्तक प्रकाशित की थी। हमने यहाँ उस समय तक की पुरानी घटनाओं का उल्लेख उसके ही आधार पर किया है।

देने के लिए 'भारत-भ्राता' नाम का हिन्दी साप्ताहिक पत्र निकालना आरम्भ किया। यह पत्र सोलह वर्ष चल कर सन् १९०३ में कुछ राजनीतिक कारणों से बन्द हुआ।

सेना की वृद्धि और शिक्षा में अरुचि—रीवा छोटी-छोटी शक्तियों का समूह है और इन शक्तियों को वश में करने के लिए दृढ़ सेना की आवश्यकता थी। महाराजा व्यंकटरमण जी को सेना में विशेष रुचि भी थी, उनका जीवन ही सैनिक था। सेना को बढ़ाने के वास्ते वे आदमियों को ज़बरदस्ती भी भरती करते थे। १९०६ में लाल अवधेश प्रतापसिंह जी को उनकी इच्छा के विरुद्ध भरती किया गया। इनका झुकाव प्रारम्भ से राजनीतिक बातों की ओर था, इनके उद्योग से सेना में बाहरी समाचारपत्र आदि आने लगे, और बहुत से आदमी राजनीतिक बातों में दिलचस्पी लेने लगे।

महाराजा साहब शिक्षा को फौजी जीवन में बाधक समझते थे। राज्य ने अंगरेजी स्कूलों में फीस लगादी, इससे गरीबों का पढ़ना मुश्किल होगया। बड़े आदमियों के लड़के जो बाहर जाकर पढ़ सकते थे, जबरन फौज में भरती किए जाने लगे। यह देखकर लाल अवधेश प्रतापसिंह जी, जो इस समय फौज में कप्तान थे, फौज से अवकाश ग्रहण कर प्रयाग में शिक्षा प्राप्त करने चले गए। वहाँ उन्हों ने 'बघेलखंड एसोसिएशन' स्थापित की। इस संस्था का उद्देश्य गरीब विद्यार्थियों को बाहर जाकर शिक्षा प्राप्त करने में सहायता पहुँचाना था। लाल नर्मदाप्रसाद सिंह जी आदि सज्जनों ने इस संस्था की धन से खूब मदद की। लाल नर्मदाप्रसाद सिंह जी अजमेर से हाई स्कूल डिप्लोमा पास कर रीवा आगए और तहसीलदार बनाए गए। इन्होने सेवा समिति की स्थापना की और 'सरस्वती सदन' नाम के एक बड़े पुस्तकालय की नींव महाराजा साहब द्वारा

रखवाई, पर कुछ समय बाद इनके बाहर चले जाने के कारण इसका कार्य रुक गया।

रीजेन्सी शासन; नागरिक अधिकारों का अपहरण— सन् १९१८ में महाराजा व्यंकटरमणसिंह जी का देहान्त होजाने पर राज्य में रीजेन्सी का शासन आरम्भ हुआ। इस समय महाराजा साहब के देहान्त पर शोक प्रकट करने के लिए भी सभा बड़ी कठिनाई से होसकी। इस सभा में यह निश्चित हुआ कि व्यंकट विद्यावर्द्धनी नामकी एक संस्था स्थापित की जाय, जो राज्य में शिक्षा का प्रचार करे। पर अधिकारियों ने इसकी स्वीकृति नहीं दी। रीवा में भाषण देने और संस्थाएँ स्थापित करने की स्वतंत्रता थी, वह भी रीजेन्सी शासन में अपहरण कर ली गई। इस समय राजनीतिक कार्यकर्ताओं में मतभेद यहाँ तक बढ़ा कि महाराजा गुलाबसिंह जी को अधिकार मिलने पर दो अलग-अलग दल बन गए। एक का नाम सार्वजनिक सभा था, और दूसरे का प्रजामंडल। अन्त में इन दोनों में एकता हुई पर वह वास्तविक न हो सकी।

महाराजा साहब को शासन अधिकार; 'पवाई' नियम— महाराजा गुलाबसिंह जी को शासन-अधिकार सन् १९२२ मे मिले। लोगों को बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। इस से राजनीतिक कार्य शिथिल कर दिया गया। परन्तु अब तो जनता के रहे-सहे अधिकार भी छीन लिए गए और इलाकेदारों और पवाईदारों के विरुद्ध 'पवाई-नियम' नाम का कानून बनाया गया। प्रजा को दबाने और लगान में बहुत वृद्धि करने की हिदायतें दी गईं। लाल नर्मदाप्रसाद सिंह ने इस का घोर विरोध किया, पर महाराजा साहब से कुछ मौखिक आश्वासन मिल जाने पर दूसरे आदमियों ने इनका साथ नहीं दिया, और इन्हें राज्य छोड़ कर प्रयाग चला जाना पड़ा। वहाँ से

इन्होंने समाचारपत्रों द्वारा अपना आन्दोलन जारी रखा और पवाई-नियमों को काला कानून के नाम से अपनी टिप्पणियों सहित प्रकाशित करके रीवा भेजा। तब लोगों को मालूम हुआ कि पवाई-नियम क्या हैं, और कितने कड़े हैं।

महाराजा साहब ने आश्वासन देने के बावजूद 'पवाई' नियम वापिस नहीं लिए। उन नियमों के आधार पर कई लाख की पवाइयाँ जप्त की गईं। लगान बहुत कड़ा रहा। जनता की हालत बिगड़ती गई; लाखों आदमियों को अपनी आजीविका से निराश होकर बाहर चले जाना पड़ा। शासन सम्बन्धी बड़े-बड़े पदों पर बाहरी आदमी नियत किए गए, जो राज्य की कठोर नीति का समर्थन करनेवाले थे। इस बीच में श्री विजयसिंह जी पथिक देशी राज्यों में दौरा करते हुए रीवा आए; उन्होंने यहाँ की दशा का अध्ययन किया। रीवा के अन्यायों का हाल सुनकर तत्कालीन कांग्रेस-सभापति श्री जवाहरलाल जी नेहरू को भी दरबार सेक्रेटरी से लिखापढ़ी करनी पड़ी। रीवा में लाल अवधेश प्रताप सिंह जी इलाकेदारों में प्रजा के हित की बातों का बराबर प्रचार करते रहे। इसके फल-स्वरूप रीवा राज्य में नवीन जीवन का संचार हुआ, युवक राजनीतिक कार्यों में भाग लेने लगे और खद्दर का विशेष प्रचार हुआ।

लिखित आवेदनपत्र—रीवा के इलाकेदारों ने, जो अपने ऊपर होने वाले अन्यायों के विरुद्ध व्यक्तिगत रूप से प्रार्थना करते-करते थक गए थे, अब सामूहिक रूप से विनय करने का निश्चय किया। भूखी प्रजा और लुटे हुए जागीरदार परस्पर मिल गए। अन्त में महाराजा साहब की सेवा में १४ अगस्त १९३० को लिखित राजनीतिक आवेदनपत्र दिया गया। इस राज्य में यह अपने ढंग का पहला कार्य था। इस आवेदनपत्र में सभी श्रेणियों के लोगों के दुख का

दूर करने की प्रार्थना की गई। इस पर प्रत्येक जाति व वर्ग के प्रमुख व्यक्ति और मुख्य-मुख्य इलाकेदार और पवाईदारों के हस्ताक्षर थे। इस में संक्षेप में निम्नलिखित माँगे पेश की गई थीं—१—पवाईदार, इलाकेदार और जमींदार आदि की शिकायतों को दूर करने के लिए और दरबार के साथ उनका सम्बन्ध निश्चित करने के लिए एक प्रतिनिधि सभा बैठाई जाय। २—हिन्दू कानून और मुसलिम कानून, ब्रिटिश भारत की तरह माना जाय। ३—जंगल के कानून में सुधार किया जाय। ४—म्युनिसपेलटी के सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित हों, और उन्हें यथेष्ट अधिकार दिया जाय। ५—शिक्षा की उन्नति की जाय। ६—सन् १६१३ से जो जायदाद नाजायज़ तौर पर जब्त की गई हैं, उनपर फिर से विचार किया जाय। ७—यथासम्भव रीवा के ही आदमी नौकर रखे जायँ। ८—नजराना आदि कर हटा दिए जायँ। ९—भाषण और संगठन को स्वतंत्रता हो। १०—जनता द्वारा चुनी हुई एक कौंसिल बनाई जाय, जिसकी सहायता से और राय से राज्य का कार्य संचालित किया जाय। इस आवेदनपत्र से राज्य भर में एक प्रकार की सनसनी फैल गई, सब लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित हो गया।

हाँ-हजूरों का विनती-पत्र—इस पर अधिकारियों ने कुछ हाँ-हजूरों को महाराज के पास लोगों के दस्तखत लेकर एक बिनती-पत्र भेजने को उकसाया, जिसमें लिखा गया था कि हमें किसी भी सुधार की आवश्यकता नहीं है; महाराजा साहब जो कुछ कर रहे हैं, वह बहुत ही अच्छा है। इस पर लोगों के दस्तखत लेने में बड़ी-बड़ी ज्यादतियाँ की गईं। किन्तु इससे लोगों का यह लाभ हुआ कि राज्य में राजनीतिक कार्य करनेवालों को कुछ स्वतंत्रता मिल गई और जनता में आवेदनपत्र की बातों का खूब प्रचार हुआ।

दमन का फल; जनता का संगठन—आन्दोलन को बदलते देखकर अधिकारियों ने दमन करना आरम्भ किया। राजकर्मचारियों में जो सहृदय और विवेकशील थे, उनसे यह न देखा गया। उन्होंने अपने उच्च और प्रतिष्ठित पदों से इस्तीफा देदिया। इन सज्जनों के नाम देखने से स्पष्ट हो जाता है कि रीवा के आन्दोलन से सभी विभागों के पदाधिकारियों की सहानुभूति थी, पुलिस और फौज तक के अधिकारियों ने इस्तीफे दिए थे। इलाकेदारों और जमीदारों ने यह अनुभव किया कि जब तक जनता हमारे साथ न होगी, राज्य में हमारी सुनवाई नहीं होगी। इस लिए वे जनता की ओर झुकते गए। रावसाहब चोरहट ने एक पाठशाला और एक औषधालय खोला। उन्होंने ६५ हजार और ठाकुर साहब नई गढ़ी ने ५० हजार रुपया जो रिआया के ऊपर बकाया था, उसे पहले ही माफ कर दिया था। अब कितने ही इलाकेदारों ने सन् १९२८-२९ तक की बकाया, और कुछ ने एक निश्चित रकम, माफ कर दी।

वैध राजसत्तात्मक शासन की योजना—यह बात विशेष महत्व की है कि इस समय भी राज्य में एक दल ऐसे सज्जनों का था, जिसका उद्देश्य कुछ शिकायतों को दूर कराना या एक-दो सुधार माँगना न होकर शासन-प्रणाली में ही परिवर्तन कराना था। इसका लक्ष्य था वैध राजसत्तात्मक शासन। इसका मत था कि महाराजा का पद और प्रतिष्ठा बनी रहे, पर शासन जनता के हाथ में हो; जनता के चुने हुए प्रतिनिधि ही इसके ऊपर शासन करें। इस दल ने इस विषय की ब्योरेवार बातों की योजना बना कर सर्वसाधारण के सामने रखी। उस योजना में बताया गया था कि प्रतिनिधि सभा का संगठन कैसा हो, निर्वाचकों की योग्यता क्या रहे, मंत्रिमंडल का संगठन और कार्यक्षेत्र कैसा हो; नागरिकों के क्या-क्या अधिकार हों; शिक्षा, कृषि,

मजदूरी, नौकरी आदि में क्या-क्या सुधार किए जायँ। बजट का भी एक नमूना दिया गया था। ऐसी बातों का लोक-शिक्षण और जन-जागृति में यथेष्ट महत्व होता है।

बघेलखंड कांग्रेस कमेटी*—रीवा उन थोड़े से राज्यों में से है, जहाँ सोलह-सत्तरह साल से कांग्रेस -कमेटी चली आ रही है। इसकी नियमानुसार स्थापना ३० मई १६३१ को हुई थी। यह जनता के कष्ट-निवारण और जन-जीवन को उन्नत करने का प्रयत्न करती रही है। इसका कार्यालय रीवा में रखा गया था। इसमें रीवा के अतिरिक्त, मध्यभारत की ३३ अन्य रियासतें भी सम्मिलित थीं। जुलाई में इसके मंत्रीजी गिरफ़्तार किए गये, और रीवा राज्य में कांग्रेस की ओर से आन्दोलन छिड़ गया।

सत्याग्रह आन्दोलन और आवेदनपत्र—बहुत से आदमी गिरफ़्तार किये गये, महिलाओं ने भी अच्छा भाग लिया। कई स्थानों पर १४४ धारा लगा दी गई। रीवा में ५०० आदमियों का जत्था सत्याग्रह करने के लिए आया। महाराजा पिछले दिनों बाहर गए हुए थे, शीघ्र ही रीवा आए। उन्होंने कांग्रेस-नेताओं से मिलकर सब सत्याग्रहियों को छोड़ दिया, और कांग्रेस के रचना-कार्य में बाधा न डालने का आश्वासन दिया। बघेलखंड जिला-कांग्रेस-कमेटी की १६ तहसीली शाखाएँ खोली गईं, जिनमें से १० रीवा राज्य में थी। मार्च १६३२ तक इनमें कांग्रेस के १२ हज़ार स्वयं-सेवक हो गए थे। ४ फरवरी १६३२ को जिला-कांग्रेस-कमेटी की ओर से महाराजा को राज्य में उत्तरदायी शासनपद्धति प्रचलित करने के लिए ब्योरेवार आवेदनपत्र

---

* 'बघेलखंड जिला कांग्रेस कमेटी का संक्षिप्त इतिहास' के आधार पर

दिया गया, जिनमें नागरिकों के मौलिक अधिकारों के प्रसंग में कहा गया—

प्रारम्भिक शिक्षा निश्शुल्क और अनिवार्य होगी। मालगुजारी और लगान में काफी कमी की जायगी, जिससे किसानों की हालत शीघ्र अच्छी हो जाय। कर्मचारियों के वेतन और खर्च में बहुत अधिक कमी की जायगी। किसी भी कर्मचारी का वेतन साधारणतया, विशेषज्ञ को छोड़कर, २०० रु० मासिक से अधिक न होगा। सब नागरिक कानून के सामने बराबर होंगे। सब को भाषण, सम्मेलन सम्बन्धी तथा धार्मिक स्वतन्त्रता होगी। आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार की जायगी कि न्याय और उचित रहनसहन का समावेश हो। 'कोठार' (सरकारी ज़मीन या खालसा) और पवाईदारों की प्रजा को समान अधिकार रहेगा।

२८ अप्रैल की शाम को मिस्टर कोरफील्ड का, जो उस समय रीवा राज्य की कौंसिल के वाइस-प्रेसीडेन्ट थे, पत्र मिला कि 'श्रीमान माँगों पर विचार कर रहे हैं।' परन्तु उसी दिन, रात के समय, कमेटी की कार्य-समिति के सब सदस्य तथा कुछ अन्य सज्जन गिरफ़्तार करके जेल भेज दिए गए। इस पर सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ हुआ। हजारों आदमियों ने लाठी-चार्ज और गिरफ़्तारियों का स्वागत करके अपनी वीरता का परिचय दिया। जेल भेजे जानेवालों की संख्या लगभग चार सौ थी। जेल में खूब सख्तियाँ की गई और मारपीट भी। दो आदमी तो वहीं ही मर गए, और पांच आदमी, जेल से आने के कुछ ही दिन बाद। म० गांधी द्वारा सामूहिक सत्याग्रह बन्द किये जाने पर यहाँ भी सत्याग्रह बन्द कर दिया गया। इस आन्दोलन में पचास हजार आदमियों के भाग लेने की बात तो स्वयं मिस्टर कोरफील्ड ने कही थी।

पत्र-पत्रिकाएँ; 'प्रकाश'—यहाँ से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं में हमें 'प्रकाश' के विषय में ही लिखना है। यह साप्ताहिक पत्र राज्य के आश्रय में पिछले सोलह वर्ष से निकल रहा है। इसके सम्पादक श्र०

केशवप्रसाद जी चतुर्वेदी बी० ए०, एल-एल० बी० ने पाठकों को यथा-सम्भव अच्छी सामग्री दी, और खासकर विजयदशमी के अवसर पर उपयोगी विशेषांक प्रकाशित किए। सन् १९४६ में जब ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों के सामने भावी विधान का प्रश्न प्रमुख था, इस पत्र का विधान-अंक प्रकाशित किया गया था।

विशेष वक्तव्य—महाराजा गुलाबसिंह जी ने जनता के नागरिक अधिकारों को अंशतः स्वीकार करके, शिक्षा-प्रचार तथा हरिजन-उत्थान की व्यवस्था करके और काश्तकारों को छूट तथा कुछ सुविधाएँ देकर अच्छे सुधार किए, परन्तु उन्होंने राजनीतिक विभाग से संघर्ष में आने तक उत्तरदायी शासन की ओर कोई कदम नहीं उठाया। पीछे, उन्होंने १६ अक्तूबर १९४५ को उत्तरदायी शासन की घोषणा की थी। पर उस समय के राजनीतिक विभाग को उनका यह कार्य सहन न हुआ। संघर्ष बढ़ता गया। अन्त में महाराजा को गद्दी से उतार कर युवराज मार्तंडसिंह को राजा बनाया गया। अगस्त १९४७ में महाराजा मार्तंडसिंह जी ने शासन-सुधारों की घोषणा की, उसका उद्देश्य उनकी देख-रेख में उत्तरदायी शासन स्थापित करना है। विधान बनाने वाली कमेटी का काम चल रहा है। परन्तु अभी शासन में जागीरदारों आदि का प्रतिगामी तत्व मौजूद है, और प्रजा-मंडल को यह विश्वास नहीं है कि सरकार वास्तव में अपने अधिकारों को हस्तान्तरित करना चाहती है। इससे संघर्ष की भावना बनी है। इसे मिटाने का उपाय यही है कि जन-जागृति और युग-संदेश का विचार करके अधिकारी अपना ढंग-ढंग सुधारें और जनता की उत्तर-दायी शासन की माँग जल्दी पूरी करें।

रतलाम

इस राज्य का क्षेत्रफल ६९३ वर्गमील, जनसंख्या सवा लाख से कुछ

अधिक और वार्षिक आय लगभग चौदह लाख रुपए है। राजवंश राठौर राजपूत हैं।

'उज्ज्वल' शासन; जनता की शिकायतें—सन् १९२० में इस राज्य का शासन, ब्रिटिश सरकार की दृष्टि में 'उज्ज्वल' माना गया, और राजा साहब को अपनी प्रजा पर प्रतिबन्धरहित फौजदारी अधिकार प्रदान किए गए थे। परन्तु जनता को इस उज्ज्वल शासन का अनुभव दूसरा ही है। उसे शासन के विरुद्ध बहुत सी शिकायतें रही हैं। सन् १९४० में अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद द्वारा, पंडित का द्वारानाथ जी काचरू की इस राज्य सम्बन्धी जाँच-रिपोर्ट प्रकाशित हुई, उसमें बताया गया था है कि—

(१) सन् १९०७-०८ के बाद तीस साल तक इस राज्य की रिपोर्ट प्रकाशित नहीं हुई।

(२) राज्य में कर-भार बहुत है।

(३) राजा साहब और उनके परिवार का खर्च बेहद है; शिक्षा, स्वास्थ्य आदि में रुपया बहुत कम खर्च किया जाता है।

(४) नागरिक अधिकारों का यहाँ अभाव सा ही है।

(५) ४६ फीसदी भूमि जागीरी इलाके में है; उसमें जागीरदारों का स्वेच्छाचार है।

प्रजामंडल की स्थापना, और दमन—यह कहा जा सकता है कि सन् १९३८ से पहले यहाँ वास्तव में कोई व्यापक राजनीतिक संगठन न था। कांग्रेस के हरिपुर अधिवेशन के बाद यहाँ प्रजामंडल की स्थापना की गई। उक्त वर्ष के अन्त तक उसके लगभग छः सौ सदस्य हो गए। जनवरी १९३९ में उसने जनता की माँगों की सूची तैयार की। वे मुख्य माँगें ये थीं— निर्वाचित व्यवस्थापक सभा,

निर्वाचित म्युनिसपल और पंचायत बोर्ड, अनिवार्य और निश्शुल्क शिक्षा, स्वास्थ्य और चिकित्सा की व्यवस्था, इत्यादि। प्रजामंडल का उद्देश्य महाराजा की छत्रछाया में उत्तरदायी शासन प्राप्त करना घोषित किया गया। मंडल का विस्तार उत्तरोत्तर बढ़ता रहा। राज्य के मज़दूरों के हितों की ओर ध्यान देने का भी प्रयत्न किया गया; मज़दूरों का नेतृत्व श्री० जुगनखाँ ने किया, जो (साम्यवादी) विचारों के मुसलिम सज्जन थे। इन्होंने पूरी लगन से सेवा की, इसी का यह फल हुआ कि प्रजामंडल में मज़दूर और मुसलमान काफी संख्या में सम्मिलित हो गए। राज्य के अधिकारियों को ऐसी बात कैसे सुहाती! श्री० जुगनखाँ को पाँच वर्ष के लिए राज्य से निकल जाने की आज्ञा दी गई, और जब उन्होंने इसकी अवहेलना की तो उन्हें छः माह की कैद की सजा दी गई। इस अवधि के बाद जब वे कारावास से बाहर आए तो षड्यंत्र का मामला तैयार था, जिसमें उन्हें भी शामिल कर दिया गया। जेल में बन्द रहनेवाला व्यक्ति राज्य के विरुद्ध षड्यंत्र कैसे रच सकता है, यह समझ से बाहर की बात है।

ता० १३ जून को सार्वजनिक जलूस निकाल कर अधिकारियों के सामने जनता की शिकायतें रखी जानेवाली थीं। परन्तु शासन ने जलूस पर प्रतिबन्ध लगा दिया। दफा १४४ जारी की गई और उसके अनुसार प्रजामंडल के प्रधान मंत्री श्री चाँदमल जी मेहता वकील और प्रचार-मंत्री बिहारी लाल जी व्यास पर नोटिस जारी किए गए। श्री सौभाग्यमल जी पोरवाल पर मुकदमा चला कर सजा दी गई। श्री० जुगनखाँ को रियासत की सीमा से निकल जाने की आज्ञा दी गई, और इसे न मानने पर उन्हें छः माह की सजा दी गई।

षड्यंत्र का मामला—प्रजामंडल के कार्यकर्त्ताओं की गिरफ़्तारियाँ, तलाशियाँ और मारपीट होने लगी। यह क्रम चलता रहा। पश्चात् ता० २८ मार्च १९४० को और उसके बाद जो भयंकर दमन

हुआ, उसका तिथिवार ब्योरा श्री० काचरू जी ने अपनी पुस्तक में दिया है, जिसका हिन्दी अनुवाद श्री० कन्हैयालाल जी वैद्य, प्रधान मंत्री मध्यभारत देशी राज्य लोक-परिषद, ने अपनी सम्मति सहित छपाया है। उसकी घटनाओं की चर्चा न करके हमें यही बताना है कि राज्य ने कई प्रमुख कार्यकर्त्ताओं पर कथित षड्यंत्र का मामला चलाया। अभियुक्तों के बचाव के लिए एक कमेटी बनाई गई, उसके संयोजक श्री० वैद्य जी थे। १६ महीने तक मुकदमा चलने के बाद, सेशन जज ने अभियुक्तों को सात वर्ष से दस-दस वर्ष की सख्त कैद तथा जुरमाने की सजा दी। अपील होने पर कुछ सजाएँ कम हो गईं। श्री० बिहारीलाल जी तो जेल में ही मर गए। श्री० गफूरखाँ जेल में स्वास्थ्यप्रद भोजन तथा अच्छा व्यवहार प्राप्त न करने के कारण बीमार पड़ गये। जब उनके कुछ विशेष समय जीवित रहने की आशा न रही तब उन्हें जेल से छोड़ा गया, पर इस दशा में भी उन्हें तुरन्त ही राज्य से बाहर निकल जाने की आज्ञा दी गई। वे उज्जैन ले जाए गए और वहाँ वे लगभग एक सप्ताह में मर गए। निदान, कठोर दंड देने और अभियुक्तों तथा कैदियों से दुर्व्यवहार करने में इस राज्य ने कुछ कमी नहीं की। अस्तु, सन् १६४२ में षड्यन्त्र केस के सभी बन्दी जेल से मुक्त किए गए। श्री जुम्गन खाँ और उनके भाई को रियासत से बाहर निकाल दिया गया।

महायुद्ध के समय भी संघर्ष—योरोपीय महायुद्ध का समय था। भारत-रक्षा कानून जारी था। सार्वजनिक प्रवृत्तियाँ कुचली जा चुकी थीं। तथापि दूषित राजतंत्र के विरुद्ध जनता का संग्राम जारी था। श्री कन्हैयालाल जी द्वारा लिखित और प्रकाशित 'रतलाम महाराजा के नाम खुली चिट्ठी' और श्री सत्यदेव जी विद्यालंकार द्वारा लिखित 'रतलाम किधर' पुस्तक से सामयिक स्थिति का अच्छा परिचय मिलता है। इन दोनों रचनाओं को रतलाम राज्य में रखना गैर-कानूनी

ठहराया गया। खुली चिट्ठी के सम्बन्ध में श्री वैद्य जी की, और किताब के सम्बन्ध मे श्री मेहता जी की गिरफ़ारी हुई, और मुकदमे चलाए गए। श्री वैद्य जी को गवालियर राज्य ने रतलाम के सुपुर्द करने से इनकार कर दिया। श्री० मेहता जी का मुकदमा सन् १९४५ के अन्त तक चला, अन्त में मेहता जी की विजय हुई।

न्याय-कार्य में शासन का हस्तक्षेप—शासन-सुधार के नाम पर, यहाँ कुछ समय से मध्यभारत एजन्सी के राज्यों की न्यायालय सम्बन्धी संयुक्त योजना चल रही थी। श्री० रतनलाल जी बी० ए०, एल-एल० बी० (रिटायर्ड जिला और सेशन जज, यू० पी०) चीफ जस्टिस थे। पर उन्हें न्याय-कार्य में स्वतंत्रता न रहने से उन्होंने सन् १९४२ में इस्तीफा दे दिया। इस के बाद शासन-कर्ताओं ने भूतपूर्व चीफ-जस्टिस के समय में बनाए हुए हाईकोर्ट एक्ट में बुनियादी परिवर्तन कर दिया; हाईकोर्ट पर से चीफ-जस्टिस का नियंत्रण हटा कर साधारण देखरेख करदी। वे न्याय-कार्य करनेवाले किसी अधिकारी को हटाने या रखने का काम, चीफ-जस्टिस की जानकारी के बिना ही, करने लगे।

दर्शकों को धोखा—अधिकारी बड़ी-बड़ी कागजी योजनाएँ बनाकर तथा कुछ नाममात्र की संस्थाएं स्थापित करके जनता को तथा बाहरी नेताओं को धोखा देते रहे। उन्होंने सर्वसाधारण की चिन्ता नहीं की। ऊँची श्रेणी के लोगों के लिए रोटरी क्लब, सज्जन क्लब और भारतीय संस्कृति सदन आदि संस्थाएँ स्थापित की गईं। परन्तु साधारण पढ़े-लिखे या गरीब आदमियों के लिए सार्वजनिक 'पार्क' (उद्यान) या पुस्तकालय आदि की व्यवस्था नहीं की गई। जनता की आवश्यकता की दृष्टि से यहाँ स्कूल और अस्पताल की बहुत कमी रही, उसे पूरा नहीं किया गया।

प्रजामंडल की पुनस्स्थापना—पहले लिखा जा चुका है कि राज्य ने प्रजामंडल के कार्यकर्ताओं के प्रति कैसा कठोर व्यवहार किया। आखिर, यह संस्था कुचल ही दी गई। सन् १९४१ से उसका दरवाजा बन्द हो गया। २६ जनवरी १९४६ को श्री चाँदमल जी मेहता वकील की अध्यक्षता में स्वतंत्रता-दिवस की सभा हुई। श्री मेहता जी ने प्रजामंडल का दरवाजा फिर से खोलने की घोषणा की और सर्वसाधारण से इस संस्था के मेम्बर बनने और इसके काम में सहयोग देने की अपील की। श्री मेहता जी रतलाम के पुराने और प्रसिद्ध कार्यकर्ता हैं। पहली बार भी प्रजामंडल की नींव आपके द्वारा डाली गई थी। आपने लोकसेवा के लिए तन मन धन से काम किया, दस साल की सजा प्राप्त की, बेड़ियाँ पहनी और जेल काटी। आपके प्रयत्न से 'प्रोग्रेसिव' (प्रगतिशील) प्रजामंडल की स्थापना हुई।

दो राजनीतिक संस्थाएँ—इस प्रकार रतलाम में दो राजनीतिक संस्थाएँ हो गईं—(१) प्रोग्रेसिव प्रजामंडल और (२) प्रजामंडल। 'प्रोग्रेसिव प्रजामंडल' में ऐसे सज्जन रहे जो जन्म से रतलाम राज्य के होकर यहाँ के नागरिक होने का दावा करते हैं, और जिन्होंने सन् १९२१ से अब तक राष्ट्रीय जीवन को अनेक कष्ट सह कर कायम रखा और जनता का प्रतिनिधित्व किया। इसके विपरीत, प्रजामंडल में प्रायः ऐसे लोग रहे, जो या तो सन् १९३९ के दमन और संघर्ष के समय इस संस्था से त्यागपत्र देकर अलग हो गए थे, या मार्च १९४६ तक सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र में ही नहीं आए थे। इन दोनों संस्थाओं में मनमोटाव और तनातनी रही। आखिर, मध्यभारत लोकपरिषद के मन्त्री श्री सैयद हामिदअली ने २४ सितम्बर १९४७ को यहाँ आकर इन्हें मिला दिया।

वैधानिक सुधार—भारतीय संघ के निर्माण (जून १९४७)

के साथ प्रायः रियासतों में शुभ परिवर्तन हुआ। रतलाम राज्य अपने अत्याचारों और बदइन्तजामी के लिए बहुत प्रसिद्ध रहा था, इसने भी सुधार की दिशा में कदम बढ़ाया। यहाँ सरकारी सदस्यों की एक कमेटी वैधानिक सुधारों के विषय में रिपोर्ट देने, तथा शासन विधान का मसौदा तैयार करने के लिए कायम की गई थी। इस कमेटी ने विधान उत्तरदायी शासन के आधार पर नहीं बनाया, इसलिए श्री चान्दमलजी मेहता ने उसकी रिपोर्ट पर हस्ताक्षर नहीं किये। अस्तु, राजा साहब ने १५ अगस्त को शासन-सुधारों की घोषणा की। आपने धारा सभा का चुनाव होने तक अपनी शासन-समिति (कौंसिल) में अन्तरिम काल के लिए दो मन्त्री रतलाम राज्य प्रजामंडल से माँगे हुए छः नामों में से नामजद कर दिए। इन दो मंत्रियों में से डा० देवीसिंह जी तो जनता के पुराने सेवक हैं, इन्होने काफी त्याग किया और कष्ट सहे हैं; पर दूसरे मंत्री श्री लेहरसिंह जी भाटी से जनता संतुष्ट नहीं है। यह आशङ्का है कि मिनिस्ट्री कहीं कार्यकर्ताओं में फूट का कारण न बन जाय; जब कुछ बँटता हो तो मित्रों से सावधान रहने की वैसी ही ज़रूरत होती है; जैसी कि लड़ाई के समय शत्रु से सावधान रहने की होती है। स्मरण रहे कि मिनिस्टरी का उपयोग उत्तरदायी शासन प्राप्ति के लिए साधन मात्र है, यदि कोई मन्त्री उसमें बाधक हो तो जनता को उसे अपने रास्ते से हटा देने के लिए तैयार रहना चाहिए।

विशेष वक्तव्य—अक्तूबर १९४७ में, विजयदशमी के अवसर पर राजा साहब न अपनी घोषणा में प्रजा को सम्बोधित करते हुए कहा है—'आपने अपना उद्देश्य बिना किसी संघर्ष के प्राप्त कर लिया है।' यदि यह बात सच होती तो अवश्य ही बड़े गर्व की होती। पर अफ़सोस! भारतवर्ष के सैकड़ों राजाओं में से दो-एक अपवादों को छोड़कर किसी ने जनता को ऐसा गर्व करने का अवसर नहीं दिया। रतलाम की जनता के संघर्ष को और खासकर सन् १९४० के कथित

षड्यंत्र के मामले को और उसमें दी हुई कठोर सजाओं को राजा साहब भले ही भूल जाएँ, इतिहास तो नहीं भुला सकता। फिर, जनता ने अभी अपना उद्देश्य (उत्तदायी शासन) कहाँ प्राप्त किया है ! स्वयं राजा साहब ने अपनी घोषणा में जनता से कहा है—'मुझे विश्वास है कि इन किए गए वैधानिक सुधारों के द्वारा आप अपने लक्ष्य जिम्मेदार हकूमत, जिसका मैं एक वैधानिक शासक रहूँगा, शीघ्र ही प्राप्त करेंगे।' रतलाम जैसे राज्य के शासक को इतनी सी बात के लिए भी धन्यवाद ! राज्य में हरिजनों को सार्वजनिक कुँओं, धर्मशाला, होटल, भोजनालय, तथा शिक्षा-संस्थाओं आदि के उपयोग में सवर्ण हिन्दुओं के समान सुविधाएँ देने की घोषणा की जाचुकी है। राजा साहब तथा अधिकारियों को चाहिए कि सद्भावना और शुद्ध हृदय से ऊपर लिखी बातों का पालन करें, और जनता को अधिकाधिक उन्नत होने का अवसर दें।

झाबुआ

इस राज्य का क्षेत्रफल १३३६ वर्गमील, जनसंख्या १ लाख ७८ हजार और वार्षिक आय ६ लाख रुपए है। अधिकांश निवासी भील भिलाले हैं। बहुत अर्से से इनका जबरदस्त शोषण होता रहा है। जनता ने अशिक्षित होते हुए भी अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने में महत्वपूर्ण भाग लिया है।

दीर्घकालीन कुशासन; राजा का निर्वासन—इस राज्य में आधी शताब्दी से अधिक समय से कुशासन और अत्याचार होते रहे हैं। राजा उदयसिंह जी, जो सन् १८९५ में गद्दी पर बैठे तथा जिन्होंने १८९८ में पूर्ण अधिकार प्राप्त किए, मध्यभारत के ही नहीं, भारतवर्ष भर के दुष्ट शासकों में प्रमुख थे। सन् १९०० में इनके कुछ

अधिकार कम किए गए थे, वे अधिकार इन्हें १६१८ में कुछ शर्तों पर वापिस मिले। सन् १६१८ में इनके अधिकार फिर कम किए गए, ये १६३१ में वापिस दिए गए। शासन की कुव्यवस्था ही रही। आखिर, १६३४ में राजा साहब राज्य से निकाल दिए गए। वे प्रायः इन्दौर में रहने लगे। ३६ वर्ष के शासन में ३० दीवान और लगभग इतने ही नायब दीवान और नाजिम बदले गए। राजा साहब ने नागरिक स्वतंत्रता के अपहरण, अपनी प्रजा से ही नहीं अपनी नौ-नौ रानियों के साथ दुर्व्यवहार, फिजूलखर्ची, ऐयाशी आदि के ऐसे-ऐसे कांड किए कि आखिर देशी राज्यों के मामलों में, जनहित के लिए प्रायः हस्तक्षेप न करनेवाली सर्वोच्च सत्ता को भी इस राज्य में दखल देना पड़ा* ; और, उसने एडमिनिस्टे्टर (प्रबन्धक) या दीवान नियुक्त करने की नीति छोड़ कर यहाँ के शासन के लिए सन् १६३४ में एक कौंसिल का निर्माण किया।

कौंसिल की कुव्यवस्था—कौंसिल ने अपने प्रारम्भ से ही नागरिक अधिकारों पर कुठाराघात किया। उसने वैध आन्दोलन, शान्तिपूर्ण हड़ताल, और शासन-नीति की आलोचना को आर्डिनेन्स द्वारा रोक दिया। 'व्यापारी-संघ, थादला' को नाजायज करार दिया, और उसमें सम्मिलित होना या सहायता देना जुर्म ठहराया। सार्वजनिक कार्य करनेवालों पर मुकदमे चलाए गए और उनकी जायदाद कुर्क की गयी। बेगार जारी कर दी गई। कौंसिल ने जनता पर कर-भार खूब बढ़ा कर पोलिटिकल विभाग में यह दिखाया कि नए प्रबन्ध में राज्य की आय बढ़ रही है। उसने जनता से प्राप्त धन का

---

* श्री० कन्हैयालाल जी वैद्य द्वारा प्रकाशित 'हिद्दर झाबुआ' नामक अंगरेजी पुस्तक के आधार पर।

सरकारी इमारतों आदि में मनमाना दुरुपयोग किया और शिक्षा, स्वास्थ्य आदि जनहितकारी कार्यों की ओर ध्यान नहीं दिया। राज्य में कुशासन पहले भी था, पर पहले पोलिटिकल एजंट से शिकायत करने से कुछ सुधार होने की आशा रहती थी, कौंसिल के समय में वह भी न रही। कुव्यवस्था घटने के बजाय प्रायः बढ़ती ही रही। यहाँ तक कि कितने ही आदमी उससे ऊबकर, इस राज्य को छोड़कर पास के ब्रिटिश भारत के स्थानों में चले गए।

गोलीकांड और अत्याचार—सन् १९४१ से यहाँ वह भीषण कांड हुआ, जिससे दूर-दूर के निवासियों का ध्यान इस राज्य की ओर आकर्षित हुआ। १७ जनवरी १९४१ को सैलाना और रतलाम राज्य के ७० भील अपने सिर पर तथा २७ गधों पर लगभग ६६ मन कपास लेकर बामनिया मंडी (होलकर राज्य) को जा रहे थे, जहाँ माल की आयात या निर्यात पर कोई टेक्स नहीं लगता था। एकाएक, रात के तीन बजे के लगभग, झाबुआ राज्य के जकात (आयात-निर्यात-कर) विभाग के सुपरिन्टेन्डेन्ट ने कान्स्टेबलों और अन्य कर्मचारियों सहित उन पर धावा बोल दिया; और, जब वे इन्दौर राज्य की सीमा से दो सौ कदम के फासले पर तथा रेलवे स्टेशन के पास ही थे, उन्हें घेर लिया और बिना सूचित किये उन पर गोली चला दी। तीन आदमी मरे, लगभग तीस बुरी तरह घायल हुए। दो स्त्रियों पर निर्लज्ज बलात्कार किया गया, और सब माल जब्त कर लिया गया। ऐसे संगीन मामले में महीनों तक कौंसिल ने कुछ कार्यवाही नहीं की। बाद में भी दोषी अधिकारियों को साधारण सजाएँ देकर कानून का उपहास ही किया गया।*

---

*इस विषय में विशेष जानने के लिए प्रो० द्वारकानाथ जी काचरू की 'झाबुआ ट्रेजडी' नामक अंगरेजी पुस्तक उपयोगी है।

ये घटनाएँ बहुत भयंकर थीं; इन्दौर, रतलाम, सैलाना, झाबुआ और सर्वोच्च सत्ता का इनसे सम्बन्ध था। इन्दौर राज्य ने अपने विदेश-विभाग द्वारा कुछ कार्यवाही की, परन्तु उसका वास्तविक ब्योरा ज्ञात नहीं हुआ। रतलाम और सैलाना ने अपनी प्रजा की कुछ चिन्ता नहीं की। झाबुआ ने अपने अधिकारियों के ऐसे घोर अपराध को यथेष्ठ ध्यान देने योग्य न समझा। और, सर्वोच्च सत्ता की ओर से भी हाईकोर्ट द्वारा खुली जाँच और न्याय कराने की आशा व्यर्थ ही रही।

नए राजा का दुर्व्यवहार—जून सन् १९४३ में पदभ्रष्ट राजा साहब मर गए। लगभग दो माह तक राजगद्दी खाली रही, पीछे वायसराय ने बारह वर्ष से गद्दी प्राप्त करने की कोशिश में लगे हुए, कौंसिल के प्रेसीडेंट दिलीपसिंह जी को राजा घोषित कर दिया। नए राजा ने पहले की कौंसिल के ढाँचे को कायम रख कर जनता को बदले की भावना से कष्ट देना शुरू किया। पुलिस, कस्टम और रेवन्यू विभागों के अत्याचार बढ़ते गए। भीलों का बुरी तरह शोषण किया गया। राजस्थान भील सेवा संघ, बामनिया, के लगातार प्रयत्नों से उनमें शिक्षा और संगठन का जो काम हुआ था, उसे रोक दिया गया; और उन्हें ईसाई बन जाने की सुविधाएँ दे दीं। सेवा सङ्घ के कर्मनिष्ठ और लोकप्रिय सञ्चालक श्री० बालेश्वरदयालु जी को, राजासाहब की सिफारिश पर इन्दौर पोलिटिकल एजन्सी ने इन्दौर राज्य से निर्वासित कर दिया। राज्य में अव्यवस्था, और रिश्वतखोरी ने खूब जोर पकड़ा।

लोकपरिषद का आन्दोलन—झाबुआ के जन-आन्दोलन का लम्बा इतिहास है। लोकपरिषद की स्थापना यहाँ सन् १९३० में हुई। वह अधिकारियों के अत्याचारों, संस्थाओं के दमन, जनता के शोषण और बेगार आदि का विरोध करती रही। १९३४ में उसने

राज्य के कुशासन को दूर करने का जबरदस्त आन्दोलन किया, और हुकूमत को झुका कर ही दम लिया। इस वर्ष राजा साहब के निर्वासित किए जाने की बात पहले कही जा चुकी है। पर पीछे कौंसिल शासन ने जनता की शक्ति का गला घोट देने में कोई कसर उठा न रखी। लोक-परिषद् ने सरकार से अनुरोध किया कि कौंसिल-शासन को हटा कर एक अनुभवी और सुयोग्य दीवान नियुक्त किया जाय। उसने अपने दोहद के अधिवेशन (सन् १६४१) में यह माँग की कि इस राज्य को शासन की दृष्टि से पास के अंगरेजी इलाके में मिला दिया जाय। सन् १६४३ में राजा उदयसिंह जी के मर जाने पर जब दिलीपसिंह जी को राजा बनाए जाने की बात मालूम हुई तो परिषद् ने इसका घोर विरोध किया, क्योंकि कौंसिल के प्रेसिडेन्ट की हैसियत से इनका जो व्यवहार हुआ था, उसके बारे में परिषद् को काफी कटु अनुभव हो चुका था।

सत्याग्रह और राजकीय घोषणा—राज्य को लोकपरिषद का कार्य असह्य था। इसलिए लोकपरिषद् को अपने चार अधिवेशन राज्य को सीमा से बाहर करने पड़े। इस तरह की बन्दिशों से ऊब कर उसने ३ मार्च १६४७ को सत्याग्रह का मार्ग अपनाया। आखिर, २७ नवम्बर को, झाबुआ नरेश को एक घोषणा करनी पड़ी, जिसके द्वारा उत्तरदायी शासन का आश्वासन दिया गया।

प्रतिक्रियावादी संस्था, और लोकपरिषद्—परन्तु इसके साथ ही राज्य की ओर से एक प्रतिक्रियावादी संस्था स्टेट-कांग्रेस का निर्माण किया गया और लोकपरिषद् के विरुद्ध कार्रवाई की जाने लगी। लोकपरिषद् ने राजा साहब से उनकी घोषणा के बारे में कुछ स्पष्टीकरण चाहा, पर राजा साहब ने उससे इन्कार कर दिया। लोक-परिषद् ने इस पृष्ठभूमि में, दिसम्बर १६४७ में, अपना पाँचवाँ

अधिवेशन करने का आयोजन किया। 'स्टेट-कांग्रेस' नामधारी संस्था ने इसे असफल करने के लिए इसी समय किसान सम्मेलन का आयोजन किया, जिसे राज्य को खूब सहानुभूति और प्रोत्साहन मिला।

राज्य द्वारा किसानों को विविध प्रलोभन दिए जाने पर भी स्टेट-कांग्रेस द्वारा आयोजित किसान-सम्मेलन में इने-गिने आदमी ही शामिल हुए। इसके विपरीत, यद्यपि पुलिस ने भीलों और किसानों आदि को लोकपरिषद के अधिवेशन में भाग लेने से भरसक रोका, तथापि यह अधिवेशन बारह हजार की उपस्थिति में खूब शान से हुआ। इसके मुख्य राजनीतिक प्रस्ताव में राजकीय घोषणा को थोथी बताते हुए ठुकरा दिया गया तथा कार्यसमिति को आदेश दिया गया कि आवश्यकता पड़ने पर वह संघर्ष का ऐलान कर सकती है। विविध भाषणों में सामंतशाही को चेतावनी देते हुए कहा गया कि अब वह समय दूर नहीं कि हम उत्तरदायी शासन हासिल कर लेंगे।

शासन-सुधार—आखिर, जनवरी १९४८ में झाबुआ राज्य लोकपरिषद और महाराजा में समझौता हो गया। महाराजा ने परिषद के तीन प्रमुख कार्यकर्ता सर्व श्री रघुनन्दनशरण शर्मा, कुसुमकान्त जैन तथा हजारीलाल जैन को लोकप्रिय मन्त्री नियुक्त करने, विधान-सभा स्थापित करने, श्री बालेश्वरदयालु और कन्हैयालाल वैद्य पर से राज्य-प्रवेश-निषेध के प्रतिबन्ध हटा लिए जाने तथा लगान और चराई कर में छूट दिए जाने की घोषणा सार्वजनिक तौर पर कर दी है। उन्होंने निकट भविष्य में और भी अधिक प्रगतिशील सुधार करने और लोकप्रिय मन्त्रियों को पूरा सहयोग देने का विश्वास भी दिलाया है। आशा है, उत्तरदायी शासन शीघ्र स्थापित किया जायगा।

———

बाइसवाँ अध्याय

संयुक्तप्रान्त के राज्य

[टेहरी-गढ़वाल और रामपुर]

संयुक्तप्रान्त में देशी राज्य तीन हैं—टेहरी-गढ़वाल, रामपुर और बनारस। ये एक-दूसरे से दूर-दूर हैं। हम इनमें से टेहरी-गढ़वाल और रामपुर की ही जन-जागृति के बारे में लिखते हैं।

टेहरी-गढ़वाल

इस राज्य का क्षेत्रफल ४५१६ वर्ग मील, जनसंख्या ४ लाख, और वार्षिक औसत आय २७ लाख रुपए है। यह संयुक्तप्रान्त के राज्यों में प्रमुख है। शासन की दृष्टि से यह शिमला पहाड़ी राज्यों में गिना जाता रहा है। इसकी जन-जागृति का इन राज्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।

अत्याचारों का विरोध ; सेवा-संघ की स्थापना—नागरिक अधिकारों की दृष्टि से यह राज्य बहुत-कुछ अपने पास के पहाड़ी राज्यों जैसा पिछड़ा हुआ है। इन राज्यों में होनेवाले अत्याचारों के विरुद्ध कुछ जोरदार आवाज सत्तरह अठारह वर्ष से ही उठाई जाने लगी है। सन् १९३० के नमक-सत्याग्रह के बाद दिल्ली में 'गढ़ देश हिमालय सेवा-संघ' की स्थापना की गई। इस प्रकार गढ़वाल के कार्यकर्त्ताओं का संगठन हुआ और पहाड़ी जनता की अन्य समस्याओं के साथ-साथ रियासती राजनीति को भी आगे बढ़ाया गया।

संगठन और प्रचार—मई १६३८ में जिला राजनीतिक सम्मेलन के अवसर पर भी सुमन जी ब्रिटिश गढ़वाल गए और उन्होंने श्री जवाहरलाल जी नेहरू और श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित को गढ़वाली जनता की दुर्दशा से अच्छी तरह परिचित कराया। सन् १६३६ में यहाँ जन-संगठन और प्रचार का खूब काम हुआ। सिरमौर में चौधरी शेरजंग तथा उनके साथियों के यत्न से प्रजामंडल की स्थापना हुई। जनवरी १६३६ में टेहरी राज्य की सीमा पर देहरादून में पं० गोविन्दराम भट्ट बेरिस्टर, और पं० तोताकृष्ण गैरिला आदि की कोशिशों से 'टिहरी राज्य प्रजामंडल' स्थापित हुआ। इनमें श्री० सुमन जी का यथेष्ट भाग रहा।

अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद से सम्बन्ध—फरवरी १६३६ में लुधियाना (पंजाब) में अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद का विराट अधिवेशन पंडित जवाहरलाल जी नेहरू के सभापतित्व में हुआ। इसमें टेहरी, शिमला, सिरमौर, मंडी, सुकेत आदि के भी प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। इस समय टेहरी तथा अन्य पहाड़ी रियासतों की समस्याओं को सार्वदेशिक रंगमंच पर उपस्थित किया गया। अभी तक लोकपरिषद की स्थायी समिति में पहाड़ी रियासतों का कोई प्रतिनिधि न था। अब उसके एक प्रस्ताव द्वारा श्री० सुमन जी उसके एक विशेष सदस्य मनोनीत हुए। इस समय से ये पर्वतीय प्रान्तों और खासकर पहाड़ी रियासतों के लिए अच्छी तरह जम कर कार्य करने लगे।

हिमालय रियासत प्रजामंडल—गढ़वाल (हिमालय) सेवा-सङ्घ के प्रयत्न और प्रभाव से पहाड़ी जनता की समस्याओं ने अखिल भारतीय महत्व ग्रहण कर लिया। उसने न सिर्फ दिल्ली को ही अपनी प्रवृत्तियों का केन्द्र रखा, बल्कि भारत की ग्रीष्म कालीन राजधानी

शिमला में भी बृहत् पर्वतीय सम्मेलन का महत्वपूर्ण अधिवेशन किया, जिसकी प्रेरणा व प्रस्ताव के फल-स्वरूप वहाँ पर पं० पद्मदेव धर्मेन्दु, ठा० भागमल, बा० काशीराम और ठा० हीरासिंह आदि उत्साही कार्यकर्ताओं ने शिमला की पहाड़ी रियासती प्रजा का एक संगठन 'हिमालय रियासत प्रजा मंडल' के नाम से कायम किया। इस संस्था के द्वारा पहाड़ी जनता में जागृति और चेतना लाने का प्रयत्न किया जाने लगा।

सङ्गठन और कार्यक्रम—अप्रेल १६३६ में हिमालय प्रान्तीय देशी राज्य प्रजा सम्मेलन किया गया। इसके स्वागताध्यक्ष पं० बद्रीदत्त पांडे एम० एल० ए० (केन्द्रीय), और सभापति श्री भूलाभाई देसाई थे। सम्मेलन बहुत सफलता से हुआ। टेहरी, सिरमौर, मंडी आदि विविध रियासतों के शासन के सम्बन्ध में कई प्रस्ताव होने के अतिरिक्त एक केन्द्रीय सङ्गठन समिति इसलिए बनाई गई कि वह हिमालय प्रान्तीय देशी राज्य लोकपरिषद के नियमित सङ्गठन की रूपरेखा तैयार करे तथा पहाड़ी राज्यों की स्थिति की जाँच करे। इस समिति के अध्यक्ष श्री० बद्रीदत्त पांडेय और संयोजक श्री० सुमन जी थे। इसने निश्चय किया कि एक केन्द्रीय सङ्गठन के अन्तर्गत तीन समूह हों :—(१) पञ्जाब की पहाड़ी रियासतों का समूह, सिरमौर, कलसिया, मंडी, सुकेत, बिलासपुर, चम्बा आदि। (२) शिमला की पहाड़ी रियासतों, का समूह—जुब्बल, बुशहर, बाघल, बघाट, नालागढ़, धामी, भज्जो कुनिहार कोटी आदि। (३) संयुक्तप्रान्त की प्रमुख पहाड़ी रियासत टेहरी-गढ़वाल, तथा कमाऊँ की छोटी-छोटी अन्य पहाड़ी रियासतें। ये तीनों समूह अपने-अपने क्षेत्र के लिए पृथक् सङ्गठन रखते हुए भी एक ही केन्द्रीय सङ्गठन की इकाई का काम दें। चाहे वे अपने दायरे में एक राज्य का प्रतिनिधित्व करते हों, या कई राज्य-समूहों का।

श्री० सुमन जी ने अपने वक्तव्य में कहा था कि हरेक राज्य में

प्रजामंडलों का सङ्गठन हमारा सबसे मुख्य कार्यक्रम होना चाहिए, उनके द्वारा रचनात्मक कार्य किया जाय, जैसे निरक्षरता-निवारण, प्रौढ़ शिक्षा, खादी प्रचार, हरिजनोद्धार, ग्रामोद्योग, ग्राम सुधार, स्वास्थ्य-सफाई और नशा-निषेध। हमारे लक्ष्य की सीढ़ियाँ हैं—(१) सङ्गठन, (२) सहयोग, (३ सुधार, (४) आन्दोलन (सत्याग्रह), और (५) सङ्घर्ष। इस प्रकार लक्ष्य तक पहुँचने के लिए सङ्घर्ष हमारा अन्तिम साधन है।

सर्वश्री पांडे और सुमनजी ने पहाड़ी राजाओं को अपने-अपने राज्यों में समयानुकूल शासन-सुधार, प्रजा के नागरिक अधिकार, तथा उत्तरदायी शासन की घोषणा करने को निमंत्रित किया, और बेगार, प्रभु-सेवा, भेंट, बर्दास्त, पौनटोटी टेक्स, स्त्रियों व घरू नौकरों पर लगाए हुए करों को, खुले-आम जगह-जगह पर शराब, सुल्फा, चरस, सिगरेट, दियासलाई, दूध और मिठाई आदि के ठेकों के चलन को, तथा राजपरिवार के किसी व्यक्ति के मरने पर प्रजा के सिर और मूछें मुँड़वाने, एवं जन्म-मरण तथा विवाह पर टेक्स लेने आदि के अनुचित रिवाजों को पूरे तौर से उठा देने का अनुरोध किया।

दमन नीति—कार्यकर्ताओं ने यथा-सम्भव समझौते की भावना रखी, पर शासकों ने इसका उत्तर सभाबन्दी आदि के कठोर नियम बनाकर और दमन करके ही दिया; मिसाल के तौर पर श्री सुमन जी पर 'सभा-रजिस्टरी-कानून' के अनुसार भाषण देने और सभाओं का संगठन करने पर पाबन्दी लगाई गई। सुमन जी अपने सेवा-कार्य में डटे रहे। राज्य ने इन्हें ग्रामसुधार-अफसर बनने और कताई-बुनाई का काम करने का लालच दिया। पर ये उसमें न फँसे। अन्त में दरबार ने इन्हें राज्य से निकाले जाने की आज्ञा दी। ये तीन बार राज्य से निकाले गए, पर हर बार इन्होंने राज्य में पहुँच कर अपना काम

शुरू कर दिया। आखिर, अधिकारियों ने इन्हें राज्य में रहने और प्रजामंडल की रजिस्टरी कराने की अनुमति दे दी।

इसी समय अगस्त १९४२ का आन्दोलन आ गया। श्री सुमन जी लोकपरिषद् की स्थायी समिति की बम्बई की बैठक में भाग लेकर टेहरी लौट रहे थे कि २६ अगस्त को देवप्रयाग में ही स्टेट-पुलिस द्वारा गिरफ़्तार कर लिए गए और नौ दिन तक रोके जा कर ब्रिटिश पुलिस के द्वारा देहरादून जेल में पहुँचा दिए गए। इसी समय लगभग २० शिक्षित युवकों को बिना मुकदमा चलाए टेहरी जेल में ठूँस दिया गया, और कितने ही आदमियों को संदेह पर उनके गाँवों में नजरबन्द कर दिया गया।

श्री सुमन जी का बलिदान—लगभग सवा वर्ष की नजरबन्दी के बाद नवम्बर १९४३ में श्री सुमन जी आगरा सेंट्रल जेल से रिहा हुए। ये अपनी कर्तव्य-भूमि की ओर चल दिए। २८ दिसम्बर को अपने गाँव से टेहरी जाते हुए ये पुलिस द्वारा रोक लिए गए और ३० दिसम्बर को इन्हें टेहरी जेल में बन्द कर दिया गया। जेल में कुछ सप्ताह रखने के बाद इन पर राजद्रोह का एक झूठा मुकदमा चलाया गया और गढ़े हुए गवाहों के बयानों के आधार पर इन्हें दो वर्ष का कठोर कारावास और २००) जुर्माने की सजा दी गई। जेल में इन्हें तरह-तरह के कष्ट दिए गए, इससे इन्हें कई बार उपवास करना पड़ा। पर अधिकारियों का ढङ्ग न बदला। आखिर इन्होंने आमरण अनशन आरम्भ कर दिया, जो स्वयं टेहरी दरबार की विज्ञप्ति के अनुसार ३ मई से ११ जुलाई १९४४ तक अर्थात् ६९ दिन रहा। श्री सुमन जी ने २५ जुलाई १९४४ को, सिर्फ २८ वर्ष की आयु में, जेल में ही अपना शरीर छोड़ दिया।

चारों तरफ से इस मामले की जाँच की माँग की गई। परन्तु राजा साहब ने कुछ ध्यान न दिया। अ० भा० दे० रा० लोकपरिषद ने

एक जाँच-कमेटी नियुक्त की, उसने श्री० सुमन जी की मृत्यु के लिए राजा को ही दोषी ठहराया। वायसराय से इस विषय में जाँच करके राजा को दंड देने के लिए निवेदन किया गया, पर उसने कोई कार्रवाई नहीं की। इस पर जनता में बहुत क्षोभ पैदा हुआ, और देश में 'देव-सुमन दिवस' मनाया गया। २६मई १९४६ को वायसराय ने एक वक्तव्य निकाला कि महाराजा नरेन्द्रशाह ने राजगद्दी से इस्तीफा दे दिया।

अधिकारियों का आत्म समर्पण—नए राजा ने उत्तरदायी शासन स्थापित करने और विधान सभा बनाने की घोषणा की। तीन मंत्रियों का अस्थायी मंत्रिमंडल भी बनाया गया। परन्तु स्थिति संतोष-प्रद नहीं हुई। सन् १९४७ के अन्त में टेहरी राज्य प्रजामंडल ने, राज्य में शीघ्र ही उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए, जोरदार सत्याग्रह चलाया। उसके प्रधान, उपप्रधान, और मन्त्री आदि गिरफ़ार किए गए। परन्तु राज्य के प्रमुख नगर कीर्तिनगर में अधिकारियों ने जनता के सामने आत्म-समर्पण कर दिया, और यहाँ का शासन चलाने के लिए पंचायत कायम हो गई। सरकारी मजिस्ट्रेट, पुलिस विभाग के अधिकारी व चुंगी के कर्मचारियों ने कीर्तिनगर छोड़ दिया। इस नगर के चारों ओर डांगचौरा और चौरास आदि इलाकों में पहले ही पचायतें कायम हो चुकी थीं। यह जन-जागृति का ही प्रताप था।

राज्य का शासन संयुक्तप्रान्तीय सरकार के हाथ में—कीर्तिनगर में सेना ने सत्याग्रहियों पर गोली चलाई। इससे लोकनेता श्री नगेन्द्रदत्त सकलानी और मोलासिंह जी मर गए, और कितने ही कार्यकर्ता जख्मी हुए। इस पर उत्तेजित भीड़ ने अधिकारियों को कैद कर लिया और स्थानीय अदालतों पर अपना अधिकार जमा लिया। सेना की एक कम्पनी प्रजामंडल में मिल गई। जिला कांग्रेस कमेटी ने

भारत-सरकार के रियासती विभाग से अनुरोध किया कि वह राज-प्रबन्ध अपने हाथ में लेले। पुलिस के इन्स्पेक्टर जनरल की 'गिरफ़्तारी' और घोर अराजकता की परिस्थिति की सूचना पा कर रियासती विभाग ने संयुक्तप्रान्त की सरकार को इस राज्य का प्रबन्ध अस्थायी रूप से अपने हाथ में लेने का आदेश दे दिया। भावी शासन व्यवस्था विचाराधीन है।

रामपुर

इस राज्य का क्षेत्रफल ८९२ वर्गमील, जनसंख्या पाँच लाख और औसत वार्षिक आय ८८ लाख रुपए हैं। वह राज्य इस बात की यादगार है कि इस प्रदेश में कभी रुहेलों का प्रभुत्व था। शासक का पद नवाब है। इस राज्य का अरबी कालिज प्रसिद्ध है; इसमें पञ्जाब, बंगाल और अफ़गानिस्तान तक के विद्यार्थी आते हैं। यहाँ अरबी, फारसी और उर्दू की तथा इसलाम धर्म की उच्च शिक्षा दी जाती है। यहाँ के पुस्तकालय में बहुत से दुर्लभ हस्तलिखित ग्रन्थों की प्रतियाँ हैं।

'मुस्ताजिरी' प्रथा का अन्त—जनता की नागरिक और आर्थिक स्थिति के विचार से यह राज्य बहुत पिछड़ा हुआ रहा है। सामयिक परिस्थितियों से मजबूर होकर ही यहाँ कुछ परिवर्तन हुए हैं।* पहला उल्लेखनीय सुधार सन् १९३२ में 'मुस्ताजिरी' प्रथा का अन्त होना है। यह प्रथा यहाँ सन् १८४३ ई० में शुरू की गई थी, और बंगाल में वारेनहेस्टिंग्ज द्वारा की गई राज्य-कर-व्यवस्था जैसी

---

*इस राज्य की प्रारम्भिक बातें विशेषतया 'लोकवाणी' के १८ नवम्बर १९४५ के अंक में प्रकाशित श्री 'श्रमिक' जी के लेख से ली गई हैं।

थी। गाँव दस, बारह, पन्द्रह वर्ष के लिए ठेके पर दे दिए जाते थे। राज्य-कर इक्ट्ठा करनेवाले इन ठेकेदारों को पन्द्रह प्रतिशत तक कमीशन मिलता था। इसके अतिरिक्त जो अनुचित लाभ 'मुस्ताजिर' लोग उठाते थे, उसका कोई ठिकाना नहीं था। उस वर्ष की सरकारी रिपोर्ट में बतलाया गया था कि राज्य की ओर से निर्धारित भूमिकर की औसत १।।।-) फी एकड़ होते हुए भी मुस्ताजिर लोग २५) फी एकड़ तक वसूल करते थे। इस में कोई शक नहीं कि मुस्ताजिरी प्रथा के बन्द होने के बाद से किसानों की अवस्था में काफी सुधार हुआ।

यह स्पष्ट ही है कि इस प्रथा के उठ जाने से मुस्ताजिरों के स्वार्थ को बहुत धक्का पहुँचा। वे इसे सहन न कर सके। इन्हीं दिनों बहुत से राजकर्मचारी अनावश्यक होने के कारण नौकरी से हटाए गए थे। मुस्ताजिरों ने इन अलग किए गए कर्मचारियों का सङ्गठन करके एक आन्दोलन खड़ा कर दिया जिसका आधार बेकारी थी। राज्य के द्वारा उद्योग धंधों की ओर ध्यान दिए जाने पर इसका अन्त हो गया।

साम्प्रदायिक आन्दोलन—सन् १९३६ में श्री० सौलतअली खां आदि कुछ लोगों ने 'तबलीग' आन्दोलन शुरू किया। राज्य के लगभग पांच हजार चमारों को मुसलमान बनाने की कोशिश की गई। परन्तु हिन्दू समय पर सावधान हो गए और उन्होंने 'प्रेम सभा' का सङ्गठन किया, जो राज्य भर के हिन्दुओं की मुख्य संस्था है। इससे तबलीग आन्दोलन विफल हो गया। इसके बाद श्री सौलतअली खां ने वैधानिक शासन की माँग की। परन्तु इस माँग की व्याख्या में कहा गया कि राज्य की नौकरियों में और धारा सभा में अस्सी प्रतिशत जगह मुसलमानों को मिले। विदित हो कि राज्य में हिन्दुओं की संख्या ५५ फी सैकड़ा है। यह आन्दोलन भी विफल रहा। राज्य की ओर से एक दिखावटी धारा-सभा स्थापित की गई, जिसमें पदाधिकारियों की भरमार थी।

दो वर्ष बाद १६३६ में एक छोटी सी साम्प्रदायिक घटना को लेकर दूसरा आन्दोलन हुआ। एक पुलिस अधिकारी कुछ अपराधियों की जाँच के लिए मसजिद में घुसा था, इसी पर आन्दोलन खड़ा हो गया, नौ दिन तक बराबर हड़ताल रही। इस आन्दोलन के नेताओं ने भी वैधानिक शासन की माँग की, किन्तु वह ठुकरा दी गई।

'शासन-सुधार'—सम्प्रदायवादी मुसलमानों को शान्त करने के लिए राज्य ने सन् १६४० में नई धारा-सभा बनाई। इसमें गैर-सरकारी सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई, परन्तु उनमें हिन्दुओं का अनुपात ५० प्रतिशत से गिरा कर ३३ प्रतिशत कर दिया गया। सारी सभा में हिन्दुओं का अनुपात अब १५ प्रतिशत रह गया। कुछ सीधे चुनाव का प्रारम्भ किया गया, किन्तु वह केवल देहाती जगहों के लिए था, जिससे प्रगतिशील शिक्षित व्यक्ति दबे रह सकें। जो हिन्दू नामजद किए गए, वे 'जी-हुजूर' थे, जिनका राज्य के लोक-जीवन में कोई स्थान नहीं था।

शोचनीय दशा—ऊपर यहाँ के कुछ आन्दोलनों के बारे में लिखा गया है। उनमें भाग लेनेवाले प्रमुख व्यक्तियों का दृष्टिकोण साम्प्रदायिक ही रहा। नेता कहे जानेवाले हिन्दू तथा मुसलमान अपने-अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति के प्रयत्न में फँसे रहे हैं, उन्होंने राज्य की लोकविरोधी और साम्प्रदायिक चालों के विरुद्ध जोरदार आवाज नहीं उठाई। पिछले वर्षों में यहाँ 'तामीर वतन' नाम का आन्दोलन हुआ। इसके नेताओं ने भी वैधानिक शासन की माँग साम्प्रदायिक रूप में ही की। इन्हें यही चिन्ता सताती रही कि राज्य के अधिकारियों में शिया-मुसलमानों का अनुपात बढ़ता जा रहा है और सुन्नी अधिकारी निकाले जा रहे हैं।

अधिकारी प्रायः यह गर्व करते हैं और इस आशय की सूचनाएँ प्रकाशित करते रहे कि 'राज्य में स्वास्थ्य और चिकित्सा विभाग की

अच्छी व्यवस्था है। कृषि और मालगुजारी सम्बन्धी सुधार किए गए हैं। बेगार बन्द कर दी गई है, और उद्योग धंधों की ओर ध्यान दिया जा रहा है।' परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि यहाँ हिन्दुओं की (जो कुल जनसंख्या के आधे से अधिक हैं) शिक्षा तथा नागरिक अधिकारों की उपेक्षा की गई है। शासकों का किसी एक सम्प्रदाय को दूसरे के विरुद्ध खड़ा करके जनता की राजनीतिक प्रगति को रोकना खुद उनके लिए भी हितकर नहीं होता।

विशेष वक्तव्य; शासन-सुधारों की घोषणा—आखिर, नवाब साहब ने १ जनवरी १६४८ को वैधानिक सुधारों की घोषणा कर दी। धारा सभा के चालीस सदस्यों में से तीन-चौथाई निर्वाचित और एक-चौथाई नामजद होंगे। स्त्रियों को मत देने तथा मेम्बरी के लिए खड़े होने का अधिकार होगा। रियासत भर में संयुक्त निर्वाचन प्रणाली से चुनाव होंगे पर बहुसंख्यक जातियों के अनुपात का ध्यान रखा जायगा। देहाती क्षेत्र में चुनाव बालिग मताधिकार के अनुसार होगा और शहर रामपुर के लिए संयुक्तप्रान्त में चुनाव के समय उपयोग में लाई गई प्रणाली काम में लाई जायेगी। प्रतिनिधियों को अपना अध्यक्ष चुनने का अधिकार होगा। चुनाव हो चुकने पर जब असेम्बली अपना कार्य आरंभ करने की स्थिति में होगी तब अन्तःकालीन सरकार बनादी जायेगी, जिसमें प्रधान मंत्री के अतिरिक्त पाँच मन्त्रियों से अधिक नहीं होंगे और इनमें चार मन्त्री असेम्बली के प्रतिनिधियों में से चुने हुए होंगे।

इन सुधारों सम्बन्धी ब्योरेवार बातें तथा चुनाव आदि की कार्य-पद्धति बहुत असन्तोषप्रद हैं। आवश्यकता है कि अधिकारी अब लोकनायकों को वास्तविक सत्ता सौंपने के लिए शुद्ध हृदय से काम करें, और नागरिक भी साम्प्रदायिक भावनाओं से ऊपर उठ कर अपने उत्तरदायित्व को निभावें।

———

तेइसवाँ अध्याय

हैदराबाद

इस राज्य का क्षेत्रफल ८२,६९८ वर्गमील, आबादी एक करोड़ बासठ लाख, और वार्षिक आय सतरह करोड़ रुपए है। यहाँ की बयासी प्रतिशत जनता हिन्दू है। राजवंश मुसलमान है। शासक 'निजाम' कहलाता है। यह रियासत आबादी के लिहाज से भारतवर्ष की रियासतों में सबसे बड़ी है। यह सबसे अधिक धनवान भी है। मोटे हिसाब से इसकी आबादी तीन हिस्सों में बटी हुई है—आन्ध्र, महाराष्ट्र और कर्नाटक। ये तीनों हिस्से भाषा और संस्कृति के लिहाज से एक दूसरे से अलग-अलग हैं, परन्तु पास के प्रान्तों से इनका गहरा और स्वाभाविक सम्बन्ध है। यहाँ की राजभाषा, इसके तीनों हिस्सों की भाषाओं से भिन्न, उर्दू है, जिसके जाननेवाले अधिकतर मुसलमान हैं। इस लिए तथा निजाम की साम्पदायिक भावना के कारण यहाँ अधिकांश आबादी हिन्दुओं की होते हुए भी मुसलिम अहलकारों का जोर है।

जागृति का सूत्रपात और दमन—हैदराबाद में जागृति का कार्य खासकर पहले योरपीय महायुद्ध के बाद आरम्भ हुआ। भारतवर्ष के प्रान्तों में 'मांटफोर्ड' सुधार (सन् १९१९) के कारण जनता राजनीतिक विषयों की ओर अधिक ध्यान देने लगी थी। इसके अलावा खिलाफत आन्दोलन (१९२०) में, म० गांधी की प्रेरणा से हिन्दू मुसलमान मिल कर काम कर रहे थे। हैदराबाद में भी हिन्दू मुसलमान एक-दूसरे के अधिक नजदीक आए। ६ मार्च १९२० को १५ हजार आदमियों की विराट सभा हुई; जोशीले भाषण हुए। १९ मार्च को

शहर में हड़ताल मनाई गई। २० मार्च की सभा में २५ हजार से अधिक आदमियों ने भाग लिया। उसमें तथा उसके बाद हिन्दू मुसलमानों में भाईचारा रखने के विचार प्रकट किए गए। राज्य को जन-जागृति की ये बातें पसन्द न आईं। ७ अप्रेल से सार्वजनिक सभाओं पर प्रतिबन्ध लगा दिए गए थे, १७ मई को सरकारी फरमान द्वारा खिलाफत सम्बन्धी सभाएँ बन्द कर दी गईं। फरमान की अवहेलना करनेवाले पाँच युवक नजरबन्द, और पाँच, जो बाहर के थे, राज्य-बहिष्कृत कर दिए गए। सरकारी दमन के कारण प्रमुख हिन्दू मुसलिम कार्यकर्ताओं में से कुछ सार्वजनिक जीवन से ही हाथ धो बैठे, पर शेष ने हिम्मत न हारी।

हैदराबाद शासन-सुधार सभा—सन् १९१९ में यहाँ सर अली इमाम के सभापतित्व में प्रबन्धकारिणी सभा स्थापित हुई, और १९२१ में राय बालमुकन्द जी ने व्यवस्थापक परिषद के विस्तार और सुधार के लिए आवश्यक सामग्री संग्रह करके अपनी रिपोर्ट उपस्थित की। पर उस पर १९३८ तक प्रबन्धकारिणी ने कोई अमली कार्रवाई नहीं की। इस बीच में लोगों ने 'हैदराबाद शासन सुधार सभा' नाम की राजनीतिक संस्था कायम की, और जून १९२१ में 'हैदराबाद स्टेट पोलिटिकल कान्फ्रेन्स' करने का निश्चय किया। पर अधिकारियों ने राजनीतिक सभाओं को रोकनेवाला आर्डिनेन्स जारी कर दिया। राज्य में राजनीतिक सभा करने के कई प्रयत्न असफल रहे। आखिर, कानफ्रेन्स का अधिवेशन २७ अगस्त १९११ को आकोला (बरार) में किया गया। शासन-सुधार सभा को काम करने का कोई अवसर न रहने से उसने कान्फ्रेन्स के बाद अपना कार्य प्रायः बन्द कर दिया। इस सभा ने १९२४ में शासन-सुधार की योजना बनाई थी, और १९२८ में बटलर कमेटी की सेवा में उपस्थित

किए जानेवाले मेमोरेंडा में, देशी राज्यों में उत्तरदायी शासन स्थापित किए जाने की माँग की थी।

निजाम प्रजा संघ—फरवरी १६३५ में हिन्दुओं और मुसलमानों ने राजनीतिक संगठन का दूसरा प्रयत्न किया। निजाम प्रजा संघ (निजाम सब्जेक्ट्स लीग) नाम की संस्था बनाई गई, इस के सभापति नवाब निजामत जंग बहादुर, भूतपूर्व सदस्य प्रबन्धकारिणी सभा, थे। इस के उद्देश्य ये थे राज्य में उत्तरदायी शासन की स्थापना, सार्वभौम सत्ता द्वारा राज्य के आन्तरिक विषयों में अहस्तक्षेप, और राज्य की भाषा हिन्दुस्तानी स्वीकार किया जाना। राज्य ने आग्रह किया कि ये उद्देश्य हटा दिए जाएं। इस पर प्रजा संघ ने १५ जनवरी १६३७ को ये उद्देश्य हटा दिए। परन्तु इस का परिणाम यह हुआ कि सभासद निराश होगए और संस्था ठप्प होगई।

हैदराबाद स्टेट-कांग्रेस—जनवरी १६३८ के अन्त में हैदराबाद जनता सभा ('पोपलर्स कन्वेंशन') ने शासन सुधारों की योजना बनाई जिसमें आसफजाही वंश की छत्रछाया में उत्तरदायी शासन प्राप्त करने का उद्देश्य रखा गया। आंध्र कान्फ्रेन्स का छठा अधिवेशन दिसम्बर १६३७ में निजामाबाद में हुआ था, उसने तथा और भी कई संस्थाओं ने उत्तरदायी शासन की ही माँग की अब एक ऐसी राजनीतिक और गैर-साम्प्रदायिक संस्था की अधिकाधिक आवश्यकता मालूम होने लगी, जिसका निश्चित उद्देश्य उत्तरदायी शासन हो, और जो राज्य भरमें इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रचार-कार्य करे कई सभाओं में विचार-विनिमय होकर जुलाई १६३८ में अस्थायी रूप से हैदराबाद स्टेट-कांग्रेस की स्थापना की गई। एक महीने में हैदराबाद तथा सिकन्दराबाद और दूसरे स्थानों

में १२०० से अधिक प्रारम्भिक सदस्य बनगए। ६ सितम्बर १६३८ को इस की साधारण सभा करने, पदाधिकारी चुनने और नियमावली स्वीकार करने का निश्चय किया गया।

सत्याग्रह—परन्तु उससे पहले ही, ७ सितम्बर को स्टेट-कांग्रेस पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया, इसकी सभा के लिए मनाही कर दी गयी। इस पर सत्याग्रह हुआ। स्टेट-कांग्रेस स्थापित करके उसकी कार्य-समिति बनाई गई। कार्यसमिति ने स्टेट-कांग्रेस की स्थापना की घोषणा २४ अक्तूबर को की, तभी उसके सदस्यों की गिरफ़ारी और सजाएँ होगईं। इसी समय हिन्दू महासभा के जलूस पर प्रतिबन्ध लगाया जाने से उसके नागरिक स्वतंत्रता-संघ ने सत्याग्रह किया। आर्यसमाज ने अपनी धार्मिक क्रियाओं में बाधा पड़ते देख कर सत्याग्रह किया। वातावरण साम्प्रदायिक होने की आशंका से म० गाँधी ने स्टेट कांग्रेस को सत्याग्रह स्थागित करने का आदेश किया, और उसके द्वारा २३ दिसम्बर को सत्याग्रह बन्द किए जाने पर इसके कार्यकर्ता १० अप्रेल १६३६ को बिना शर्त रिहा कर दिए गए। हिन्दू नागरिक स्वतंत्रता संघ और आर्यसमाज के सत्याग्रह जारी रहे।

१६ जुलाई १६३६ को शासन-सुधारों की घोषणा के साथ यह स्प कर किया गया कि भविष्य में आम तौर से सभा करने के लिए पहले से मंजूरी लेने की जरूरत न होगी, सिर्फ सूचना देना काफी होगा। समाचारपत्रों के प्रकाशन को प्रोत्साहन देने के नियम बनाए जाने का भी आश्वासन दिया गया। इस घोषणा के बाद, अगस्त के पहले सप्ताह में हिन्दू महासभा और आर्यसमाज ने भी सत्याग्रह बन्द कर दिया। कुल मिलाकर दस-बारह हजार आदमी कैद हुए थे, वे सब बिना शर्त रिहा किए गए। यहाँ यह जिक्र करना जरूरी है कि आर्य-समाज के आन्दोलन में अधिकांश सत्याग्रही, उत्तरी भारत के थे,

इसलिए राज्य की जनता को विशेष बल न मिला। जनता की नागरिक प्रगति अधिकांश में स्वयं अपने पुरुषार्थ से होती है।

शासन नीति—हैदराबाद में अधिकारी वर्ग प्रधान शासक की स्थिति इस प्रकार मानता है—'शासक (निजाम) व्यक्तिगत रूप से जनता का प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए प्रजा के साथ उसका सम्बन्ध कुछ समय के लिए चुने हुए प्रतिनिधियों की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक और स्थायी है। वह राज्य का प्रधान अधिकारी भी है और जनता की प्रभुता का प्रतीक है।' इसका आशय यह है कि प्रधान शासक ही समस्त सत्ता का स्रोत है, और वह शासन-व्यवस्था को बनाने और बिगाड़ने का पूर्ण अधिकारी है। जनता का इसमें कोई स्थान नहीं।

साम्प्रदायिक राजनीति—इस राज्य की एक प्रमुख समस्या यहाँ की साम्प्रदायिक राजनीति है। राज्य ने खुद साम्प्रदायिक मनोवृत्ति का परिचय दिया है तथा इसे प्रोत्साहित किया है। अप्रेल १६०६ और पीछे जुलाई १६३६ के सरकारी फरमानों में हैदराबाद को 'मुसलिम राज्य' कहा गया है। राज्य के प्रधान मन्त्री स्व० सर अकबर हैदरी ने अपनी अर्जदास्त (१५ जुलाई १६३६) में साफ कहा था कि "इस राज्य में मुसलमानों की ऐतिहासिक स्थिति और राजनीतिक दर्जे के कारण इस जाति का महत्व ऐसा स्पष्ट है कि व्यवस्थापक सभा में इसको अल्पसंख्यक की स्थिति नहीं दी जा सकती। प्रत्येक व्यक्ति को यह बात मान्य करनी चाहिए कि मुसलमानों की यहाँ ऐसी स्थिति है कि उसके कारण इस राज्य के राजनीतिक तथा नैतिक शक्ति बढ़ाने में उन्होंने जो योग दिया है, वह कभी भी हिन्दुओं से कम नहीं रहा है। निर्वाचित और नामजद सदस्यों में हिन्दुओं तथा मुसलमानों की संख्या बराबर रहे।"

इस राज्य की बहुत बलवान और उग्र सम्प्रदायवादी संस्था 'मजलिस इत्तहादुल मुसलमीन' है। यह ज़ोर-शोर से इस बात का प्रचार करती रही है कि 'हम (मुसलमान) दक्खिन के बादशाह हैं, दक्खिन का सिंहासन और मुकुट हमारे राजनीतिक और सांस्कृतिक शासनाधिकार के चिन्ह हैं। हमारे निजाम साहब हमारे राज्य की रूह (आत्मा) हैं, और हम उनके राज्य के शरीर हैं। उसके अन्त के साथ हमारा अन्त है। यदि हम नहीं हैं तो वह भी नहीं है।' मजलिस का यह स्पष्ट मत रहा है कि राज्य-शासन में, एवं सरकारी नौकरी में, मुसलमानों की प्रधानता रहनी चाहिए। इस संस्था का निजाम पर बेढब प्रभाव है। असल में हैदराबाद में इसी का राज है।

स्टेट-कांग्रेस के प्रति दुर्भावना—राज्य से पत्रव्यवहार किया गया कि वह स्टेट-कांग्रेस पर से निषेधाज्ञा हटा ले, पर उसे तो 'कांग्रेस' शब्द ही नापसन्द था। और आखिर जब कार्यकर्ताओं ने कांग्रेस का नाम 'नेशनल कान्फ्रेंस' रखने का विचार भी कर लिया तो राज्य ने यह कह कर अपनी दूषित और प्रतिगामी मनोवृत्ति का परिचय दिया कि "हैदराबाद सरकार लोगों का उत्तरदायी शासन माँगने का अधिकार मान्य करने को तैयार नहीं है, जिसे प्राप्त करने का इस संस्था ने निश्चय किया है। इसलिए इस संस्था के विधान से उत्तर-दायी शासन माँगनेवाली धारा निकाल दी जानी चाहिए। निजाम की प्रभुता अविभाज्य, अहस्तान्तर-योग्य और पूर्ण है।"

राज्य की इस मनोवृत्ति का परिचय पाकर कांग्रेस-कार्यकर्ता रचनात्मक कार्यों में लग गए; और कुछ ने प्रान्तीय कान्फ्रेंसों की ओर अधिक ध्यान देना शुरू किया। स्वामी रामानन्द जी तीर्थ ने कुछ मित्रों के साथ व्यक्तिगत सत्याग्रह किया। वे सितम्बर १९४० में गिरफ्तार किए गए, और १५ दिसम्बर १९४१ को बिना शर्त रिहा हुए।

सन् १९४२ का आन्दोलन—सन् १९४२ के आन्दोलन में यहाँ के सज्जनों ने राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) का साथ दिया। कितनी ही गिरफ्तारियाँ और नजरबन्दियाँ बिना मुकदमा चलाए हुईं। लगभग ३०० आदमियों ने सत्याग्रह किया। स्वामी रामानन्द जी तीर्थ और उनके मित्र १५ दिसम्बर १९४३ को रिहा किए गए। जिन लोगों पर मुकदमा चलाया गया था, और सजा हुई थी, वे भी रिहा किए गए।

सार्वजनिक जीवन और भाषण-स्वतन्त्रता—इस राज्य में सार्वजनिक जीवन की बहुत कमी है। बात यह है कि यहाँ जनता को भाषण-स्वतन्त्रता नहीं रही। सन् १९२० में लगाए प्रतिबन्धों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। ८ सितम्बर १९२१ को एक आर्डिनेन्स जारी करके सब सभाओं को निषिद्ध ठहरा दिया गया, जो राजनीतिक हो या जिनका परिणाम राजनीतिक हो। २१ अगस्त १९२९ के सरक्यूलर (गश्ती पत्र) से गैर-राजनीतिक सभा करने के लिए भी पहले से अनुमति प्राप्त करना आवश्यक ठहराया गया। कुछ दशाओं में सभा के संयोजकों से जमानत भी माँगी जा सकती थी। १९३१ में यह सूचना प्रकाशित कर दी गई कि सरक्यूलर के नियम भङ्ग करनेवालों पर १००) जुर्माना या एक माह की कैद हो सकती है। हैदराबाद की जनता देश के सुप्रसिद्ध नेता पण्डित मोतीलाल नेहरू और डाक्टर अनसारी के देहान्त पर शोक सभा भी नहीं कर सकी। ११ जुलाई १९३८ को सार्वजनिक सभाओं के नियम, ब्रिटिश भारत के राजद्रोहात्मक सभाओं सम्बन्धी कानून के आधार पर, बनाए गए। इससे स्थिति और भी बिगड़ गई। निजी स्थान में होने-वाली सभा भी, जिसमें प्रवेश होने की अनुमति टिकट से मिले, सार्व-जनिक सभा मानी गई। गैर-राजनीतिक सभा के लिए अनुमति लेने

की आवश्यकता न रही, वह सिर्फ सूचना देकर हो सकती थी; परन्तु मातृभाषा सम्बन्धी भाषण के लिए की गई सभा भी राजनीतिक मानी गई।

सन् १६३८ की घोषणा से परिस्थिति में विशेष सुधार नहीं हुआ। पीछे दिसम्बर १६४५ में कुछ प्रतिबन्ध शिथिल किए गए, पर सिर्फ हैदराबाद शहर और जिलों या तालुकों के सदर-मुकामों के लिए ही। अन्य या देहाती क्षेत्रों के लिए कोई सुधार नहीं हुआ।

१० जून १६४६ को अ० भा० दे० रा० लोकपरिषद की जनरल कौंसिल ने निश्चय किया कि निषेधाज्ञा होते हुए भी स्टेट-कांग्रेस अपना काम करे। इस पर ३ जुलाई को राज्य ने अपनी निषेधाज्ञा हटा ली। स्टेट-कांग्रेस को अपने जन्म के लगभग आठ वर्ष बाद सरकारी प्रतिबन्ध से मुक्ति मिली, यह बात हैदराबाद राज्य की स्वयं ही एक स्पष्ट टीका है। स्टेट-कांग्रेस का अधिवेशन सन् १६४७ में हुआ।

सन् १९४६ और ४७ के 'शासन-सुधार'—सन् १६३६ में निजाम ने कुछ वैधानिक सुधार किए, पर उनमें उत्तरदायी शासन की बात न थी। राज्य-कांग्रेस ने उन्हें स्वीकार न किया और चुनाव का वहिष्कार कर दिया। 'श्रीमती अरुणा आसफअली के शब्दों में इसका नतीजा यह हुआ कि चुनाव में मुश्किल से दो-तीन फीसदी जनता ने ही भाग लिया। एक चुनाव क्षेत्र के ६०० मतदाताओं में से सिर्फ एक ने मत दिया।

नवम्बर सन् १६४७ में, जब कि राज्य-कांग्रेस द्वारा दो मास से सत्याग्रह आन्दोलन चलाया जा रहा था, निजाम ने फिर वैधानिक सुधार करने की घोषणा की। इसके मुख्य अंश ये हैं—(१) निजाम जिम्मेदार सरकार स्थापित करने के सिद्धान्त को मन्जूर करते हैं। (२) नए सुधारों के मुताबिक धारासभा व मन्त्रिमण्डल में हिन्दू व

मुसलमानों का समान प्रतिनिधित्व रहेगा, और भविष्य में जो विधान बनाया जाय, उसमें भी इस समानता को कायम रखा जायगा (३) रियासत का भावी विधान बनाने का काम एक विधान-समिति के सुपुर्द किया जायगा। इसी के साथ निजाम ने अन्तःकालीन सरकार बनाने का वायदा किया, जिसमें ४ मुसलमान मजलिस इत्तहादुल मुसलमीन के प्रतिनिधि, एक हरिजन सहित ४ हिन्दू, और ४ निजाम द्वारा नामजद होंगे।

पीछे निज़ाम ने जो मंत्रिमंडल बनाया, उसमें नामज़द मन्त्री ४ की जगह ६ कर दिए ; इस प्रकार कुल मन्त्री बारह की जगह चौदह हो गए। एक मन्त्री श्री रामाचारी जी ने, जिन को कांग्रेसी कहा गया था, शासन-नीति से असन्तुष्ट होकर इस्तीफा दे दिया। यह मन्त्रि-मण्डल निज़ाम की उग्र साम्प्रदायिकता का नग्न चित्र है। इससे जनता को संतोष नहीं हो सकता। यह स्वाभाविक ही है कि राज्य की प्रमुख संस्था स्टेट-कांग्रेस ने इस अन्तरिम सरकार का बहिष्कार करने और अपना आन्दोलन जारी रखने का निश्चय किया।

भारतीय सङ्घ से यथा-पूर्व समझौता—जब से अंगरेजों के भारत से विदा होने की बात चली, निजाम की यह इच्छा रही कि हैदराबाद एक स्वतन्त्र राज्य हो। वह मुसलमानों की भावना का बहाना बनाता रहा, जिनकी संख्या राज्य में सिर्फ १३ प्रतिशत है। उसने यह नहीं सोचा कि हैदराबाद चारों ओर से भारतीय सङ्घ से घिरा हुआ है और इस राज्य की लगभग ८७ प्रतिशत जनता की यह जोर-दार माँग है कि वह भारतीय सङ्घ में शामिल हो। वह इस प्रश्न को टालता रहा। आखिर, कई महीनों की दौड़-धूप के बाद २२ नवम्बर १९४७ को हैदराबाद और भारतीय सङ्घ के बीच समझौता हुआ। विधानपरिषद में इस समझौते का विवरण उपस्थित करते हुए गृह-मन्त्री

सरदार पटेल ने बतलाया कि 'एक साल के लिए हैदराबाद, पाकिस्तान में सम्मिलित नहीं हो सकेगा, और सङ्घ-सरकार का निजाम राज्य से वही सम्बन्ध रहेगा जो १५ अगस्त के पूर्व ब्रिटिश सरकार का था। शासन के तीन विभागों—रक्षा, यातायात और वैदेशिक विभागो —का वही रूप रहेगा जो भारतीय सङ्घ में सम्मिलित अन्य राज्यों का है। निजाम व्यापारिक उन्नति के लिए संयुक्तराज्य में अपने प्रतिनिधि रख सकेगा परन्तु इसके लिए उसे भारत सरकार से सलाह लेनी होगी।' इसके बाद निजाम सरकार ने अपने यहाँ भारतीय मुद्रा के प्रचलन पर प्रतिबन्ध लगाया और भारत के साथ शत्रुतापूर्ण व्यवहार करनेवाले पाकिस्तान को बीस करोड़ रुपए सहायता के रूप में दिए। इस प्रकार सन् १९४८ के आरम्भ तक भी इस राज्य का भारतीय सङ्घ से विरोध-भाव बना रहा।

विशेष वक्तव्य—हैदराबाद सरकार और राज्य-कांग्रेस में भी संघर्ष चल रहा है। राज्य-कांग्रेस अपनी माँग पर दृढ़ है। उसके अध्यक्ष श्री रामानन्दजी तीर्थ ने दिसम्बर १९४७ तथा जनवरी १९४८ में दिए हुए अपने वक्तव्यों और भाषणों में स्पष्ट कह दिया है कि हैदराबाद के भारतीय संघ में शामिल होने के प्रश्न पर जनमत लिया जाय और राज्य में पूर्ण उत्तरदायी सरकार बनाई जाय। जब तक यह माँग पूरी नहीं की जायगी, राज्य-कांग्रेस अपनी लड़ाई कभी बन्द न करेगी। भारत-सरकार और हैदराबाद राज्य के बीच हुए यथापूर्व समझौते से हमारा कार्य बिलकुल नहीं रुक सकता। राज्य की ओर से इस समय घोर दमन हो रहा है। दस हजार से भी अधिक व्यक्ति जेल में बन्द हैं और सैकड़ों आदमी गोली से मार दिए गए हैं। १५,००० हजार से भी अधिक विद्यार्थियों ने विद्यालयों का बहिष्कार करके स्वतंत्रता के संघर्ष में प्रमुख भाग लिया है। लूटमार, आगजनी, हत्या

और बलात्कार तो एक मामूली बात हो गई है। राज्य में आतंक का साम्राज्य है। १ लाख से भी अधिक व्यक्ति राज्य से हट गए हैं। लाखों की सम्पत्ति नष्ट हो चुकी है। आशा और विश्वास है कि ये कुर्बानियाँ व्यर्थ नहीं जायँगी। जनता सत्याग्रह और असहयोग की नीति अपना रही है। उसकी विजय होकर रहेगी। यदि निजाम साहब ने समय की गति को न पहचाना तो हैदराबाद राज्य, जिसमें सोलह जिले हैं, छिन्न-भिन्न हो जायगा; ये जिले आंध्र महाराष्ट्र और कर्नाटक में, जहाँ भाषा और संस्कृति आदि की दृष्टि से उनका मेल बैठेगा, मिल जायँगे। आशा है, निजाम साहब स्वयं अपने हित के लिए जनता की सरकार कायम करेंगे और राज्य को भारतीय संघ में शामिल करेंगे।



चौबीसवाँ अध्याय

मैसूर

इस राज्य का क्षेत्रफल २९४५८ वर्गमील, आबादी (सन् १९४१) तिहत्तर लाख और सालाना औसत आमदनी दस करोड़ रुपया है।

राज्य की 'उन्नति'—सन् १८३१ में इस राज्य का प्रबन्ध भारत-सरकार ने अपने हाथ में ले लिया था। पचास वर्ष तक अंग-रेजी अमलदारी में रहने के कारण यहाँ शासनपद्धति में नवीनता का यथेष्ट समावेश होगया; मुख्य-मुख्य कार्यों के लिए अलग-अलग विभागों की व्यवस्था होगई, और उनके संचालन के वास्ते विविध अधिकारी

रहने लगे। प्रतिनिधि सभा (रेप्रेजेंटेटिव असेम्बली) की स्थापना यहाँ १८८१ में होगई थी। व्यवस्थापक परिषद यहाँ सन् १६१७ से काम कर रही है। म्युनिसपेलटियाँ जिला-बोर्ड और आर्थिक संस्थाएँ भी यहाँ बहुत समय से हैं। शिक्षा-प्रचार में यह राज्य भारतवर्ष के प्रान्तों से कुछ ही पीछे रहा है। इस प्रकार यह एक उन्नत राज्य कहा जा सकता है, परन्तु जनता के नागरिक अधिकारों आदि के विचार से शासन अच्छा नहीं रहा। राज्य और नागरिकों में संघर्ष ही चलता रहा।

उत्तरदायी शासन की माँग—सन् १६१७ से यहाँ प्रजा-मित्र मंडली विशेषतया दलित जातियों के उत्थान का कार्य करने लगी। उत्तरदायी शासन की माँग खासकर सन् १६१६ से की जाने लगी। १६२६ में तो विश्वेश्वरैया कमेटी ने इसके लिए सिफारिश भी की, परन्तु उस पर अमल नहीं किया गया। सन् १६३० में उत्तरदायी शासन का आन्दोलन करने के लिए 'पीपल्स पार्टी' नाम की संस्था स्थापित की गई; यह पीछे 'प्रजामित्र मंडली' में मिल गई और संयुक्त संस्था 'पीपल्स फेडरेशन' कहलाने लगी। सन् १६३४ में सर मिरजा (दीवान) ने यह घोषित किया कि शासन-विधान जैसा है, उसमें किसी परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं है। उन्होंने सार्वजनिक कार्यकर्ताओं को चेतावनी दी। पर इससे आन्दोलन ठंडा पड़नेवाला न था। सन् १६३७ में 'पीपल्स फेडरेशन' स्टेट-कांग्रेस में मिल गई। इससे राष्ट्रीय कार्य के लिए कांग्रेस की शक्ति बढ़ी।

संघर्ष और समझौता—नागरिक अधिकारों और उत्तरदायी शासन के लिए मैसूर सरकार और जनता में जोर का संघर्ष हुआ। तिरंगे झंडे पर लगाए गए प्रतिबन्ध का लोगों ने डट कर विरोध किया। सत्याग्रह आन्दोलन अपने ढंग का अनूठा था। सरकार ने कस

कर दमन किया। अन्त में श्री० सरदार पटेल और आचार्य कृपलानी के प्रयत्न से स्टेट-कांग्रेस और मैसूर सरकार में समझौता हो गया। जो सुधार-कमेटी पहले नागरिकों में फूट डालने के आधार पर बनाई गई थी उसका पुनस्संगठन किया गया। यह तय पाया कि यह कमेटी उत्तरदायी शासन की योजना पर भी विचार कर सकती है। परन्तु सरकार ने पीछे समझौता भंग कर दिया। इस पर स्टेट-कांग्रेस के सदस्य कमेटी से अलग होगए, और सत्याग्रह बहुत बड़े पैमाने पर हुआ।

शासनपद्धति में परिवर्तन—सन् १६३६ में नया शासन-विधान जारी हुआ। इसमें उत्तरदायी शासन की व्यवस्था करना तो दूर, राज्य ने उसे लक्ष्य के रूप में भी स्वीकार नहीं किया। मुसलमानों का लिहाज़ करके पृथक् निर्वाचिन की दूषित पद्धति जारी कर दी गई। प्रतिनिधि-सभा और व्यवस्थापक परिषद का विस्तार अवश्य हुआ, परन्तु प्रतिनिधि-सभा को बजट के सम्बन्ध में कुछ अधिकार नहीं दिए गए, और व्यवस्थापक सभा का संगठन अलोकतंत्रवादी रखा गया। प्रबन्धकारिणी का संगठन भी अच्छा नहीं रखा गया।

स्टेट-कांग्रेस की सफलता—यह विधान संतोषजनक न था। तो भी स्टेट-कांग्रेस ने प्रतिक्रियावादियों को रोकने के उद्देश्य से नए चुनाव में भाग लिया। उसे विविध बाधाएँ होते हुए भी सफलता मिली। सन् १६४० में जिला-बोर्डों और म्युनिसपेलटियों के नए निर्वाचन हुए। उनमें भी स्टेट-कांग्रेस ने भाग लिया। राज्य की ओर सार्वजनिक सभा करने और 'लाउडस्पीकर' आदि का उपयोग करने पर प्रतिबन्ध लगाए गए। तो भी स्टेट-कांग्रेस ने निर्वाचन में अद्भुत सफलता प्राप्त की, और यह सिद्ध कर दिया कि ग्रामीण तथा नागरिक जनता पर उसका यथेष्ट प्रभाव है।

अगस्त १९४२ का आन्दोलन—राज्य में स्टेट-कांग्रेस

का जनता से गहरा सम्पर्क था। मजदूर यूनियन के पदाधिकारी आम-तौर पर कांग्रेस के ही आदमी थे। इसलिए विरोध-प्रदर्शनों में मजदूरों ने प्रमुख भाग लिया। 'हिन्दुस्तान एअर क्राफ्ट एसोसियेशन' ने दो रोज तक जलूस का नेतृत्व किया। इन प्रदर्शनों में स्त्रियाँ, बच्चे, विद्यार्थी, सरकारी नौकर आदि सभी श्रेणियों के आदमी शामिल थे। पुलिस के लाख रोकने पर भी जलूस निकलते रहे और सभाएं होती रहीं। आखिर अंधाधुन्ध गोलियाँ चलाई गईं। १९ और २० अगस्त को सौ-सौ आदमी मर गए; घायल तो और भी अधिक हुए। विद्यार्थियों ने जोर की हड़ताल की। इसन तथा पहाड़ के जिलों की जनता ने करबन्दी आन्दोलन चलाया। इफ्तवार ब्र... लगाते थे, इनमें लोगों ने चुङ्गी तथा 'टोल' देने से इन्कार कर दिया... बन्दुनार में जब १५ आदमी गिरफ्तार किए गए तो पुलिस को उन्हें ले जाने का साधन न मिला, क्योंकि लोगों ने अपनी बैलगाड़ियाँ न दीं। दो कालिज-प्रोफेसरों, १ एग्जीक्यूटिव अफसर, १ इन्जीनियर, १० पटेलों, असेम्बली के कई मेम्बरों, ए० आर० पी० और राष्ट्रीय युद्ध मोर्चे के कई सदस्यों ने इस्तीफे दिए, और कितने ही आदमियों ने अपनी सनदें लौटा दीं और अदालत में जाना बन्द कर दिया। पुलिस-कर्मचारियों ने इस समय स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ों तक से दुर्व्यवहार करके जिस क्रूरता का परिचय दिया, उसका यहाँ वर्णन नहीं हो सकता। *

स्टेट-कांग्रेस का छठा अधिवेशन; सत्याग्रह की सूचना— सन् १९४६ में राज्य के व्यवस्थापक मंडल की दोनों सभाओं के बहुसंख्यक सदस्यों ने महाराजा की सेवा में आवेदन-पत्र भेजा कि

---

*देखिए, 'सन् बयालीस का विद्रोह' लेखक, श्री गोविन्दसहाय एम० एल० ए०

उत्तरदायी शासन स्थापित किया जाय, और दूसरे सुधारों को अमल में लाया जाय। परन्तु सरकार ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। ऐसी स्थिति में राज्य-कांग्रेस का छठा अधिवेशन २ और ३ नवम्बर १९४६ को सुभाषनगर (बंगलोर) में हुआ। इसके स्वागताध्यक्ष श्री के० टी० भाष्यम् और सभापति श्री के० सी० रेड्डी थे। स्वागताध्यक्ष ने बतलाया कि पिछले आठ साल से अधिक समय में कांग्रेस जनता के अधिकारों के लिए वीरतापूर्वक लड़ती रही है और उसे कुछ सफलता भी मिली है। अब अगर सत्याग्रह करने के लिए मजबूर होना पड़ा तो वह इससे पीछे न हटेगी। सभापति जी ने कहा कि हम नए मैसूर का निर्माण करना चाहते हैं। इसके लिए सत्ता जनता के प्रतिनिधियों को सौंपी जाय। यह काम सद्भावना और शान्ति-पूर्वक होना चाहिए। परन्तु इसके कोई लक्षण दिखाई नहीं दे रहे हैं, इसलिए सङ्घर्ष का आसरा लेना अनिवार्य है।

इस अधिवेशन ने कार्यसमिति को उत्तरदायी शासन प्राप्त करने के लिए आवश्यकता होने पर सत्याग्रह करने का भी अधिकार दिया।

महाराजा का सन्देश और स्टेट-कांग्रेस—४ जनवरी १९४७ को महाराजा की सेवा में उत्तरदायी शासन की माँग का आवेदन-पत्र भेजा गया। इस पर महाराजा ने ८ जनवरी के सन्देश में कहा कि मैंने दीवान को सारी परिस्थिति का विचार करके वैधानिक प्रगति सम्बन्धी प्रस्ताव उपस्थित करने का आदेश कर दिया है। वह जनता के सब भागों और श्रेणियों का परामर्श लेगा और उनकी सहायता और सहयोग से प्रस्ताव उपस्थित करेगा। आशा है, उससे सब को समान अवसर मिलने का उद्देश्य पूरा होगा और जनता को सुरक्षा, सन्तोष और सुख मिलेगा।' इस सन्देश के सम्बन्ध में स्टेट-कांग्रेस ने २२ और २३ जनवरी १९४७ को बैठक के प्रस्तावों में कहा कि यह

अपूर्ण, असन्तोषजनक और अस्पष्ट है। इस बात की निश्चित घोषणा हो जानी चाहिए कि भावी सुधारों का उद्देश्य बहुत जल्दी ही उत्तरदायी शासन स्थापित करना है। इस बीच में विश्वासपात्र सज्जनों की अन्तरिम सरकार बनादी जानी चाहिए, जिससे यह सूचित हो कि जनता को वास्तव में सत्ता हस्तान्तरित की जानेवाली है।

कार्यसमिति ने एक प्रतिज्ञापत्र भी तैयार किया, जिसके अनुसार स्टेट-कांग्रेस के सदस्य २६ जनवरी १६४७ को स्वाधीनता दिवस के अवसर पर महाराजा की छत्रछाया में उत्तरदायी शासन प्राप्त करने की प्रतिज्ञा लें, और आवश्यकता हो तो इस कार्य के लिए सत्याग्रह में यथेष्ट भाग लें।

विशेष वक्तव्य—इसके बाद दीवान की स्टेट कांग्रेस के अध्यक्ष से मुलाकात हुई। कांग्रेस-कार्यसमिति में विचार विनिमय हुआ। मई १६४७ में कांग्रेस-अध्यक्ष श्री के० सी० रेड्डी ने एक मुलकात में बतलाया था कि साम्प्रदायिक समस्या के बहाने राज्य भर में नागरिक स्वाधीनता पर प्रतिबन्ध हैं। सरकार स्थानीय संस्थाओं के काम में दखल देती है, और किसानों से जबरदस्ती अन्न वसूल किया गया हैं। इसलिए सत्याग्रह छेड़ने का निश्चय किया गया था। पर उसका स्थगित करना इसलिए स्वीकार किया कि दीवान ने सरदार पटेल और पंडित जवाहर-लाल जी नेहरू की सलाह से ऐसे सुधार करना स्वीकार कर लिया, जो प्रजा को संतोष दे सके।

मैसूर राज्य भारतीय संघ में सम्मिलित होगया है। राज्य-कांग्रेस और मैसूर सरकार में समझौता हो गया है, आशा है कि उत्तरदायी शासन की स्थापना में ढील न की जायगी। मैसूर की जाग्रत जनता अब सरकार की शिथिलता और प्रतिगामिता सहन करने वाली नहीं है।

पच्चीसवाँ अध्याय

त्रावणकोर

यह राज्य भारतवर्ष के ठेठ दक्षिण में, पश्चिम की ओर है। इसका क्षेत्रफल ७६२५ वर्गमील और जनसंख्या ६१ लाख तथा औसत वार्षिक आय पांच करोड़ रुपए है। यहाँ का राजा उन क्षत्रियों में से है, जो अपने आपको दक्षिण भारत के प्राचीन चेरा राजवंश के मानते हैं। राजा मालाबार के रिवाज के अनुसार राजघराने की लड़की या बहिन के बड़े पुत्र को गद्दी दे सकता है। आधी सदी से अधिक समय से यहाँ के शासक राज्य की आय को सार्वजनिक कोष की तरह समझते हैं, और अपने निजी व्यय के लिए अपेक्षाकृत बहुत कम रकम लेते हैं। यहाँ शिक्षा का अच्छा प्रचार है। स्त्रियों की दशा यहाँ उन्नत है। छुआछूत कानून द्वारा बन्द है; मन्दिर हरिजनों के लिए खुले हैं। तो भी जनता के नागरिक अधिकार कम रहे हैं।

सर सी० पी० रामास्वामी ऐयर का स्वेच्छाचार— यहाँ जनता के आधुनिक इतिहास पर बहुत कुछ सर सी० पी रामास्वामी ऐयर की छाप लगी है। परोक्ष रूप से ये जन-आन्दोलन को आमंत्रित करनेवाले रहे हैं। इनका इस राज्य से सन् १९३१ से सम्बन्ध हुआ। ये उस समय यहाँ के वैधानिक सलाहकार नियुक्त हुए थे। तब से ये इसके मानो शासक ही होगए। ये अपने आदमियों को राज्य के दीवान बनवाने में सफल होते रहे। कुछ समय बाद ये ही दीवान बन गए। तब से तो राज्य में इनकी तानाशाही का ज़ोर और भी बढ़ गया। सन् १९३६ से इन्होंने यह प्रयत्न किया कि जो कोई

इनके विरुद्ध आवाज़ उठाने का साहस करे, उसे बुरी तरह दबा दिया जाय। इन्होंने कितने ही रोज़गारों पर नियंत्रण लगा दिया; मदरास तथा अन्य स्थानों से अपने मित्रोंको बुलाकर भारी-भारी वेतन वाले पदों पर नियुक्त किया; और, जब पत्रों में ये बातें प्रकाशित होने लगीं तो उनपर प्रतिबन्ध लगा दिए।

राज्य-कांग्रेस का आन्दोलन—जनता का कष्ट और असंतोष बढ़ता गया। आखिर, सन् १६३८ में सङ्गठित आन्दोलन करने का निश्चय किया गया। स्टेट-कांग्रेस की स्थापना की गई। उसका उद्देश्य महाराजा की छत्रछाया में उत्तरदायी शासन प्राप्त करना रखा गया। पर उसके रचनात्मक कार्य--खादी-प्रचार, हरिजन उत्थान, मद्यपान निषेध और हिन्दी-प्रचार-पर भी राज्य की ओर से समय-समय पर प्रतिबन्ध लगाया गया। स्टेट-कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं को जनता का यथेष्ट समर्थन और सहानुभूति प्राप्त थी। कांग्रेस ने दीवान के कुशासन के विरुद्ध एक मेमोरेंडम (याददाश्त) तैयार किया। उसकी माँग थी—सर सी० पी० को बर्खास्त किया जाय। विद्यार्थियों ने इस आन्दोलन में खूब भाग लिया। कुछ सरकारी सामान भी नष्ट हुआ। सर सी० पी० ने आन्दोलन को कुचलने के लिए कोई उपाय उठा न छोड़ा। प्रमुख नेताओं को गिरफ़्तार किया गया, पुलिस को दमन के लिए पूरी छूट्टी मिल गई। लाठी-वर्षा तो ज़ोरं से हुई ही। प्रदर्शन कारियों तक पर गोलियाँ चलाई गईं। आखिर, जब म० गांधी के परामर्श से मेमोरेंडा वापिस ले लिया गया, तब जाकर आन्दोलन बन्द हुआ।

दीवान की फूट डालने की नीति—जनता ने यह दिखा दिया कि वह दमन से नबनेवाली नहीं। यह बात सर सी० पी० को बहुत अखरी। उन्होंने फूट डालने की नीति इख्त्यार की, कभी हिन्दुओं

को ईसाइयों के विरुद्ध भड़काया; और कभी ईसाइयों को हिन्दुओं के विरुद्ध। यह चाल कुछ अंश तक सफल हुई, और इससे जन-सङ्गठन को धक्का पहुँचा। पर यह क्षणिक था। आखिर, आदमी इस चाल का रहस्य समझने लग गए। अब दीवान साहब ने वर्ग-वैमनस्य फैलाने की कोशिश की। मजदूरों के सङ्घों को तोड़ने का प्रयत्न किया गया। परन्तु उनके संकटों ने त्रावणकोर की जनता की एकता और भी बढ़ाई।

महायुद्ध का समय और उसके बाद—दूसरे योरपीय महायुद्ध के समय सर सी० पी० ने राज्य की जनता की आवश्यकता की उपेक्षा कर यहाँ की पैदावार बाहर भेज कर ब्रिटिश साम्राज्यवाद की सहायता की। कितने ही आदमियों को अन्न-सङ्कट की दशा में अपनी उदर-पूर्ति के लिए लड़ाई पर जाना पड़ा। सन् १९४२ के आन्दोलन में विद्यार्थियों तथा अन्य जनता ने जलूस निकाले तो सर सी० पी० की सरकार लाठी-वर्षा, कैद और गोलियों की बोछार—सभी उपायों को आन्दोलन कुचलने के लिए काम में लाई। नागरिक अधिकार यहाँ पहले ही कम थे। राजनीतिक कार्यकर्ता पिछले पन्द्रह वर्ष में बारबार कैद किए और छोड़े जाते रहे थे। महायुद्ध के समय त्रावणकोर-रक्षा-कानून का उपयोग राज्य की रक्षा के लिए न कर स्वेच्छाचारिता की रक्षा के वास्ते किया गया।

महायुद्ध बन्द हो जाने पर भी दमनकारी उपायों को कम नहीं किया गया। इसके विपरीत, सन् १९४६ में पहला कानून महाराजा के विशेषाधिकार से ऐसा बनाया गया कि सरकार चाहे जिस हड़ताल, धरने, जलूस, सभा, और साहित्यिक समारोह आदि को रोक सके। जिस आदमी के बारे में सरकार की आलोचना करने की आशंका हो, उसे बिना न्यायालय की जाँच के ही कैद या नजरबन्द करने की व्यवस्था करदी गई।

शासन-सुधार—सन् १९४६ में सर सी० पी० ने 'अमरीका के ढंग पर' राज्य के शासन सुधार की योजना उपस्थित की। योजना की कुछ बातें अच्छी होते हुए भी, वह ऐसी नहीं है कि इस जमाने में उस पर गर्व किया जाय। उसमें समस्त शक्ति का मूल स्रोत जनता को नहीं माना गया। दीवान महाराजा द्वारा नियुक्त होगा, और धारा सभा का उस पर अविश्वास होने पर भी अपने पद से नहीं हटाया जा सकेगा। यही बात सरकार के अन्य सदस्यों पर भी लागू होगी। दीवान के अधिकार भी बहुत अधिक हैं। निश्चय ही वह योजना जनता को उत्तरदायी शासन नहीं देती।

त्रावणकोर और भारतीय संघ—सर सी० पी० की ताना-शाही का अन्तिम और आश्चर्यजनक उदाहरण उनकी यह घोषणा थी कि त्रावणकोर भारतीय संघ में शामिल न होकर स्वतंत्र सार्वभौम राज्य होगा। उन्होंने यह दावा किया कि जनता मेरे पक्ष में है। असल में वे फौज और पुलिस के बल पर जनता को अपने पक्ष में करना चाहते थे, और इस लिए उन्होंने इन की शक्ति खूब बढ़ाई। उनकी बातों से राज्य भर में क्षोभ फैल गया। जन-आन्दोलन की तैयारी होने लगी। यह देखकर, जनता पर आतंक जमाने के लिए सर सी० पी० ने कोई कसर नहीं रखी। राजकर्मचारियों को बर्खास्त करने की धमकी दी गई। वकीलों और व्यापारियों से उनकी आजीविका का साधन छीनने की बात कही गई। सर्वसाधारण को धान का राशन बन्द करने का भय दिखाया गया। प्रतिक्रियावादियों को आर्थिक प्रलोभन दिया गया। यह सब होते हुए भी स्टेट-कांग्रेस ने अपनी दृढ़ता बनाए रखी। आखिर जनता की विजय होकर रही। त्रावणकोर भारतीय संघ में शामिल होगया। सर सी० पी० अपने पद से अलग हुए। आवश्यकता है कि यह राज्य जल्दी ही पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित करे।

———

छब्बीसवाँ अध्याय

छोटे-छोटे राज्य

[उड़ीसा, छत्तीसगढ़, बुंदेलखंड, काठियावाड़-गुजरात, और दक्षिण के राज्य, तथा आसाम के राज्य]

जन-जागृति और उत्तरदायी शासन—पिछले अध्यायों में हम भारतवर्ष के बड़े-बड़े राज्यों में से कई-एक की, और किसी-किसी छोटे राज्य की भी, जन-जागृति का परिचय दे चुके हैं। हर राज्य में जनता अपनी आर्थिक, शिक्षा और स्वास्थ्य सम्बन्धी तथा अन्य विविध आवश्यकताओं की पूर्ति करना और अपनी उत्तरोत्तर उन्नति करते रहना चाहती है। इसमें सफलता प्राप्त करने के लिए उत्तरदायी शासनपद्धति स्थापित करना बहुत ज़रूरी है। इसके अभाव में विकास के विविध कार्य रुके रहते हैं। इस प्रकार जन-जागृति की एक आवश्यक मंजिल उत्तरदायी शासन है।

छोटे राज्यों की समस्या—उत्तरदायी शासन स्थापित करने के लिए यथेष्ट आर्थिक साधन जिन राज्यों को प्राप्त है, उनकी संख्या इनीगिनी ही हैं। शेष राज्यों के साधन इतने कम हैं कि राजा लोग चाहें तो भी यह कार्य नहीं किया जा सकता। बात यह है कि व्यवस्थित रूप से उत्तरदायी सरकार का कार्य चलाने के लिए निर्वाचित सदस्यों की व्यवस्थापक सभा, अनुभवी मंत्रियों, निष्पक्ष न्यायालयों, और सुयोग्य कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होती है। छोटी-छोटी रियासतों में इनके लिए आर्थिक साधन जुटाना सम्भव नहीं होता। इसका यथेष्ट उपाय यही है कि इन्हें पास के प्रान्तों में मिला दिया जाय। प्रान्तों

में उत्तरदायी शासन पद्धति है ; उनका अंग बन जाने पर इन राज्यों में उत्तरदायी शासन स्वयं ही स्थापित हो जायगा। जिन छोटे राज्यों के पास उनसे मिला हुआ कोई प्रान्त न होकर, दूसरा काफी बड़ा राज्य हो, वहाँ छोटे राज्यों को उस बड़े राज्य में मिलाया जा सकता है ; शर्त यह है कि उस बड़े राज्य में उत्तरदायी शासन प्रचलित हो।

इस दिशा में असली काम भारतीय संघ की स्वतंत्र सरकार बन जाने पर ही होने लगा है। दिसम्बर १९४७ और जनवरी १९४८ में इसमें अच्छी प्रगति हुई है।

उड़ीसा के राज्य

उड़ीसा में २६ रियासतें हैं, जिनमें से कुछ ये हैं—ढेंकनाल, तालचेर, नयागढ़, सरायकेला, बामरा, गंगपुर, हिंडोल, आटगढ़, नीलगिरी, कलहंडी, पटना, मयूरभंज।* इनकी बहुत सी जनता आदिम निवासियों की है। इनके निवासी संस्कृति, रीतिरिवाज, रहनसहन, धार्मिक विचार, तथा भावनाओं में अपने पड़ोसी प्रान्त वालों से मिलते हैं।

इन राज्यों का शासन स्वेच्छाचार पूर्ण और मध्यकालीन रहा है। जनता के नागरिक अधिकार कुछ रहे ही नहीं, वह करों से बेहद लदी रही है। उसने समय-समय पर अपनी आर्थिक और राजनीतिक शिकायतें दूर करने का प्रयत्न किया। सन् १९३१ में इन राज्यों की जनता की लोकपरिषद (पीपल्स कान्फ्रेंस) स्थापित हुई। उड़ीसा प्रान्त में कांग्रेस मन्त्रिमंडल कायम होने पर, सन् १९३७ में इन राज्यों में व्यापक

---

* सरायकेला और खरसावाँ आदि नौ राज्यों पर बिहार सरकार ने अपना अधिकार जताया है; इस विषय में भारत-सरकार निर्णय करने वाली है।

जागृति फैली। इस वर्ष लोकपरिषद का अधिवेशन डा० पट्टाभि सीता-रामैया की अध्यक्षता में हुआ।

जाँच कमेटी—इस अवसर पर उड़ीसा के राज्यों की विविध अनियमितताओं, ज्यादतियों और दमन-कार्यों की जाँच करने के लिए एक कमेटी नियुक्त हुई। इसके संयोजक लोकपरिषद के मन्त्री श्री सारंगधरदास थे। अधिकारियों की ओर से तरह-तरह की बाधाएँ उपस्थित की जाने पर भी कमेटी ने भिन्न भिन्न स्थानों में सभाएँ कीं, दो हजार गवाहों के बयान लिए, और जुलाई १९३९ में अपनी अनेक ज्ञातव्य बातों से भरी हुई रिपोर्ट उपस्थित की।

तालचर में अत्याचार; एक-तिहाई जनता का राज्य को छोड़ जाना—उड़ीसा के राज्यों में होनेवाले अमानुषिक अत्याचारों का कुछ परिचय तालचर के वर्णन से हो जायगा। इस राज्य के नागरिक अनुचित कर-भार, बेगार और अन्य ज्यादतियों के विरुद्ध आन्दोलन कर रहे थे। उन्होंने सन् १९३८ में राजा साहब के सामने अपनी खासकर कर सम्बन्धी शिकायतें रखीं, पर राजा साहब ने उन पर विचार करने के बजाय दमनकारी कानून जारी कर दिए। अन्त में लोगों ने सत्याग्रह किया। जो लोग इसके फल-स्वरूप कैद हुए उन्हें जेल में बुरी तरह पीटा गया, कुछ लोगों के हाथ पर तथा कुछ के चूतड़ों पर गरम लोहे से 'नमकहराम' शब्द दागा गया। 'बेठी' से इनकार करने पर कुछ लोगोंपर खूब मार पड़ी और कुछ लोगों के घर जला दिए गये। एक अवसर पर गोली चलाई गई, जिससे दो आदमियों के प्राण गए। स्थिति असह्य हो गई।

अन्त में राज्य की सत्तर हजार की आबादी में से लगभग पच्चीस हजार आदमी, औरतें और बच्चे अपने घरबार को छोड़कर राज्य से निकल गए। उन्होंने उड़ीसा प्रान्त में जाकर आंगुल के जंगल में शरण

ली। यह घटना कुछ ऐसी वैसी न थी, इसकी बात दूर-दूर तक फैली। राजनीतिक विभाग में कुछ हलचल मची, पर कुछ विशेष फल न निकला। उड़ीसा प्रान्त की सरकार ने इस विषय को वायसराय के सामने उपस्थित किया। अन्त में ता० ६ और १० मार्च १६३६ को मेजर हेनेसी शरणार्थियों के पास गए और और २१ मार्च को समझौता हुआ। राजा साहब कुछ सुधारों की घोषणा करने के लिए मजबूर हुए।

सन् १९४२ का आन्दोलन—उड़ीसा की रियासतों में १६३८-३६ का आन्दोलन जितना व्यापक और उग्र था, उतना १६४२ का नहीं रहा। परन्तु १६३८-३६ के आन्दोलन से जनता में जो राजनीतिक जागृति और अधिकारों का ज्ञान हो गया था, उसके फल-स्वरूप सन् १६४२ में कई जगह जनता सामूहिक रूप से उठी और राजसत्ता प्राप्त करने के सफल और असफल प्रयत्न हुए। रियासती अधिकारियों ने निहत्थी जनता के आन्दोलन का दमन करने में अत्यन्त कठोर तरीके अपनाए।

राजाओं की कठिनाई; नीलगिरी की घटना—समय-समय पर रियासतों में राजाओं ने जन-आन्दोलनों को दबाया, पर छोटे-छोटे राजाओं के लिए अकेले अपने ही साधनों से इसमें बहुत कठिनाई हुई; उन्होंने अनेक बार ब्रिटिश भारत की सरकार की मदद से ही यह कार्य कर पाया। पर भारतवर्ष से ब्रिटिश सत्ता हट जाने पर परिस्थिति बदल गई। अब केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारें, जो स्वयं प्रजा के समर्थन पर कायम हैं, राजाओं को जनता के विरुद्ध सहायता देने-वाली नहीं है। कुछ राजाओं ने समझा कि संघ बनाने और गुटबन्दी करने से उनकी शक्ति काफी बढ़ जायगी। इस दृष्टि से उड़ीसा के राज्य ने भी अपना एक संघ बनाया।

इस बीच में उड़ीसा की नीलगिरी रियासत में जनता के असन्तोष के कारण घोर उपद्रव हुआ। २६१ वर्गमील क्षेत्रफल और ७२ हजार आबादी वाली इस रियासत की वार्षिक आय ढाई लाख रुपए से भी कम थी। यहाँ के शासक ने उपद्रव को शान्त करने में असमर्थ होने पर नए सङ्घ से मदद माँगी। मदद मिलने की व्यवस्था होने से पहले ही गृह-मंत्री सरदार पटेल ने, लोकहित की दृष्टि से, उड़ीसा प्रान्त की सरकार को नीलगिरी पर अधिकार करने का आदेश दिया। प्रान्तीय सरकार की आज्ञा से बालासोर जिले के कलेक्टर ने इस आदेश के अनुसार कार्रवाई की। नीलगिरी का तथा अन्य राजा यह शिकायत करने लगे कि भारत-सरकार रियासतों के भीतरी मामलों में हस्तक्षेप करती है। इस पर सरदार पटेल ने राजाओं को बतलाया कि नीलगिरी तो ऐसी रियासतों में है, जिन्हें अपने शासन-प्रबन्ध में भारत-सरकार का परामर्श लेना होता है। फिर, किसी भी रियासत को जो स्वतन्त्रता है, वह लोकहित के लिए ही होनी चाहिए।

उड़ीसा के राज्यों का प्रान्त में मिलना—भारत-सरकार से समझौता हो जाने के फल-स्वरूप जनवरी १६४८ से उड़ीसा के मयूरभंज को छोड़कर शेष पचीस राज्यों की शासन-व्यवस्था उड़ीसा प्रांत की सरकार ने अपने हाथ में ले ली। उनके राजाओं को निजी खर्च के लिए निर्धारित धन मिलने की गारंटी दी गई है। एक लाख से कम आय वालों को आय का १५ प्रतिशत, एक से पाँच लाख वालों को दस प्रतिशत, और पाँच लाख से ऊपर वाली आय के देशी नरेशों को आय का साढ़े सात प्रतिशत पेंशन के रूप में मिलेगा। राजाओं की स्थिति एक वैधानिक शासक की सी रहेगी और उनकी मानमर्यादा तथा वंशानुक्रम के अनुसार उत्तराधिकार आदि विषय पूर्ववत रहेंगे।

भावी शासन और जनता के नागरिक अधिकार—प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा में इन रियासतों की जनता का प्रतिनिधित्व होने की दृष्टि से विधान में आवश्यक परिवर्तन किए जाने तक इन राज्यों का शासन वहाँ के प्रतिनिधियों की सलाह से किया जायगा। प्रत्येक रियासत में विस्तार के अनुपात से पाँच से पन्द्रह सदस्यों की एक कमेटी बनाई जायगी, जो सरकार द्वारा नियुक्त शासनकर्त्ता को सहायता देगी। इन रियासतों के शासकों व उनके प्रतिनिधियों की चालीस सदस्यों की सलाहकार कमेटी चीफ एडमिनिस्ट्रेटर और प्रान्तीय सरकार को रियासतों के सम्मिलित मामलों में सहायता देने के लिए बनाई जायगी। दो-तीन रियासती प्रतिनिधियों को सलाहकार (मन्त्री) नियुक्त किया जायगा।

नागरिक अधिकारों के बारे में बताया गया है कि (१) हरेक आदमी के लिए कानून और न्याय का शासन होगा, (२) सब आदमी अपना-अपना धंधा स्वतन्त्रता-पूर्वक कर सकेंगे। (३) बेठी (बेगार) नहीं ली जायगी, (४) लोकमत के अनुसार लगान-पद्धति में आवश्यक सुधार किया जायगा, (५) सबको भाषण और सम्मेलन की उचित स्वतन्त्रता होगी, (६) शिक्षा-संस्थाएँ खोलने और कुँए खुदवाने आदि की ओर ध्यान दिया जायगा, (७) रियासतों के बीच में, तथा किसी रियासत और प्रान्त के बीच में चुंगी नहीं लगेगी। (८) आदिवासियों और हरिजनों की दशा सुधारी जायगी।

छत्तीसगढ़ के राज्य

केन्द्रीय सरकार के रियासती विभाग तथा छत्तीसगढ़ के नरेशों में एक समझौता हो गया है, जिसके अनुसार सब रियासतों का शासन-प्रबन्ध १ जनवरी सन् ४८ से मध्यप्रान्तीय सरकार द्वारा होता है। नरेशों को केवल उनकी आमदनी के अनुपात से वार्षिक पेंशन मिलेगी।

समझौते की शर्तें प्रायः वही हैं, जो उड़ीसा के राज्यों से हैं। मध्यप्रान्त में शामिल होनेवाले राज्य ये हैं—बस्तर, कांकेर, खैरागढ़, कोरिया, नाँदगाँव, रामगढ़, सारंगढ़, कवर्धा, सकती, छुईखदान, उदयपुर, सरगुजा, जशपुर और चाँदभाखर। इन राज्यों में सबसे बड़ा बस्तर है। इन राज्यों के निवासी वैधानिक और वास्तविक रूप से मध्यप्रान्त-बरार के नागरिक होंगे और कानूनी शासन का उपयोग कर सकेंगे। हाँ, अब इस प्रान्त के विभाजन का प्रश्न और अधिक जोरदार हो गया है। यह विचार किया जा रहा है कि इसके मराठी जिलों को दूसरे मराठी क्षेत्रों में मिला कर हिन्दी प्रदेश का 'महाकौशल' नाम से जुदा प्रान्त बना दिया जाय।

बुन्देलखण्ड के राज्य

बुन्देलखण्ड में तेतीस राज्य है। इनमें ओरछा, अजयगढ़, बावनी, दतिया, बिजावर, चरखारी, छतरपुर, पन्ना, समथर, मैहर और नागौद मुख्य है। इन राज्यों में से ओरछा को छोड़कर शेष सब के शासकों ने इन राज्यों को भारतीय सङ्घ सरकार से मध्यप्रान्त में शामिल कर देने की प्रार्थना की है। इन राज्यों के सम्बन्ध में भी वैसी ही व्यवस्था होने की आशा है, जैसी उड़ीसा और छत्तीसगढ़ राज्यों के लिए हुई है।

एक बात है। यह कहा जा रहा है कि बुन्देलखण्डी रियासतों में से केवल मैहर, पन्ना, बिजावर, छतरपुर और अजयगढ़ इन पाँच रियासतों को छोड़कर शेष सब संयुक्तप्रान्त से घिरी हुई हैं, इसलिए इन्हें मध्यप्रान्त में मिला देने से शासन-प्रबन्ध में कई तरह की कठिनाइयाँ होंगी। बुन्देलखण्डी जनता एक नया प्रान्त बनाने के पक्ष में है, जिसमें संयुक्तप्रान्त के चार जिले—झाँसी, जालौन, हमीरपुर और बाँदा—३३ बुन्देलखण्डी रियासतें और मध्यप्रान्त के दस हिन्दी भाषा भाषी जिले

शामिल हों। इस नए प्रान्त की आबादी १,६४,२७,००० और क्षेत्रफल १,३०,२२६ वर्गमील होगा।

ओरछा—ओरछा राज्य अभी किसी प्रान्त में शामिल नहीं हो रहा है। इसका क्षेत्रफल दो हजार वर्गमील, जनसंख्या लगभग चार लाख, और वार्षिक आय सोलह लाख रुपए से अधिक है।

सन् १९३७ में यहाँ के उत्साही नवयुवकों पर आसपास के जिलों के आन्दोलनों का बड़ा प्रभाव पड़ा, और उनमें राजनीतिक जागृति की भावना बढ़ने लगी। लगातार पाँच वर्ष कोशिश करने और कष्ट सहने पर सन् १९४२ में यहाँ ओरछा सेवा-सङ्घ की स्थापना हुई। उसकी खास माँगे ये रही हैं—नागरिकता की परिभाषा में यथेष्ट परिवर्तन कराना और उत्तरदायी शासन की स्थापना। सङ्घर्षात्मक आन्दोलन न होने तक राज्य की ओर से सङ्घ के काम में कोई बाधा नहीं डाली गई, वरन् उसे हर साल एक हजार रुपए की आर्थिक सहायता दी गई। सङ्घ तथा 'मधुकर'* द्वारा बुन्देलखण्ड प्रान्त निर्माण आन्दोलन चलाया जाता रहा; महाराजा ने इसका समर्थन किया तथा इसे सहयोग दिया।

सन् १९४५ में उत्तरदायी शासन की घोषणा होने पर भी जब १९४६ के अन्त तक राज्य में इस विषय की अमली कार्रवाई न हुई, वरन् तरह-तरह का दमन हुआ तो सेवा सङ्घ ने सन् १९४७ के आरम्भ में सत्याग्रह किया, जो समझौता हो जाने पर बन्द कर दिया गया। पर इसके बाद भी कई महीने उत्तरदायी शासन स्थापना की दिशा में काम

---

* यह पाक्षिक पत्र सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ। इसका अन्तिम अंक 'रेखा-चित्रांक' दिसम्बर १९४६ का था, यह छठे वर्ष का दूसरा अंक था।

न होने पर फिर सत्याग्रह की तैयारी की गई। राज्य ने पहले तो उसे असफल करने के उपायों का अवलम्बन किया। पर आखिर, दिसम्बर १६४७ में महाराजा और सेवा-सङ्घ में समझौता हो गया। महाराजा ने व्यवस्थापक सभा को भंग करके प्रत्यक्ष बालिग मताधिकार के आधार पर विधान समिति बनाने का निश्चय किया, जो उत्तरदायी शासन को विधान बनाए और बीच के समय के लिए व्यवस्थापक सभा के रूप में भी काम करे। वर्तमान मंत्रिमंडल की जगह लोकप्रिय अन्तरिम सरकार स्थापित की गई है। उसमें चार मन्त्री हैं—एक तो महाराजा साहब द्वारा नियुक्त है, और शेष तीन (जिनमें प्रधान मंत्री शामिल है) सेवासङ्घ के प्रतिनिधि हैं। यह मन्त्रिमण्डल व्यवस्थापक सभा के प्रति उत्तरदायी रहेगा। महाराजा का निजी खर्च निश्चित कर दिया गया है।

काठियावाड़ और गुजरात के राज्य

काठियावाड़ और गुजरात में छोटे-बड़े क्रमशः २८५ और ८२ राज्य हैं। इनमें तीन सौ से अधिक तो बहुत ही छोटे हैं; यहाँ तक कि कितने ही तो मामूली गाँव सरीखे हैं। छोटे-छोटे राज्यों को बड़े राज्यों में मिलाने की योजना सबसे पहले यहाँ ही की गई थी। भावनगर, राजकोट और बड़ोदा की जन-जागृति के विषय में पहले लिखा जा चुका है। उन पृष्ठों के छपने के बाद वहाँ उत्तरदायी शासन स्थापित करने का निश्चय हो गया। अब तो काठियावाड़ के सब राज्यों के एकीकरण की योजना तैयार हो गई है।

सौराष्ट्र या गुजरात प्रान्त—इस सौराष्ट्र प्रान्त में नवानगर, भावनगर, गोंडल, राजकोट आदि प्रमुख राज्य शामिल हो गए हैं। बड़ोदा और जंजीरा राज्य के जफराबाद जिले को छोड़ कर अन्य राज्य

भी इस नए प्रान्त में शामिल हो जायंगे। जूनागढ़, और मंगरोल आदि राज्य उनमें जनमत लिए जाने के बाद इस प्रान्त में शामिल होंगे। इसकी राजधानी राजकोट चुनी गई थी, पर अब राजधानी का निश्चय विधान-सभा करेगी। यह प्रान्त भारतीय सङ्घ में उसी प्रकार सम्मिलित होगा, जैसे अन्य राज्य उसमें सम्मिलित हुए हैं। जब गुजरात का नया प्रान्त बनेगा तो यह प्रान्त उसी प्रान्त का एक भाग बन जायगा।

शासन विधान—भावनगर के शासन-सुधारों का इस नये प्रान्त की शासनपद्धति पर बहुत प्रभाव पड़ा है। अन्य राज्यों में वैधानिक सुधारों का प्रश्न अब समाप्त हो गया है, क्योंकि उनका पृथक् अस्तित्व ही नहीं रहता। अब तो लगभग २८० राज्यों के लिए एक ही व्यवस्थापक सभा होगी। मंत्रिमंडल उसके प्रति उत्तरदायी होगा। राजाओं की एक कमेटी होगी। उसके पाँच सदस्यों का बोर्ड होगा, जिसके दो स्थायी सदस्य सम्भवतः भावनगर और नवानगर के शासक होंगे। इस बोर्ड का एक एक सदस्य बारीबारी से 'राजप्रमुख' या प्रान्तपति होगा, उसे प्रान्तीय गवर्नर जैसा सम्मान दिया जायगा। वह नए सौराष्ट्र प्रान्त का वैधानिक शासक होगा।

विधान सभा पूरा जनतंत्रवादी विधान बनाएगी जिसमें मन्त्रिमंडल व्यवस्थापक सभा के प्रति जिम्मेदार होगा। नया चुनाव होने तक यह विधान सभा ही सौराष्ट्र की व्यवस्थापक सभा का भी काम करेगी।

दक्षिण के राज्य

दक्षिण भारत की सतरह रियासतों में से एक कोल्हापुर को छोड़ कर शेष सोलह रियासतों ने बम्बई प्रान्त में शामिल होने का निश्चय कर लिया है। इन रियासतों में से आठ ने पहले दक्षिण-स्टेट-यूनियन बनाली थी, वह सारी यूनियन बम्बई प्रान्त में मिल गई है। कोल्हापुर

अभी कुछ समय एक पृथक् राज्य के रूप में रहने वाला है। वहाँ उत्तरदायी शासन की स्थापना हो गई है। शेष राज्यों के बम्बई प्रान्त में मिल जाने से इन राज्यों की उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो जायगा और इनके निवासियों को अपनी प्रगति के लिए सब प्रकार की सुविधाएँ मिल जायँगी।

आसाम के राज्य

आसाम में सबसे बड़ी रियासत मणिपुर है। इसका क्षेत्रफल ८६२० वर्गमील, जनसंख्या पाँच लाख से कुछ अधिक और वार्षिक आय लगभग तीस लाख रुपए है। शासन जनता के प्रति उत्तरदायी किए जाने का प्रयत्न चल रहा है।

मणिपुर के अतिरिक्त यहाँ १५ खासी रियासतें हैं। ये बहुत छोटी-छोटी हैं। इन सबका क्षेत्रफल ३,८०० वर्गमील है, जनसंख्या दो लाख से कुछ अधिक, और वार्षिक आय चार लाख रुपए से कुछ ऊपर है। इन रियासतों के शासक भारतीय संघ में शामिल हो गए हैं। उनके प्रवेश-पत्र को स्वीकार कर भारत-सरकार ने इन राज्यों को कुछ विषयों के सम्बन्ध में भारतीय प्रान्तों में सम्मिलित होने की आज्ञा दे दी है।

× × ×

राजाओं की दूरदर्शिता—ऊपर बताया गया है कि कितनी ही रियासतें प्रान्तों में मिल गई हैं, और दूसरी रियासतों में इसका विचार हो रहा है। इनके राजाओं ने जनता के प्रति पहले चाहे जैसा व्यवहार किया हो, उनका अपनी रियासतों का शासन-प्रबन्ध भारत-सरकार के हवाले कर देना अवश्य ही उनकी दूरदर्शिता है। वे जनता के प्रेम और आदर के अधिकारी बन गए हैं। साथ ही, जिनके राज्य बहुत ही छोटे या नाममात्र के हैं, उन्हें छोड़ कर शेष राजाओं को अपने लिए

तथा अपने राजवंश के भरण-पोषण के लिए रियासतों की आय का एक निश्चित अंश बिना किसी वाद-विवाद के मिलता रहेगा, और वे अपनी निजी सम्पत्ति का भी उपयोग कर सकेंगे। यदि उनमें कुछ योग्यता और कार्यकुशलता होगी तो वे जनता की विवध क्षेत्रों में सेवा करके, अपने प्रदेश की उन्नति में भी भाग ले सकेंगे। निदान, राजाओं का यह निर्णय स्वयं उनके लिए भी हर प्रकार से लाभदायक है; जनता के लिए तो हितकर है ही।

विशेष वक्तव्य—देशी राज्यों के सम्बन्ध में यह समय विलक्षण परिवर्तन का है। १५ अगस्त १९४७ के बाद सरदार पटेल ने रियासती विभाग सँभाला और छोटे-छोटे राज्यों को पास के प्रान्तों या कई रियासतों को मिलाकर उनका एक संघ बनाने का कार्य आरम्भ किया। इस समय (जनवरी १९४८) ५५० छोटी रियासतों में से लगभग ३८५ रियासतें या तो समाप्त हो गईं या होनेवाली हैं। इन सब रियासतों का प्रबन्ध भारतीय संघ के प्रान्तों की तरह जनतंत्र के सिद्धान्तों के आधार पर बने हुए विधान के अनुसार होगा। इस दिशा में तेजी से प्रगति होगी। भारतवर्ष के नक्शे से सैकड़ों पीले रंग के स्थान हट जायँगे। इन राज्यों में जनता की उत्तरदायी सरकार की माँग और राजाओं द्वारा उसका विरोध होने से जो संघर्ष बारबार उपस्थित होता था, वह अब गए-गुजरे जमाने की बात रह जायगी। सिर्फ उड़ीसा और छत्तीसगढ़ की रियासतों के प्रान्तों में मिल जाने से अस्सी लाख जनता मध्ययुग के शासन से मुक्ति पा गई है, और उड़ीसा तथा मध्यप्रान्त की उन्नति का रास्ता खुल गया है। जब छोटी-छोटी सब रियासतें, प्रान्तों में मिल जायँगी तो देश की राजनीतिक, आर्थिक, और शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि तथा उद्योग सम्बन्धी विविध योजनाओं को अमल में लाना कितना सुगम हो जायगा !

सताइसवाँ अध्याय

जन-जागृति और साहित्य

किसी भी प्रदेश की जनता की उन्नति और जागृति में वहाँ के साहित्य का बड़ा भाग रहता है—वह साहित्य चाहे पुस्तकों या ट्रैकटों के रूप में हो, अथवा पत्र-पत्रिकाओं के रूप में। इस अध्याय में हम इस बात का विचार करना चाहते हैं कि साहित्य ने भारत के देशी राज्यों के जन-जागरण में कहाँ तक सहायता दी है, इसके मार्ग में क्या-क्या बाधाएँ आई हैं, और इस समय इस की क्या स्थिति है, अथवा यह हमारी आवश्यकताओं की कहाँ तक पूर्ति कर रहा है। पहले पत्र-पत्रिकाओं की बात लें।

पत्र-पत्रिकाओं का महत्व—देशी राज्यों की जन-जागृति का बहुत-कुछ श्रेय उन पत्र-पत्रिकाओं के संचालकों का है, जिन्होंने अनेक कष्ट सहकर भी जनता में स्वाधीनता का सन्देश पहुँचाते रहने का व्रत लिया। कितनी ही पत्र-पत्रिकाएँ सरकारी प्रहार से या जनता की उपेक्षा से काल के कराल गाल में लीन हो गईं और विस्मृति के गर्भ में जा पहुँची, पर उनका कार्य व्यर्थ नहीं गया। उन्होंने दूसरों को रास्ता बताया; मार्ग की कुछ बाधाएँ हटाईं, अथवा कुछ सज्जनों में लोकसेवा के लिए मर-मिटने की भावना भरदी।

देशी राज्यों में पत्र-पत्रिकाओं का दमन—यों तो ब्रिटिश भारत में भी पत्र-पत्रिकाओं के संचालकों को अनेक संकटों का सामना करना पड़ा है, जैसे ग्राहकों की कमी; स्थायी स्वार्थ वालों, अन्धपरम्परा या रूढ़ि के उपासकों और कट्टरपंथियों का विरोध, तथा सरकारी

दमनकारी प्रेस-एक्ट आदि। पर देशी राज्यों में उनके संकट और भी अधिक रहे हैं। बात यह है कि ब्रिटिश भारत में थोड़ी-बहुत कानून की भावना थी, किन्तु देशी राज्यों में तो प्रायः निरंकुशता का ही बोलबाला रहा। इनके शासकों ने झूठे-सच्चे मुकदमे चला कर, सम्पादकों को मनमानी सजाएँ देकर, और उन्हें तरह-तरह से परेशान करके अपने यहाँ स्वतंत्र पत्रों का निकलना बहुत-कुछ असम्भव कर दिया। बाहर से आने वाले पत्रों में से, जिसमें उनके कामों की जरा भी आलोचना हुई, उसे राज्य के भीतर आने से रोक दिया, या उसके मँगानेवालों पर कड़ी निगाह रखी। राज्य में रहनेवाले जिस व्यक्ति पर कोई अप्रिय सम्वाद भेजने की आशंका हुई, उसे कष्ट देने के अलावा अपमानित भी किया गया। इस तरह जनता को सुधार या आजादी की हवा से वंचित रखने में कोई कसर नहीं रखी गई।

नरेन्द्र-रक्षा कानून—पहले कहा जा चुका है कि सन् १९२१ में राजाओं का संगठन नरेन्द्र-मंडल के रूप में होगया था। राजाओं ने सरकार से सन् १९२२ में नरेन्द्र रक्षा कानून (प्रिंसेज प्रोटेक्शन एक्ट) बनवा लिया। इस कानून के बनने से पहले भी ब्रिटिश भारत के पत्र-पत्रिकाओं में राजाओं की निरंकुशता और अत्याचारों पर बहुत कम प्रकाश पड़ता था, उनके दुष्कृत्यों के समाचार बाहरी जनता को बहुत कम मिलते थे। अब तो उनकी आलोचना होने में और भी कड़े बंधन लग गए। किसी समाचारपत्र के लिए देशी नरेशों के काले कारनामों के सम्बन्ध में कुछ छापना अपने ऊपर घोर संकट आमंत्रित करना होगया। रियासती सम्वाददाता की कठिनाई का उल्लेख पहले किया जा चुका है; यदि वह अपने सिर पर कफन बांध कर किसी तरह सम्वाद भेजने का साहस भी करे तो ऐसे कानून के बन जाने के कारण उसे पत्र-संचालकों का यथेष्ट सहयोग मिलने की सम्भावना और भी कम रह गई।

स्मरण रहे कि १९२२ के उपरोक्त कानून के मसविदे का देश में कड़ा विरोध हुआ था, और भारतीय व्यवस्थापक सभा ने उसे पास नहीं किया था। वायसराय ने उस पर अपनी विशेष स्वीकृति देकर उसे कानून बना डाला था।

देशी राज्य रक्षा कानून—भारत-सरकार उसी से सन्तुष्ट न रही। सन् १९३४ में उसने 'भारतीय राज्य-रक्षा-कानून' (इंडियन स्टेटस प्रोटेक्शन एक्ट) बना दिया, जो पहले कानून से भी अधिक गलाघाटू था। इसके मसविदे की प्रस्तावना में इसके उद्देश्य के विषय में कहा गया था—'भारत की रियासतों के शासन की ऐसे कार्यों से, जो उसके उलटने या उसके प्रति असन्तोष फैलाने या उसमें हस्तक्षेप करने में प्रवृत्त हों, रक्षा करने की आवश्यकता है।' परन्तु होम मेम्बर ने न तो यही बताया कि किसी देशी नरेश ने ऐसा कानून बनाने के के लिए अनुरोध किया, न किसी ऐसी विशेष परिस्थिति का ही उल्लेख किया, जिससे इस अधिक दमनकारी कानून की आवश्यकता हो गई। सन् १९२२ के बाद ब्रिटिश भारत में कोई ऐसा षड्यन्त्र नहीं हुआ, जिसका उद्देश्य किसी रियासत के सिंहासन को उलटना रहा हो। रही असन्तोष की बात, देशी राज्यों में प्रतिनिध्यात्मक और उत्तरदायी शासनपद्धति प्रचलित न होने की दशा में असन्तोष बना रहना स्वाभाविक ही था। अस्तु, १९३४ में 'देशी राज्य-रक्षा कानून' बना ही दिया गया, जिसे अ० भा० देशी राज्य लोकपरिषद् के मंत्री श्री मणिशङ्कर त्रिवेदी तथा अन्य विचारशील सज्जनों ने 'देशी राज्यों के कुशासन की रक्षा और स्थायित्व का कानून' कहा है।

देशी भाषाओं के पत्रों की दृढ़ता—यद्यपि अमृतबाजार-पत्रिका, मराठा, आदि किसी-किसी अंग्रेजी पत्र ने भी रियासतों की जनता का सच्चाई के साथ पक्ष-समर्थन करके बहुत प्रशंसनीय कार्य

किया है, खेद है कि अधिकांश अंग्रेजी पत्रों ने देशी राज्यों के सम्बन्ध में बहुत ही लज्जाजनक नीति अपनाई। राजाओं ने भी उन्हें अपना खुशामदी बनाने के वास्ते खूब धन लुटाया। इसलिए उन पत्रों में देशी राज्यों के विषय में जब कभी कुछ छपा तो राजाओं के दोषों पर पर्दा डाला गया और उनके गुणों का खूब बखान किया गया।

इसके विपरीत, हिन्दी आदि देशी भाषाओं के पत्रों के लिए यह बड़े गौरव की बात है कि उनके सम्पादकों और संचालकों ने भारी जोखिम उठा कर भी रियासती प्रजा के पक्ष का समर्थन किया और अपने महान उत्तरदायित्व को निभाया। यद्यपि ऐसे भी उदाहरण मिले हैं कि इन भाषाओं के पत्र का कोई सम्पादक लोभ, लालच या अधिकारियों की धौंस में आकर अपने कर्तव्य से भ्रष्ट हो गया, तथापि इनमें से अधिकांश पत्रों ने सरकारी दमन की परवा न कर देशी राज्यों सम्बन्धी समाचार और टिप्पणियों को जी खोल कर प्रकाशित किया और इस प्रकार रियासती जन-जागृति में महत्वपूर्ण भाग लिया। कुछ पत्र तो इस कार्य को ही अपने जीवन का उद्देश्य बनाकर कार्य-क्षेत्र में आए।

देशी राज्यों सम्बन्धी पत्र और ब्रिटिश भारत— पहले की तो बात ही क्या, सन् १६४० तक भी बहुत कम राज्यों ने अपनी सीमा में जन-जागृति करनेवाले लोकप्रिय पत्रों का निकलना सहन किया। राजपूताने में तो किसी-किसी राजा ने अपने यहाँ से साइक्लोस्टाइल से निकाले हुए पत्रकों पर भी प्रेस-एक्ट लागू कर दिया। ऐसे कठोर बन्धनों का परिणाम यह हुआ कि जिस किसी सज्जन को राजपूताने में पत्र चलाना हुआ, उसे अपना कार्यालय ब्रिटिश इलाके में—अजमेर-मेरवाड़े में—रखना पड़ा। 'राजस्थान', 'नवीन राजस्थान', 'तरुण राजस्थान', 'राजस्थान सन्देश', या 'यंग राजस्थान' (अंग्रेजी) आदि

पत्रों का अजमेर या ब्यावर से प्रकाशित होने का यही कारण है कि यहाँ राजपूताने के राज्यों की सी निरंकुशता नहीं थी; यों तो चीफ-कमिश्नर का शासन भी प्रायः पत्रों के लिए काफी गलाघोंटू रहा है। इसी प्रकार मध्यभारत के राजनीतिक पत्रों को ग्वालियर और इन्दौर जैसे उन्नत कहे जानेवाले राज्यों में भी आश्रय नहीं मिलता था; उन्हें अपना कार्यालय खंडवा में रखने का निश्चय करना पड़ा, खासकर इसीलिए कि खंडवा ब्रिटिश भारत में है। जो बात राजपूताना और मध्यभारत के बारे में कही गई है, वही कुछ कम ज्यादा दूसरे देशी राज्यों के बारे में रही है।

ब्रिटिश भारत से संचालित किए जाने पर भी किसी पत्र को अपना जीवन निष्कंटक होने और अपना उद्देश्य पूरा करने की पूरी आशा नहीं होती थी। एक तो कोई राजा जब चाहे ऐसे पत्र का अपने राज्य में आना बन्द कर सकता था; दूसरे, ब्रिटिश भारत के अधिकारी भी उससे स्वयं या किसी राजा की प्रेरणा से अपनी अप्रसन्नता सूचित कर सकते थे। खासकर नरेन्द्र रक्षा कानून से उनको पत्रों पर प्रहार करने का अच्छा साधन मिला हुआ था।

ब्रिटिश भारत के रियासती पत्र और पत्रकार— ब्रिटिश भारत से निकलनेवाले ऐसे पत्रों में कानपुर के साप्ताहिक 'प्रताप' का मुख्य स्थान रहा है। इसके सम्पादक स्व० श्री गणेशशंकर जी विद्यार्थी ने अनेक बार बड़ी जोखम और कठिनाइयाँ उठा कर रियासती जनता सम्बन्धी समाचार और टिप्पणियाँ प्रकाशित कीं। उन्हें कभी भारी प्रलोभन दिया गया, और कभी बहुत भय दिखाया गया। पर वे सदा सत्य और न्याय के ही मार्ग पर चलते रहे। 'प्रताप'-परिवार में सर्वश्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, श्रीराम शर्मा, दशरथप्रसाद द्विवेदी, देवव्रत शास्त्री, बालकृष्ण शर्मा

'नवीन', युगलकिशोरसिंह जी आदि सज्जन रहे हैं; इन्होंने पीछे विविध स्थानों में, जुदा-जुदा राष्ट्रीय पत्रों में महत्वपूर्ण कार्य किया और कर रहे हैं। 'प्रताप' अब श्री० विद्यार्थी जी के सुपुत्र श्री० हरिशंकर जी की देखरेख में दैनिक रूप में निकल रहा है।

'अर्जुन' ने भी रियासती जनता की सेवा में अच्छा भाग लिया है। यह अप्रेल १९२३ से निकलने लगा। इसका कार्यालय देहली में था, जो राजपूताना और मध्यभारत का निकटवर्ती प्रधान नगर होने के अलावा देश की राजधानी भी थी। जब-जब जिस-जिस रियासत में शासकों का प्रजा पर अत्याचार हुआ, अर्जुन ने समाचारों, सम्वादों सम्पादकीय लेखों और टिप्पणियों द्वारा उसका खूब विरोध किया। अर्जुन का रियासती अङ्क देशी राज्यों सम्बन्धी उपयोगी सामग्री से पूर्ण है। ब्रिटिश भारत के और भी कई पत्रों ने समय-समय पर अपने 'देशी राज्य अङ्क' प्रकाशित किये हैं।

उत्तर और मध्य भारत के पुराने रियासती पत्रकारों में श्री० विजयसिंह जी पथिक का भी विशेष स्थान है। आपने समय-समय पर विविध पत्रों का सम्पादन किया। राजपूताने के जन-जागरण सम्बन्धी सम्भवतः पहले पत्र, राजस्थान केसरी, के सम्पादक आप ही थे। यह साप्ताहिक था, और वर्धा से निकला था। इसके बाद आपने अजमेर से विविध पत्रों का सम्पादन किया। आखिर में आपका 'नव संदेश' आगरे से प्रकाशित हुआ।

श्री० सत्यदेव जी विद्यालंकार भी बहुत पुराने पत्रकार हैं। श्री० पथिक जी के वर्धा से आजाने पर 'राजस्थान केसरी' का सम्पादन आपने ही किया था। पीछे समय-समय पर आप दूसरे कई पत्रों के सम्पादक रहे। पिछले वर्षों में आपने 'हिन्दुस्तान', 'विश्वमित्र' और 'नव भारत' दैनिकों का सम्पादन किया, और देशी राज्यों के सम्बन्ध में खूब लिखा।

गुजराती पत्रकारों में श्री० अमृतलाल सेठ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। बम्बई से निकलनेवाले आपके 'जन्मभूमि' दैनिक पत्र ने रियासती जनता के हित के लिए अपनी पूरी शक्ति लगाई। आप के प्रेस का नाम ही 'स्टेट्स पीपल्स प्रेस' है, जिससे अ० भा० देशी राज्य लोक परिषद का पाक्षिक मुख पत्र 'स्टेट्स पीपल' प्रकाशित हुआ। श्री० सेठ जी ने रियासती कार्यकर्ताओं से क्रियात्मक सहानुभूति रखी और वे उन्हें भरसक सहायता देते रहे हैं।

ब्रिटिश भारत के सब रियासती पत्रों और पत्रकारों की सूची देना हमें अभीष्ट भी हो तो वह यहाँ सम्भव नहीं है। इस समय तो कितने ही पत्र रियासती जनता की महत्वपूर्ण सेवा कर रहे हैं। ये स्थान-भेद के अनुसार हिन्दी, उर्दू, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में निकलते हैं। अंगरेजी में भी कुछ पत्र रियासतों सम्बन्धी विषयों की विशेष चर्चा करते हैं। और, ज्यों-ज्यों जागृति बढ़ती जाती है, किसी भी भाषा के अच्छे पत्र रियासती विषयों की उपेक्षा नहीं कर सकते।

देशी राज्यों के पत्र और शासक—समय बहुत बदल गया है, और बहुत तेजी से बदल रहा है। उसकी लहर देखकर राजा महाराजा अपने-अपने राज्य में पत्रों के प्रकाशित होने की इजाजत दे रहे हैं, पर मालूम होता है कि इसमें उनकी कुछ अनिच्छा ही है। सुविधाएँ देने की बात तो दूर, वे समय-समय पर कुछ अकल्पित बाधाएँ डालते रहते हैं। दुनियाँ भर में अपनी उदारता-भरी बातों की विज्ञप्ति करनेवाले भूतपूर्व बीकानेर महाराज ने अपने समय तक कोई पत्र अपने राज्य से निकलने न दिया। और, इस समय के महाराज उनका अनुकरण करते हुए चाहे जिन पत्रों का अपने यहाँ आना बन्द करने का अभिमान करते हैं। मध्यभारत के उन्नत कहे जानेवाले इन्दौर राज्य में कितने ही पत्रों का बहुत वर्षों तक आना बन्द रहा है। विशेष आश्चर्य और खेद इस बात का है कि जब किसी पत्र का

एक देशी राज्य में प्रवेश बन्द कर दिया जाता है तो फिर उसके लिए सहज ही दरवाजा खुलने की आशा नहीं होती। अधिकारियों को इस बात की कोई चिन्ता नहीं होती कि वे निषिद्ध पत्रों की सूची का कभी संशोधन करें। हमारे सामने अनेक उदाहरण इस प्रकार के आए हैं कि पत्र का प्रकाशन बन्द हुए बहुत समय बीत गया, तो भी वह राज्य की निषिद्ध पत्रों की सूची में बना ही रहा।

कुछ रियासतें ऐसी रही हैं कि उनके शासकों ने अपने यहाँ से निकलनेवाले पत्रों में चाहे अपनी आलोचना एक सीमा तक सहन भी करली, पर यह पसन्द नहीं किया कि उनमें किसी दूसरे ऐसे राज्य सम्बन्धी कोई अप्रिय सम्वाद या आलोचना छपे, जिससे उनका दोस्ताना सम्बन्ध है। निदान, अभी तक बहुत सी रियासतों में एक स्वतंत्र पत्र निकालना कुछ आसान काम नहीं रहा है। इन रियासतों के ऐसे सज्जनों को जो पत्रकार-कला में रुचि रखते हैं, अपनी योग्यता का उपयोग करने के लिए दूसरे स्थानों की शरण लेनी पड़ती है। यही कारण है कि हमें ब्रिटिश भारत के उच्च कोटि के पत्रकारों में कितने ही रियासती सज्जनों के नाम मिलते हैं।

कार्यकर्ता और पत्रकार-जीवन—बहुत से रियासती कार्यकर्ताओं ने समय-समय पर पत्रकार का जीवन बिताया है, और कितने ही पत्रकार पीछे रियासती आन्दोलन में प्रमुख भाग लेने लगे हैं। जो सज्जन राष्ट्रीय आन्दोलनों में लग जाते हैं, उन्हें प्रायः पत्रकार या साहित्यकार के शान्त और गम्भीर कार्य के लिए सुविधा नहीं रहती। उदाहरण के लिए श्री० जयनारायण जी व्यास ने (जो इस समय अ० भा० दे० रा० लोक परिषद के प्रधान मंत्रियों में से हैं।) पहले ब्यावर के 'राजस्थान' नामक साप्ताहिक का, और बम्बई से निकलने वाले 'अखंड भारत' दैनिक पत्र का सम्पादन किया, पर पीछे आन्दोलन में लगे रहने के कारण आपका पत्रकार का कार्य परिमित ही रहा।

इस प्रकार हमारे अनेक महानुभाव अभी तक प्रायः आन्दोलनों में लगे रहे। अब भारतवर्ष स्वाधीन होगया है, और रियासती क्षेत्रों में उत्तरदायी शासन की स्थापना होती जा रही है, आशा है कि हमारे अधिकाधिक विद्वानों की शक्ति पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन और संचालन के लिए मिल सकेगी।

हमारी आवश्यकताएँ—अनेक विघ्न-बाधाओं के होते हुए भी रियासतों में पत्रों और पत्रकारों की संख्या बढ़ती जारही है। तो भी पत्र पत्रिकाओं के विषय में अभी बहुत उन्नति की आवश्यकता है। हरेक बड़ेराज्य से कम से कम एक साप्ताहिक तो बहुत अच्छा निकले, जिसमें स्थानीय जनता के जागरण और उत्थान के लिए यथेष्ट सामग्री हो, जो वहाँ की जनता का वास्तव में मुखपत्र हो। कुछ पत्र ऐसे निकलने चाहिएँ जो सभी रियासतों सम्बन्धी मुख्य-मुख्य बातों की जानकारी दें तथा उनकी विविध समस्याओं पर यथेष्ट प्रकाश डालें। ऐसे पत्रों का अच्छी तरह स्वतंत्रता-पूर्वक सम्पादित होना आवश्यक है।

रियासतों सम्बन्धी दैनिक पत्रों की संख्या क्रमशः बढ़ रही है, इनकी भी बहुत उन्नति होने को आवश्यकता है। ऐसे मासिक पत्रों की तो बहुत ही कमी है, जिनमें रियासतों के शासन, उद्योग, कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि विषयों का खुलासा विवेचन हो। लगभग बीस वर्ष हुए अजमेर से हिन्दी में 'त्यागभूमि' नाम की मासिक पत्रिका निकली थी। उसके सम्पादक सुप्रसिद्ध रियासती कार्यकर्ता श्री० हरिभाऊ जी उपाध्याय थे। उन्हें श्री० मुकटविहारीलाल, शोभालाल गुप्त, कृष्णचन्द्र विद्यालंकार आदि सज्जनों का सहयोग प्राप्त था। वह पत्रिका उस समय के विचार से बहुत अच्छी निकली थी। अब तो जमाना बहुत आगे बढ़ गया है। उससे भी अच्छी पत्रिकाओं के प्रकाशन की व्यवस्था

होनी चाहिए।

यहाँ एक विशेष बात यह कहनी है कि अब तक समाचार-पत्रों ने स्वतंत्रता-प्राप्ति के संघर्ष में सहयोग दिया। अब भारतवर्ष स्वतंत्र हो गया है; नवीन परिस्थिति में हमारे पत्र-पत्रिकाओं को राष्ट्र-निर्माणकारी अर्थात् रचनात्मक कार्यों में सहयोग देना चाहिए। साथ ही यह भी विचारणीय है कि अब जो सार्वजनिक कार्यकर्ता सत्ता प्राप्त कर शासन-प्रबन्ध में लगें, उनका यथेष्ठ पथप्रदर्शन हो, उनपर जनमत का अंकुश रहे। यह कार्य कुछ आसान न होकर भी हमारे स्वतंत्र पत्रकारों के करने का है। उन्हें संगठित होकर अपना उत्तरदायित्व पूरा करना चाहिए।

× × ×

पुस्तक-पुस्तिकाएँ—हम भारतीय रियासतों सम्बन्धी यहाँ की विविध भाषाओं के साहित्य का परिचय देने में असमर्थ हैं। हिन्दी के ऐसे साहित्य का ब्योरेवार परिचय हमारी तथा श्री दयाशंकर जी दुबे की लिखी 'हिन्दी में अर्थशास्त्र और राजनीति साहित्य' पुस्तक में दिया गया है, जिसका संशोधित संस्करण सन् १९४६ में प्रकाशित हुआ। यहाँ हम उसे न दोहरा कर इस विषय की कुछ खास-खास बातों का जिक्र करते हैं।

हमें कैसा साहित्य चाहिए?—रियासती जनता को स्वराज्य प्राप्त करना, और उसे बनाए रखना, उसकी रक्षा करना, तथा स्वावलम्बी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्वाभिमान और नागरिक गुणों का परिचय देना है। इसके लिए आवश्यक है कि यहाँ के निवासी क्रान्ति और सुधार मूलक तथा रचनात्मक साहित्य पढ़ें और मनन करें, जिससे वे अपने-अपने राज्य के लिए तथा भारतवर्ष के लिए अधिक से अधिक उपयोगी बनें। हमें इस समय ऐसा साहित्य चाहिए जिससे हमारी इस समय की ज्वलंत समस्याएँ हल हों, हम योग्य नागरिक बनें, हम अपने राज्य की शासनपद्धति में यथेष्ट भाग लें, अपने राज्य

को आर्थिक दृष्टि से ऐसा स्वावलम्बी बनावें कि लोगों को भूख-प्यास का कष्ट न रहे, रोजमर्रा की चीजोंके लिए हम दूसरे देशों के आश्रित न रहें।

राजनीतिक आन्दोलन—देशी राज्यों में राजनीतिक आन्दोलन बहुत समय से हो रहा है। कुछ जन-आन्दोलन तो बहुत ही विशद और शिक्षाप्रद हैं। रियासती अधिकारियों ने आन्दोलन को दबाने के लिए कैसे-कैसे गैर-कानूनी, भले-बुरे और ओछे उपायों का आसरा लिया; जनता ने कितनी दृढ़ता दिखाई; और किस समय कैसी कमजोरी का परिचय दिया, किन-किन कार्यर्ताओं ने अपने अनुपम त्याग और बलिदान से चिरस्मरणीय उदाहरण छोड़ दिया; स्त्रियों ने अपने साहस और कष्ट-सहन से तथा अपनी विलक्षण सूझबूझ और चतुराई से अधिकारियों को किस प्रकार चकित कर दिया, आन्दोलन से कहाँ तक सफलता मिली, और यदि वह असफल रहा तो उसके क्या कारण थे, इन बातों का शुरू से अबतक का पूरा सिलसिलेवार वर्णन एक भी राज्य का प्राप्त नहीं है। समय-समय पर कुछ खास-खास सामयिक घटनाओं सम्बन्धी कुछ पुस्तिकाएँ प्रकाशित कीगई हैं, पर इनसे उपरोक्त आवश्यकता पूरी नहीं होती।

विशेष वक्तव्य—रियासती जन-जागृति सम्बन्धी साहित्य की सामग्री बहुत बिखरी हुई रही है, उसे संग्रह करके सुरक्षित रूप में रखने का यथेष्ट प्रयत्न नहीं हुआ। कुछ सामग्री तो समय-समय पर जप्त होगई या खराब होती रही। फिर, सन् बयालिस के आन्दोलन में बहुत सी सामग्री नष्ट कर दी गई। अब उसे फिर से पूरी तरह जुटाना तो सम्भव ही नहीं है। हाँ, जहाँ-तहाँ कुछ कार्यकर्ता विद्यमान हैं, जिन्हें आन्दोलनों सम्बन्धी बहुत सी बातों की याद बनी हुई है। इनमें से कुछ अच्छे लेखक या सम्पादक रह चुके हैं, अथवा इनकी साहित्यिक

मनोवृत्ति है। ये सज्जन किसी तरह अपनी दूसरी इच्छाओं और प्रवृत्तियों पर संयम रख कर तथा जैसे-तैसे कुछ अवकाश निकाल कर आवश्यक साहित्य जुटाने में लग जायँ तभी कुछ काम हो सकता है। आशा है, इस कार्य की उपयोगिता और महत्व का विचार करके इस ओर समुचित ध्यान दिया जायगा। पाठकों को चाहिए कि वे इस साहित्य की ऐसी माँग करें कि योग्य लेखकों और प्रकाशकों को उसे तैयार करने के लिए यथेष्ट प्रोत्साहन मिले।

अठ्ठाइसवाँ अध्याय

उपसंहार

न त्वहं कामये राज्यं न च स्वर्गं न पुनरभवम्।
कामये दुःख तप्तानां प्राणिनामार्तिं नाशनम्॥

अर्थ—न तो मुझे राज्य चाहिए, न स्वर्ग चाहिए, और न मोक्ष चाहिए। मेरी तो एक यही कामना है कि दुख से पीड़ित प्राणी मात्र का दुःख दूर हो।

पीछे की ओर नजर—भारतवर्ष के देशी राज्यों के सम्बन्ध में सन् १८५७ के स्वाधीनता संग्राम का खास महत्व है। इस समय अंगरेज छल-बल, कौशल से लगभग दो-तिहाई भारतवर्ष पर अधिकार जमा चुके थे। वे चाहते तो शेष एक-तिहाई भारत के राजाओं को भी किसी-न किसी प्रकार समाप्त कर देते, परन्तु सोच-विचार कर उन्हों ने, अपने स्वार्थ की दृष्टि से, ऐसा करना ठीक नहीं समझा। सन् १८५७ में राजाओं ने उन्हें मदद दी थी, और आगे भी उनसे मदद मिलने की आशा थी। इस लिए ब्रिटिश सरकार ने कुछ पुरानी रियासतों

को ही नहीं बनी रहने दिया, कुछ नई रियासतें भी बना डालीं। अंगरेजी राज में रियासती शासकों ने प्रायः अंगरेज-प्रभुओं को ही अपना 'पितु,मातु, सहायक. स्वामी, सखा' समझा, और जैसे भी बना, उन्हें प्रसन्न रखने की कोशिश की। राजाओं ने जनता की उपेक्षा की, और उसपर तरह-तरह के अत्याचार किया। उन्होंने समझ लिया कि 'सैयाँ भए कोतवाल, अब डर काहे का।'

रियासती जनता पिछड़ी रह गई—जनता ने समय-समय पर अपने उत्थान की चेष्टा की पर उसके प्रयत्न बुरी तरह दबा दिए गए। बहुत से राजाओं के साधन इतने कम थे कि वे अपनी शक्ति से जनता का नियंत्रण करने में असमर्थ रहते, परन्तु राजाओं की सहायता के लिए, जब तक कि वे ब्रिटिश सरकार के कृपापात्र रहें, ब्रिटिश सेना की शक्ति मौजूद थी। इस प्रकार रियासती कार्यकर्ताओं को बहुधा निराश होना पड़ा। यों तो ब्रिटिश भारत में भी जनता की शिक्षा, स्वास्थ्य, आजीविका आदि की व्यवस्था बहुत कम हुई, सरकार को हमेशा साम्राज्य की रचना और अंगरेज अफसरों की खुशहाली की इतनी फिक्र रही कि सेना आदि में खूब धन खर्च करने के बाद भारतीय राष्ट्र-निर्माणकारी कार्य के लिए उसके पास हमेशा ही रुपए की कमी रही। परन्तु ब्रिटिश भारत में थोड़ा बहुत जितना भी काम हुआ, रियासतों में उतना भी नहीं हो पाया। राजाओं को सब से पहले तो अंगरेजों की कृपा-दृष्टि प्राप्त करनी थी, अपनी ऐयाशी और भोग विलास आदि की व्यवस्था करनी थी। इन दो मदों में रियासत की आमदनी का बड़ा हिस्सा खर्च होजाता; स्कूल, अस्पताल, सड़कों, रेल आदि का काम उनके लिए विशेष महत्व का न था; यों दिखाने के लिए कभी-कभी उन्होंने इस दिशा में कुछ कर दिया तो यह उनकी मेहरबानी रही। इसका नतीजा यह होना ही था कि कुछ खास अपवादों को छोड़कर

रियासती जनता, अपने पड़ोस की ब्रिटिश भारत की जनता से हर एक बात में पिछड़ी रही।

जन-आन्दोलन और उनका दमन—लोकसेवी, सहृदय सज्जनों से अपने भाइयों के अभाव और कष्ट नहीं देखे जा सके। उन्होंने अनेक संकटों का सामना करके, भूख-प्यास, सर्दी गर्मी सहकर और अनेक बार अपनी जान जोखम में डाल कर जन-जगृति का प्रयत्न किया। इसके फल-स्वरूप शासकों की ओर से उन्हें मार-पीट, जेल, राज्य-निकाला, और फांसी आदि की सजाएँ मिलना स्वाभाविक ही था। अनेक स्थानों में लाठी-वर्षा और गोली कांड भी हुए है। उनकी कथा अनन्त है। वास्तव में देशी राज्यों में जो जन-जागृति हुई है, उसके लिए जनता को काफी कीमत चुकानी पड़ी है।

ब्रिटिश सरकार का रुख—इसका मुख्य कारण यह रहा ब्रिटिश सरकार सदा यहाँ के राजा-महाराजाओं की पीठ ठोकती रही। उसे साम्राज्यशाही के भक्तों की आवश्यकता थी, वह अपने इन लाडले सरदारों पर कृपा दृष्टि क्यों न रखती, जो अपनी रंग-बिरंगी भड़कीली पोशाक, बहुमूल्य हीरे जवाहरात वाले मुकट और बांकी छटा से न केवल भारतवर्ष या ब्रिटिश साम्राज्य में वरन् अन्य देशों में भी उसके प्रभुत्व के जीते-जागते और चलते फिरते विज्ञापन थे। निदान ब्रिटिश अधिकारियों ने रियासतों को, राजनीतिक दृष्टि से, शेष भारत से अलग ही रखने का प्रयत्न किया। 'ब्रिटिश' भारत में तो थोड़े-बहुत सुधार हुए भी, पर रियासतें तो यहाँ के सामंती शासकों की दया पर छोड़ दी गयी। सन् १९०६ में, बंग-भंग आन्दोलन से भारतवर्ष में राजनीतिक उथलपुथल की जबरदस्त लहर आई, परन्तु भारत-सरकार ने रियासती शासकों को हिदायत करदी कि

वे अपने-अपने क्षेत्र में इसे फैलने न दें। इस पर कई रियासतों में 'राजद्रोह'-कानून बनाए गए।

योरपीय महायुद्ध—पहले योरपीय महायुद्ध (१९१४-१९) ने दूसरे देशों के साथ भारतवर्ष में जन-जागृति की प्रेरणा की। ब्रिटिश भारत में शासन-सुधारों का आन्दोलन हुआ, और आखिर कुछ सुधार हुए। इन बातों का प्रभाव रियासतों पर भी पड़ा। परन्तु राजा लोग प्राय: ब्रिटिश भारत से कुछ न कुछ पीछे ही रहनेवाले थे; किसी-किसी ने ब्रिटिश भारत के अधूरे से सुधारों में भी कुछ काँट-छाँट करने की की योजना बनाई, और उसे धीरे-धीरे बहुत सावधानी से अमल में लाने का विचार किया, और बहुतों ने वह भी नहीं किया। कितने ही राजाओं ने तो अपनी रियासतों में सन् १९२१-२२ के असहयोग आन्दोलन का प्रभाव रोकने के लिए विशेष प्रेस-कानून आदि बना डाले।

लोक संगठन; विविध संस्थाएँ—क्रमश: विविध रियासतों में लोक-संगठन होता गया। भारतवर्ष की समस्त रियासती जनता के लिए एक केन्द्रीय संगठन की आवश्यकता ने सन् १९२७ में अ० भा० दे० रा० लोक परिषद की स्थापना कराई। सन् १९३० के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में कई रियासतों की जनता ने भी भाग लिया। अलग-अलग राज्यों में काम करनेवाले प्रजामण्डल, प्रजा परिषद, स्टेट-कांग्रेस आदि राजनीतिक संस्थाओं का विस्तार होता रहा। खासकर सन् १९३७ से इन संगठनों की बहुत वृद्धि हुई।

ये संस्थाएँ अपने-अपने क्षेत्र के शासकों के सामने जनता की उचित और न्यायपूर्ण माँगें रखती रही हैं। अधिकारियों की उपेक्षा, शिथिलता अथवा विरोध की दशा में इन्हें एक-एक बार ही नहीं, कई-कई बार संघर्ष लेना पड़ा है। कितनी ही संस्थाएँ तो अपने जीवन के

कई-कई वर्ष गैरकानूनी रहीं, और उनके कार्यकर्ता जेल में या नजरबंद रहे। इस प्रकार जनता अपने इन सेवकों से लाभ उठाने के अवसर से बहुत-कुछ वंचित रही। फिर कार्यकर्ताओं ने और उनके परिवार वालों ने जो मुसीबतें सहीं, वे रहीं अलग।

शासकों की अनुदारता—इन महानुभावों के त्याग और कष्ट-सहन के फल-स्वरूप कहीं तो केवल स्कूल और अस्पताल आदि ही स्थापित किए गए, और कहीं म्युनिसपेलटियाँ या पंचायतें आदि बनाई गईं। इन बातों में शासकों का मुख्य उद्देश्य यही रहा कि लोगों को यह मालूम हो कि हमारे राज्य में भी कुछ सुधार हो रहा है। वास्तव में अधिकांश राजा लोग जनता को अधिकार देने में बहुत कंजूस रहे हैं। इस का प्रमाण यही है कि अब प्रगति का युग होने पर भी कितनी ही रियासतों में उनकी राजधानी के सिवाय और कहीं कोई म्युनिसपेलटी नहीं है, और वह म्युनिसिपेलटी बोर्ड भी एक सरकारी कमेटी सी है, उस की न तो स्वतंत्र आय ही विशेष है, और न वह अपनी इच्छानुसार खर्च ही कर सकती है। उसमें नामजद सदस्यों और अधिकारियों का बोलबाला होता है, तथा उसे बात-बात में सरकारी स्वीकृति लेने की आवश्यकता रहती है।

यह सोच कर कि जनता को साथ लिए बिना शासन चलना दिनों-दिन कठिन होता जाता है, कुछ रियासतों के शासक और आगे बढ़े; उन्होंने शासन में जनता का सहयोग हासिल करने के नाम पर सलाहकार-बोर्ड या नाममात्र की व्यवस्थापक सभा स्थापित करने की कृपा की। परन्तु इसमें भी उनकी मुख्य भावना यही रही कि किसी तरह आन्दोलकों का मुँह बन्द किया जाय, वे लोकमत को बहुत उत्तेजित न कर सकें। इन सलाहकार बोर्डों या व्यवस्थापक सभाओं के संगठन में निर्वाचन को बहुत कम स्थान दिया गया। इन्हें शासन-प्रबन्ध या

सरकारी खर्च को नियंत्रित करने का अधिकार न रहा। इनके होते हुए भी अधिकारी अपने पुराने रवैये पर चलते रहे।

उत्तरदायी शासन की माँग—ब्रिटिश भारत में विदेशी शासन से मुक्ति पाने का आन्दोलन बढ़ता गया। अगस्त सन् १९४२ में कांग्रेस ने 'भारत-छोड़ो' प्रस्ताव द्वारा जनता की स्पष्ट माँग सूचित करदी। इससे रियासतों में भी निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासन को बदल देने का आन्दोलन बढ़ना स्वाभाविक था। यहाँ जनता ने राजाओं को वैधानिक शासक रखते हुए भी पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना का ध्येय रखा। सन् १९४५ के अन्त में अ० भा० दे० रा० लोक-परिषद का पहली ही बार एक देशी राज्य (उदयपुर) में अधिवेशन हुआ, तो श्री० जवाहरलाल जी नेहरू के सभापतित्व में रियासतों के प्रजामंडलों ने संगठित रूप से उत्तरदायी शासन की माँग की—जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों की व्यवस्थापक सभाएँ बनाई जायँ, उन्हें शासन और सरकारी व्यय को नियंत्रण करने का पूर्ण अधिकार हो, राजाओं का निजी खर्च निर्धारित किया जाय, शासन और न्याय विभाग जुदा-जुदा हों, जनता के जान माल की रक्षा हो तथा उसे भाषण, सम्मेलन आदि के सब नागरिक अधिकार प्राप्त हों।

स्वाधीन भारत और दूरदर्शी राज्य—सन् १९४५ के बाद भारतीय राजनीति में परिवर्तन बहुत तेजी से हुए हैं। अगस्त सन् १९४७ में तो भारतवर्ष स्वाधीन ही होगया, यद्यपि इसके दो टुकड़े होगए—भारतीय संघ और पाकिस्तान। अस्तु, अब रियासतों के शासकों को ब्रिटिश सत्ता का सहारा या संरक्षण न रहा। कुछ राजाओं ने समय की गति को पहिचान कर अपने शासनतंत्र में कुछ हेरफेर करने की ओर कदम बढ़ाया। उन्होने अपने मंत्रिमंडल में राज्य के प्रजा-मंडल या लोक परिषद आदि संस्था के प्रतिनिधियों को भी, प्रायः

उन्हें अल्पमत में रखते हुए, स्थान दिया। लोकसंस्थाओं ने इसे संतोषजनक न मानते हुए अधिकतर सहयोग की भावना से काम लिया। दूरदर्शी राजा सत्ता का मूल स्रोत जनता को मानते हुए शासन का स्वरूप तेजी से बदल रहे हैं। उन्होंने उत्तरदायी शासन को लक्ष्य में रख कर राज्य का नया विधान बनाने के लिए वास्तविक विधान-सभाओं का संगठन कर दिया है। छोटे-छोटे राज्यों के शासकों को इतने साधन ही प्राप्त नहीं है कि वे प्रगतिशील उत्तरदायी शासन सम्बन्धी जनता की आवश्यकताएँ पूरी कर सकें। उनमें से कुछ ने रोज़-रोज़ के जनता के साथ होनेवाले संघर्ष से बचने के लिए अपने राज्य को पास के प्रान्त मे मिला देना ही ठीक समझा।

कुछ राजाओं के ओछे कार्य—परन्तु बहुत से शासकों की नीति में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ। वे बदलते हुए जमाने को देखते हैं, पर अपने पुराने संस्कार से छुटकारा नहीं पाते। वे अब खुले-आम मारधाड़, लाठीचार्ज, गोलीकांड या निर्वासन तो नहीं कर रहे हैं, पर जागृति को मिटाने के लिए भयंकर और ओछे उपायों को काम में लाने से नहीं चूकते। कितने ही राज्यो में प्रजामंडल आदि राष्ट्रीय संस्थाओं के मुकाबले में हिन्दू सभा, क्षत्रिय सभा, जाट सभा, सनातन धर्म सम्मेलन, अंजुमन मुसलमीन आदि साम्प्रदायिक और प्रतिक्रिया-वादी संस्थाएँ खड़ी की गईं; कहीं गुप्त रूप से गुंडे और बदमाशों को लोकविरोधी कार्यों के लिए प्रोत्साहन दिया गया।* कुछ राजा जाति-हितैषी और धर्मरक्षक बनने का अभिमान करते हैं। इन सब बातों का भीतरी लक्ष्य यह रहता है कि सत्ता उनके ही हाथ में बनी

* अलवर और भरतपुर आदि कुछ राज्यों में 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ' को प्रोत्साहन मिला, जिसका म० गांधी की हत्या में हाथ होने का पता लग रहा है।

रहे; बहुत हुआ तो थोड़े से मुट्ठी भर, आदमियों को उसमें साझेदार बना लिया जाय। इन शासकों को सर्वसाधारण की, किसानों और मजदूरों की कुछ फिक्र नहीं। ये जो छोटे-मोटे सुधार करके सुधारक होने की विज्ञप्ति करते हैं, उनसे नीचे की श्रेणी के तो क्या, मध्यश्रेणी के आदमियों का भी कुछ हित नहीं होता; उनकी जीवन-नैया उसी तरह मझधार में पड़ी रहती है।

राजा विचार करें—पर ये बातें कब तक चलेंगी! जागृति की लहर तेजी से आ रही है। राजा लोगों के उपेक्षा करने से, यह लहर रुकी नहीं रहेगी; यह तो अपना काम करके ही रहेगी। हाँ, अगर राजा लोग समय रहते अपने आपको देश-काल के अनुकूल नहीं बनाते, शासन-सत्ता जनता के प्रतिनिधियों को देकर सिर्फ वैधानिक शासन का पद ग्रहण नहीं करते तो राजाओं का अस्तित्व खतरे में है। आवश्यकता है कि राजा लोग कल्पना-जगत में न रह कर वस्तु-स्थिति का विचार करें। वे अपने आपको भारतवर्ष की सुयोग्य संतान साबित करें। वे इस देश की वर्तमान राजनीति में गौरव-युक्त भाग लें। पिछले वर्षों में उन्होंने विदेशी सत्ता का सहारा लेकर, सैनिक या पाशविक शक्ति से जनता के शरीर पर शासन किया, अब भारतवर्ष के स्वाधीन हो जाने पर भारत सरकार के संरक्षण में त्याग और सेवा से जनता के हृदय पर शासन करें, उसके हार्दिक प्रेम, आदर और सम्मान के अधिकारी बनें।

भविष्य की रूपरेखा—देशी राज्यों के भविष्य का हमारे मन में स्पष्ट चित्र है। इसमें कोई दुविधा या शंका नहीं कि भारतवर्ष के वर्तमान राज्यों में से जो बहुत ही छोटे-छोटे और नाममात्र के राज्य हैं, वे अपने पास के प्रान्तों में मिल जायंगे, या मिला दिए जायँगे। ऐसे राज्य तो सिर्फ आठ-दस ही होंगे, जो केवल अपने ही

साधनों के आधार पर, अर्थात् स्वावलम्बी रहते हुए, प्रगतिशील उत्तरदायी शासन चला सकें। कुछ राज्य ऐसे होंगे जो आपस में मिल कर अपने सामूहिक साधनों से जनता की शासन सम्बन्धी तथा आर्थिक और अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करेंगे। इनके समूहों की संख्या दस बारह होगी। निदान, राज्यों की कुल शासनिक इकाइयाँ बीस-बाईस से अधिक न होंगी। रियासती जन-जागृति और भारतीय संघ की प्रजातंत्रवादिता के परिणाम-स्वरूप इन इकाइयों के रहने की मुख्य शर्त यह होगी कि ये अपने यहाँ प्रगतिशील उत्तरदायी शासन कायम करें।

कार्यकर्ताओं का उत्तरदायित्व—सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के सुदीर्घ आन्दोलन, धैर्य, तप और त्याग के फलस्वरूप देशी राज्यों में उत्तरदायी शासन स्थापित होने की स्थिति आ गई है। अब यह कार्य तेजी से होगा। किन्तु उत्तरदायी शासन तो एक साधन मात्र है। इसकी आवश्यकता इसलिए होती है कि सारी जनता को सुख-समृद्धि और आत्मगौरव प्राप्त हो। हर एक नागरिक की भोजन, वस्त्र, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि की आवश्यकताएँ पूरी हों। लोगों में आपस में नीच-ऊँच की भावना न हो। गरीब अमीर का भेद न हो। हर एक व्यक्ति को अपनी निजी और सामूहिक उन्नति करने में कोई बाधा न हो। इस दृष्टि से विचार करें तो अभी तो कार्यकर्ताओं को समाज की विविध त्रुटियों और अभावों को दूर करने का एक साधन प्राप्त हुआ है। उत्तरदायी शासन होने की दशा में अब चोरबाजारी, मुनाफेखोरी, रिश्वतखोरी, छल-कपट, साम्प्रदायिकता, ऊँच नीच की भावना, जमींदारी और जागीरदारी तथा सामन्तशाही और पूँजीशाही के अत्याचार और शोषण को निर्मूल करने का रास्ता साफ हो गया है। हमारे कार्यकर्ताओं को यह महान कार्य करना है। अब तक हमारे

अधिकांश आदमियों का जीवन बहुत नीचे धरातल पर रहा; उसे ऊँचा उठाना है।

उदाहरण—देश में गोंड, भील, मीणे, दरोगा, संथाल, गिरासिए आदि आदिवासी कैसी दीन अवस्था में हैं! यद्यपि जहाँ तहाँ कुछ सज्जन इनके उत्थान में लगे हुए हैं, तो भी अभी बहुत काम पड़ा है।* इन पंक्तियों को लिखे जाने के समय अ० भा० दे० रा० लोक परिषद् के सदस्य श्री सारङ्गधरदास ने कहा है कि मध्यप्रान्त और उड़ीसा की जनता ने अपने राजनीतिक ध्येय की प्राप्ति कर ली है, अतः मेरा रियासतों का राजनीतिक कार्य समाप्त हो गया है। आप भविष्य में इन रियासतों के आदिवासियों के सामाजिक सांस्कृतिक और धार्मिक उत्थान के लिए काम करेंगे। आपके साथ ही श्रीमती मालती चौधरी ने भी आदिवासियों में काम करने का निश्चय किया है, वे इस कार्य के लिए 'नवजीवन मण्डल' नामक संस्था का निर्माण कर रही हैं। श्री ठक्कर बापा ने आप को इस कार्य में पूर्ण सहयोग देने का वचन दिया है।

अस्तु, हमें सर्वसाधारण के कष्ट निवारण करने के अलावा अपने पिछड़े हुए भाइयों का उत्थान करना और उन्हें योग्य नागरिक बनाना है, जिससे भारतवर्ष का प्रत्येक प्रदेश इस राष्ट्र की सुयोग्य, स्वावलम्बी और प्रगतिशील इकाई बने, और यह राष्ट्र संसार रूपी विराट परिवार की यथेष्ट सेवा और पथ प्रदर्शन करनेवाला सदस्य हो।

विशेष वक्तव्य—निदान, किसी कार्यकर्ता को भूल कर भी यह विचार अपने मन में न लाना चाहिए कि देशी राज्यों में उत्तरदायी

---

* हमने इस विषय की 'हमारी उपेक्षित जातियाँ' पुस्तक लिखना शुरू कर दिया है, सम्बन्धित सज्जनों और संस्थाओं के सहयोग की आवश्यकता है।

शासन स्थापित हो जाने भर से लक्ष्य की प्राप्ति हो गई। जैसा ऊपर बताया गया है, इससे तो जनता के कष्ट और अभाव दूर करने तथा उसकी सुख-समृद्धि में योग देने का एक साधन मात्र मिला है। सांस्कृतिक पुनर्निर्माण का कार्य तो अभी करना ही है। हमारे कार्यकर्ताओं को धन, पद, प्रतिष्ठा आदि का लोभ मोह छोड़कर अपने सेवा कार्य में लगे रहना है। उन्होंने तरह तरह की बाधाएँ और मुसीबतें सहकर देशी राज्यों में उत्तरदायी शासन स्थापित होने की स्थिति ला दी है; आशा है वे आगे भी अपनी लोकसेवा की परम्परा को अच्छी तरह निभाते रहेंगे।

अन्त में हमें प्रत्येक कार्यकर्ता से, 'विश्वमित्र' में प्रकाशित कविवर श्री अ० भिक्षु स्वामी की पंक्तियों में, यह निवेदन करना है कि—

जागरण के इन क्षणों में,
भूल कर तू सो न जाना।

आज ये अन्याय का गढ़, ध्वंस होने जा रहा है।
औ पताका हाथ में ले, न्याय बढ़ता आ रहा है॥
शेष जो भी रह गया है, अन्त उसका भी निकट है।
तू मनुज है क्या तुझे डर, देव से भी तू विकट है॥
याद है क्या तू युगों से, युद्ध करता आ रहा है।
और जय हो या पराजय, किन्तु बढ़ता जा रहा है॥
लक्ष्य की उज्ज्वल दिशाएँ, छोड़ कर तू खो न जाना।
जागरण के इन क्षणों में, भूल कर तू सो न जाना॥

परिशिष्ट

[पंजाब के राज्य, पटियाला, झींद, काठियावाड़ और गुजरात के राज्य, बीकानेर, अलवर, भरतपुर, जोधपुर, ग्वालियर, इन्दौर, टेहरी-गढ़वाल, हैदराबाद, बुन्देलखण्ड]

यहाँ कुछ राज्यों सम्बन्धी ऐसी बातों का उल्लेख करना है, जो इस पुस्तक का उनसे सम्बन्धित अंश छप जाने के बाद हुईं।

पहले (पृष्ठ ३८६) कहा जा चुका है कि कुछ राजाओं ने अपनी निरंकुशता बनाए रखने के लिए साम्प्रदायिक और प्रतिक्रियावादी तत्वों को प्रोत्साहन दिया। तथापि इस बात की स्पष्ट सूचना ता० ३० जनवरी १६४८ को महात्मा गांधी की हत्या की जाने के बाद मिली कि कुछ राजाओं की साम्प्रदायिक भावनाओं से लाभ उठाकर कुछ स्वार्थी लोगों ने कांग्रेस-नेताओं को खत्म करने और मौजूदा सरकार को उलट देने का षड्यन्त्र रचा। अलवर और भरतपुर आदि राज्यों में 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ' को पनपने का अच्छा अवसर मिला। अब भारत सरकार ने इस षड्यन्त्र को कुचलने और साम्प्रदायिकता को जड़मूल से उखाड़ने का निश्चय कर लिया है। देशी राज्यों में भी आवश्यक कार्यवाही की जा रही है। अलवर और भरतपुर की बात तो आगे कही ही गई है। आवश्यकता मालूम होने पर अन्य राज्यों में भी यथेष्ट व्यवस्था की जायगी। खासकर म० गांधी जैसे महान और सर्वप्रिय व्यक्ति के बलिदान के कारण अब जनता के अतिरिक्त राजा लोग भी ऐसी व्यवस्था का पूर्ण समर्थन कर रहे हैं। इस प्रकार देशी राज्यों से साम्प्रदायिकता का विष दूर होने में समुचित सफलता मिलने की आशा है। जन जागृति के लिए इसकी उपयोगिता स्पष्ट ही है।

× × ×

यहाँ हमें कुछ राज्यों की ऐसी बातों के सम्बन्ध में लिखना है, जो पिछले अध्यायों में नहीं दी जा सकीं। इन्हें हम उसी क्रम से लेते हैं, जिस क्रम से इस पुस्तक में इन राज्यों का विचार हुआ है। किसी राज्य सम्बन्धी यहाँ दिया हुआ अंश साधारणतया उस राज्य के वर्णन के अन्त में पढ़ा जाना चाहिए। पाठकों की सुविधा के लिए आगे प्रत्येक राज्य के नाम के साथ सम्बन्धित पृष्ठ-संख्या भी दे दी गई है।

पंजाब के राज्य (पृष्ठ १६४ और १६७)

शिमला के पहाड़ी राज्यों को मिला कर हिमाचल प्रदेश स्थापित करने का विचार हो रहा है। पूर्वी पंजाब-राज्यों का एक संघ निर्माण करने के प्रश्न पर कपूरथला, मलेरकोटला, नाभा तथा फरीदकोट राज्यों के शासकों में बहुत विचार-विनिमय हुआ है। रियासती विभाग का परामर्श लिया जा रहा है। फरीदकोट प्रजामंडल के अध्यक्ष ने कहा है कि रियासत की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं का एकमात्र हल यही है कि इसे पूर्वी पंजाब में मिला दिया जाय।

पटियाला (पृष्ठ १७८)

पटियाला राज्य प्रजामंडल के प्रधान मन्त्री सन्त इन्द्रसिंह जी चक्रवर्ती ने पटियाला के प्रधान मन्त्री को पत्र लिखा है, जिसमें राज-कर्मचारियों पर साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहित करने का गम्भीर आरोप लगाया है। प्रजामण्डल की स्थायी समिति ने माँग की है कि साम्प्रदायिक मनोवृत्ति वाले कर्मचारियों को सरकारी नौकरियों से पृथक् कर दिया जाय और साम्प्रदायिक संगठनों को सरकारी या अर्द्ध-सरकारी तौर पर मिलनेवाली सुविधाएँ और सहायताएँ तुरन्त बन्द कर दी जायँ।

झींद (पृष्ठ १८४)

यहाँ जनता ने इस राज्य को दिल्ली प्रान्त में मिलाने की माँग की है। झींद राज्य कई टुकड़ों में बँटा है; एक टुकड़ा, जो सब से बड़ा है, राजधानी से काफी दूर, दिल्ली के पड़ोस में है। प्रजामंडल तथा महाराजा में विचार-विनिमय हो रहा है, और भारत सरकार के रियासती विभाग से सम्पर्क बना हुआ है।

काठियावाड़ और गुजरात के राज्य

(पृष्ठ १८६ और १६४)

इन राज्यों के सम्बन्ध में, और खासकर सौराष्ट्र या गुजरात प्रान्त बनने की योजना के विषय में, 'छोटे-छोटे राज्य'—शीर्षक छब्बीसवें अध्याय में लिखा गया है। भावनगर में लोकप्रिय मंत्रिमंडल काम करने लग गया था। इधर १५ फरवरी १६४८ से सौराष्ट्र का विधान नियमानुसार अमल में लाया जाने लगा है। इसके अनुसार नवानगर के जाम साहब इसके राजप्रमुख या गवर्नर तथा भावनगर के महाराजा इसके उप-राजप्रमुख नियुक्त हुए है, और श्री धेबर प्रधान मंत्री चुने गए हैं। पूर्ण उत्तरदायी शासन व्यवस्था के लिए विधान तैयार करने के हेतु विधान परिषद का संगठन किया जा रहा है। आशा की जाती है कि इस संयुक्त राज्य में कच्छ रियासत भी शामिल हो जायगी और महागुजरात जैसे संगठन का जन्म होगा।

बड़ौदा में, राज्य-प्रजामंडल के सत्याग्रह के निश्चय के फल-स्वरूप महाराजा ने प्रजामंडल की माँग को स्वीकार कर लिया है। उत्तरदायी शासन का विधान बनाने के लिए एक विधान-समिति तथा अन्तरिम सरकार की स्थापना होने वाली है।

गुजरात की मंगरोल, माणवदार, भटावा, सरदारगढ़ और बाव-रियावाद इन पाँच रियासतों के तथा जूनागढ़ पाकिस्तान में सम्मिलित

होने के लिए क्रमशः ३६ और ६१ मत आए हैं, जब कि भारतीय सङ्घ के पक्ष में क्रमशः ३१,३६५ और १,६०७८६ मत आए हैं। इस पर ये रियासतें भारतीय सङ्घ में शामिल हो गई हैं।

बीकानेर (पृष्ठ २११)

बीकानेर राज्य-प्रजापरिषद तथा राज्य की अन्य संस्थाओं द्वारा शासन-सुधार योजना अस्वीकृत होने पर २ फरवरी १९४८ को महाराजा ने यह घोषणा की कि १ अप्रेल १९४८से पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित किया जायगा। किन्तु उन्होंने उसका आधार वही अप्रिय धारा सभा रखी है जो गत ४ दिसम्बर के वक्तव्य के अनुसार बनाई जायगी, इस लिए राज्य-प्रजापरिषद ने उसे स्वागत करने योग्य नहीं समझा धारा-सभा का वर्तमान संगठन विशेष हितों के पक्ष में है।

अलवर (पृष्ठ २१८)

महाराजा और प्रजामंडल में शासनसुधार सम्बन्धी वार्ता असफल रही। प्रजामंडल सत्याग्रह छेड़नेवाला था; इस बीच में यह पता लगा कि अलवर में राष्ट्रीय स्वयंसेवक सङ्घ का एक बड़ा केन्द्र है, जिसका म० गांधी की हत्या में हाथ होने का सन्देह है। इस पर भारत सरकार के रियासती विभाग ने निश्चय किया कि अलवर में सङ्घ की कार्य-वाहियों की जाँच की जाय और जाँच होने तक महाराजा अलवर राज्य से बाहर, और प्रधानमंत्री डा० खरे दिल्ली में रहें। महाराजा ने यह स्वीकार कर लिया और डा० खरे को प्रधान मंत्री के पद से हटा दिया। राज्य में रियासती विभाग द्वारा एक प्रबन्धक भेज दिया गया है।

भरतपुर (पृष्ठ २२५)

इस राज्य में महाराजा ने चार मंत्री नियुक्त किए थे, जिनमें से दो प्रजापरिषद के, एक किसान मजदूर सभा का, और एक हिन्दू महासभा

का है। परन्तु भारत-सरकार को यह मालूम होने पर कि भरतपुर में राष्ट्रीय स्वयंसेवक सङ्घ (जिसका म० गांधी की हत्या में हाथ होने का अनुमान है) की प्रवृत्तियों को बहुत सहायता दी गई है, उसने राज्य में एक प्रबन्धक भेज दिया है। महाराजा ने उसे पूर्ण सहायता देने का वचन दिया है। इस प्रकार राज्य में अब उस दमन का अन्त समझना चाहिए, जो साल भर से बेगार विरोधी आन्दोलन के सिलसिले में चल रहा था, और जिसमें श्री० रमेशस्वामी मोटर द्वारा कुचले जाकर मारे गए थे।

प्रजापरिषद ने निश्चय किया है कि उसके जो दो मन्त्री गंगा-जमुनी मन्त्रिमण्डल में हैं, वे इस्तीफा दे दें और शुद्ध प्रजापरिषदीय मन्त्रिमण्डल बनाने का प्रयत्न किया जाय। सम्भव है यह राज्य संयुक्तप्रान्त में मिल जाय। तथा इसे और करौली धौलपुर और अलवर को मिलाकर इनका शासन एक ही अधिकारी को सौंप दिया जाय।

जोधपुर (पृष्ठ २३८)

जोधपुर महाराजा की प्रतिगामी नीति से असन्तुष्ट होकर मारवाड़ लोकपरिषद ने सत्याग्रह छेड़ने का निश्चय किया है, और श्री जयनारायण जी व्यास को सर्वाधिकारी चुना है। महाराजा ने फरवरी १९४८ में जो घोषणा की है, उसके अनुसार एक विधान सभा का निर्माण होगा, जो बालिग मताधिकार के आधार पर चुनी हुई तथा पूर्ण अधिकार-प्राप्त होगी। वह उत्तरदायी शासन का विधान बनाएगी। अन्तरिम सरकार में दो मन्त्री लिए जायँगे, जिनमें से एक किसानों का प्रतिनिधित्व करेगा। श्री व्यास जी ने यह बताते हुए कि वर्तमान असेम्बली प्रतिक्रियावादी तथा बेकार है, और प्रस्तावित विधान-सभा द्वारा नया विधान बनाने में कम-से-कम तीन वर्ष लग जायँगे, यह माँग की है कि एक मास के अन्दर अन्तरिम सरकार की स्थापना होनी चाहिए, नहीं तो सत्याग्रह आरम्भ कर दिया जायगा।

मालवा (पृष्ठ २७७)

मध्यभारत के राज्यों के बारे में इक्कीसवें अध्याय में लिखा गया है; गवालियर और इन्दौर के विषय में कुछ बातें आगे कही जायंगी। आशा है कि काठियावाड़ के ढंग पर, मालवा के तीस राज्य जिनका क्षेत्रफल ७०,००० वर्गमील है, एक संयुक्त राज्य में आबद्ध हो जायँगे। इसे न केवल देशी राज्य-कांग्रेसों का ही, वरन् राजाओं का भी समर्थन प्राप्त है। यह संघ सौराष्ट्र से तीन गुना बड़ा होगा, जिसकी जनसंख्या लगभग एक करोड़ और वार्षिक आय बारह करोड़ रुपए होगी। इस योजना के अनुसार मालवा के छोटे-छोटे राज्यों के अतिरिक्त इन्दौर, गवालियर भोपाल जैसे बड़े-बड़े राज्य भी संघ में सम्मिलित कर लिए जायँगे।

गवालियर (पृष्ठ २८६)

राज्य-कांग्रेस और महाराजा के समझौते के फलस्वरूप २४ जनवरी १६४८ को ११ मन्त्रियों का मन्त्रिमंडल बनाया गया है, जिसमें प्रधान मंत्री श्री० लीलाधर जी जोशी सहित नौ मन्त्री राज्य-कांग्रेस द्वारा और दो मन्त्री महाराजा द्वारा मनोनीत हैं। सेना, बाहरी राजनीतिक मामले, महाराजा के निजी खर्च तथा महल का खर्च, और इन विभागों के नियंत्रण का अधिकार महाराजा द्वारा मनोनीत मंत्रियों को होगा; शेष सब विभाग राज्य-कांग्रेस द्वारा नामजद मंत्रियों के अधीन होंगे। वर्तमान दो धारा सभाओं की जगह एक ही धारा सभा रहेगी, जिसमें दोनों धारासभाओं के नामजद सदस्यों को छोड़कर सिर्फ निर्वाचित सदस्य रहेंगे। नई धारा सभा अपना अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुनेगी। इस नई धारा सभा द्वारा बीस सदस्यों की नई विधान समिति बनाई जायगी, जो अपना अध्यक्ष स्वयं चुनेगी। इस विधान समिति को महाराजा के निजी खर्च तथा महल के खर्च, बाहरी राजनीतिक सम्बन्ध

तथा सेना को छोड़ कर शेष सब विषयों का विधान बनाने का अधिकार होगा।

इन्दौर (पृष्ठ ३००)

इन्दौर नरेश ने श्री० मेहता को हटाकर श्री० भिड़े को प्रधान मन्त्री बनाया; इससे उनके तथा रियासती विभाग के बीच मतभेद रहा। प्रजामन्डल से वार्तालाप के फलस्वरूप महाराजा ने १६ जनवरी १९४८ को श्री० भिड़े तथा प्रजामंडल के सात प्रतिनिधियों का मंत्रिमंडल बनाया, जो सम्मिलित रूप से धारा सभा के प्रति उत्तरदायी होगा। महाराजा ने एक विधान-सभा बनादी है, और पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित करना तथा अन्तरिम काल में भी वैधानिक शासक रहना स्वीकार कर लिया है।

टेहरी-गढ़वाल (पृष्ठ ३३३)

रियासती विभाग, राजा तथा प्रजामण्डल के आपसी समझौते के फल-स्वरूप छः माह तक शासन-प्रबन्ध रियासती विभाग का एक प्रबन्धक, तथा प्रजामण्डल द्वारा चुने हुए चार लोकप्रिय मन्त्री करेंगे। पीछे यहाँ की विधान सभा निश्चय करेगी कि राज्य अलग रहे, या संयुक्तप्रान्त अथवा किसी अन्य प्रान्त में मिला दिया जाय, और राजा को पेन्शन दे दी जाय।

हैदराबाद (पृष्ठ ३४७)

राज्य-कांग्रेस के लगानबन्दी तथा अन्य आन्दोलन की उग्रता को देखकर निजाम साहब को फिर कुछ झुकना पड़ा। यद्यपि स्वामी रामानन्द तीर्थ तथा श्री काशीनाथ राव वैद्य को दुबारा जेल में बन्द कर दिया गया है, निजाम को यह घोषणा करनी पड़ी है कि वे विधान-सभा में ऐसा परिवर्तन करने को तैयार हैं, जिससे उसमें सभी दलों का प्रतिनिधित्व हो, और वह ऐसा विधान बनाए, जो जनता की भावनाओं का द्योतक ('रिस्पोंसिव') हो।

ख्याल किया जाता है कि भारत सरकार ने अन्य रियासतों की तरह निजाम पर जोर दिया है कि वह साम्प्रदायिक संस्थाओं को खतम करदे और साम्प्रदायिक कटुता और आपसी घृणा के भाव फैलाने से रोके।

बुन्देलखंड (पृ ३६५)

बुन्देलखण्ड के नरेशों ने एक सङ्घ बनाने की योजना स्वीकार कर ली है। यह सङ्घ सम्भवतः काठियावाड़ राज्य-समूह के आधार पर बनेगा। इसमें रीवा भी सम्मिलित हो सकेगा। राजाओं की सभा ने सभी राजाओं से अनुरोध किया था कि १५ फरवरी १९४८ तक उत्तरदायी शासन की स्थापना करदें। इसके फल-स्वरूप कई राज्यों में उत्तरदायी शासन की घोषणा हो गई है। किन्तु मैहर तथा दतिया जैसी रियासतों में जिस प्रकार के उत्तरदायी शासन की घोषणा हुई है, उससे जनता सन्तुष्ट नहीं है।

इधर बुन्देलखण्ड के राज्यों में साम्प्रदायिक संस्थाओं द्वारा काफी आतंक फैलाया गया है। ओरछा के प्रसिद्ध कार्यकर्ता श्री नारायणदास खरे (जो १ दिसम्बर १९४७ से लापता थे) का शव चरखारी राज्य के जंगल में मिला है। चरखारी के दो अन्य कार्यकर्ताओं का भी वध किया गया है। इसलिए इन राज्यों में 'राज्य' नाम की संस्था को मिटाने की उत्कट भावना जागृत हो गई है। इन राज्यों की जनता प्रस्तावित बुन्देलखण्ड सङ्घ से भी तब तक सन्तुष्ट न होगी, जब तक उसका सङ्गठन पूर्ण जनतन्त्रात्मक न हो और उसमें विकास के यथेष्ट साधन न हों।

× × ×

आशामय भविष्य—१५ अगस्त १९४७ के बाद इस बात की बड़ी चिन्ता थी कि देश टुकड़े टुकड़े होजाय। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने कुछ कट्टर मुसलिम सम्प्रदायवादियों से मिलकर पाकिस्तान का निर्माण कर ही दिया था। अंगरेजों ने भारत को छोड़ते-छोड़ते यह

विध्वंसात्मक घोषणा करदी थी कि अब सार्वभौम सत्ता स्वयं राजा-महाराजाओं में रहेगी। भारतीय संघ का शासन-सूत्र सभालनेवालों के सामने बड़ी विकट समस्या थी। साढ़े पाँचसौ जुदा-जुदा रियासतों को किस प्रकार मिलाया जाय? भारतीय संघ की एकता की रक्षा किस प्रकार हो? नवनिर्माण में तरह-तरह की बाधाएँ थीं। परन्तु भारत-सरकार के उपप्रधान तथा रियासती विभाग के मंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल ने अथक परिश्रम, दृढ़ता तथा गम्भीरता से काम लिया। इसी का फल है कि आज रियासतें अपना संघ बनाकर अथवा पास के प्रान्तों में मिल कर उत्तरदायी शासनपद्धति को अपना रही है। यह कार्य इतनी तेजी से हो रहा है कि इसकी पहले कल्पना भी नहीं होती थी। यह बहुत ही शुभ लक्षण है।

सैकड़ों छोटी-छोटी रियासतों को मिलाकर एक बड़ी इकाई बनाने की दिशा में सौराष्ट्र का निर्माण सबसे महत्वपूर्ण कदम है। वैसे तो उड़ीसा, मध्यप्रान्त और बम्बई आदि की छोटी रियासतें भी उन प्रान्तों में शामिल हुई है, पर हजारों वर्गमील क्षेत्रफल, लाखों की आबादी, और करोड़ों की आय वाली रियासतों का एक संघ बना कर उनमें जनतंत्र-वादी सिद्धान्तों के आधार पर शासन तंत्र कायम करने की घोषणा होने से इस कदम का महत्व और भी बढ़ा हुआ है। इससे राजपूताना और मध्यभारत की रियासतों के लिए भी मार्ग खुल जाता है, जिनकी स्थिति सौराष्ट्र की रियासतों जैसी है, और जिनके संयुक्त होने और संघ बनने की बहुत आवश्यकता है। आशा है, सब रियासतों के शासक इस आदर्श का अनुकरण करेंगे, और जनता की सुख समृद्धि बढ़ाने में यथेष्ट भाग लेंगे। रियासती जनता ने चालीस-पचास वर्ष अनेक संकटों को सहकर ऐसा जन-आन्दोलन किया कि अब इस देश का भविष्य उज्ज्वल होने में कोई सन्देह नहीं है।

———

देशी राज्य शासन

[दूसरा संशोधित संस्करण]

देशी राज्यों की वर्तमान राजनीतिक और शासन सम्बन्धी समस्याओं का विवेचन

विषय-सूची

पहला भाग—(१) विषय प्रवेश (२) राज्य सम्बन्धी भारतीय आदर्श—(३) देशी राज्य और कम्पनी, (४) सन् १८५७ के बाद, (५) देशी राज्य क्यों बने रहे? (६) देशी राज्यों का वर्गीकरण, (७) संधियाँ, (८) रियासती विभाग, (९) राजा, (१०) मंत्री और राज-कर्मचारी, (११) व्यवस्थापक सभाएँ, (१२) न्यायालय, (१३) जागीरदारी, (१४) नरेन्द्रमंडल (१५) कांग्रेस और देशी राज्य लोकपरिषद, (१६) नया विधान और देशी राज्य, (१७) भारतीय संघ और रियासती इकाइयाँ, (१८) रियासती इकाइयों का शासन, (१९) प्रजातंत्र में राजाओं का स्थान।

दूसरा भाग—(२०) प्रस्तावना, (२१) कश्मीर, (२२) पंजाब के राज्य, (२३) पश्चिमोत्तर भारत के राज्य, (२४) काठियावाड़ और गुजरात के राज्य—भावनगर, बड़ौदा, (२५) राजपूताना के राज्य—बीकानेर, जोधपुर, मेवाड़, जयपुर, शाहपुर, (२६) मध्यभारत के राज्य—गवालियर, इन्दौर, भोपाल, रीवा, (२७) हैदराबाद, (२८) बम्बई प्रान्त के राज्य—औंध, सांगली, (२९) दक्षिण के राज्य—मैसूर, कोचीन, त्रावणकोर, (३०) अन्य देशी राज्य—संयुक्तप्रान्त के राज्य, सिक्कम और भूटान, बंगाल के राज्य, आसाम के राज्य, उड़ीसा के राज्य, मध्यप्रान्त के राज्य, (३१) देशी राज्यों में नागरिक अधिकार, (३२) राजाओं का कर्तव्य, (३३) देशी राज्यों के कार्यकर्ताओं से।

परिशिष्ट—देशी राज्य प्रश्नावली।

उत्तरदायी शासन के आन्दोलन के लिए अवश्य पढ़िए।

मूल्य, साढ़े तीन रुपए